अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन

ARUNACHAL PRADESH KENDRIT HINDI UPANYASON KA SAMIKSHATMAK ADHYAYAN

[मिजोरम विश्वविद्यालय, आईजोल के हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएच.डी.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध]

A THESIS SUBMITTED IN PARTIAL FULFILLMENT OF THE REQUIRMENTS FOR THE DEGREE OF DOCTOR OF PHILOSOPHY

ताबा याना

TABA YANA

MZU REGN. NO: 1900166

Ph.D. REGN. NO.: MZU/Ph.D./1802 of 23.08.2021

हिंदी विभाग

मानविकी एवं भाषा संकाय

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF HUMANITIES AND LANGUAGES

दिसंबर, 2025

DECEMBER, 2025

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन

ARUNACHAL PRADESH KENDRIT HINDI UPANYASON KA SAMIKSHATMAK ADHYAYAN

शोधार्थी
ताबा याना
हिंदी विभाग

By
TABA YANA
DEPARTMENT OF HINDI

शोध निर्देशक
प्रो. संजय कुमार
SUPERVISOR
PROF. SANJAY KUMAR

मिजोरम विश्वविद्यालय, आईजोल के मानविकी एवं भाषा संकाय के अंतर्गत हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएच.डी.) की उपाधि के लिए अपेक्षित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध

Submitted in partial fulfillment of the requirement of the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi of Mizoram University, Aizawl

प्रो. संजय कुमार
वरिष्ठ आचार्य एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय
आईजोल-796004

मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आईजोल
Mizoram University, Aizawl
A Central University
Accredited 'A+' Grade by NAAC in 2025 (3rd Cycle)

Prof. Sanjay Kumar
Senior Professor & Head
Department of Hindi
Mizoram University
Aizawl-796004

Mobile No. - 09402112143; 09774517465; E-mail: sanjaykumarmzu@gmail.com ; Website : www.mzu.edu.in

दिनांक: .12.2025

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **ताबा याना** ने मेरे निर्देशन में मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आईजोल की **डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएच.डी.- हिंदी)** की उपाधि हेतु **'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन'** विषय पर शोध-कार्य किया है। प्रस्तुत शोध कार्य शोधार्थी की अपनी निजी गवेषणा का फल है। यह इनका मौलिक कार्य है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, प्रस्तुत शोध-प्रबंध या इसके किसी भी अंश को किसी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी प्रकार की उपाधि हेतु अद्यावधि प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं प्रस्तुत शोध-प्रबंध को मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आईजोल की **डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएच.डी.- हिंदी)** की उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

(प्रो. संजय कुमार)
शोध-निर्देशक

हिंदी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय
आईजोल

दिसंबर, 2025

घोषणापत्र

मैं **ताबा याना** एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किए गए शोध-कार्यों का सुपरिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, न किसी अन्य को कोई उपाधि प्रदान की गई है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्थान में प्रस्तुत किया गया है। इस शोध-प्रबंध लेखन के दौरान जिन ग्रंथों की सहायता ली गयी है उसे समुचित रूप से उद्धृत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आईजोल के सम्मुख हिंदी विषय में **डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएच.डी.- हिंदी)** की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(ताबा याना)
शोधार्थी

(प्रो. संजय कुमार) **(प्रो. संजय कुमार)**
अध्यक्ष **शोध-निर्देशक**

प्राक्कथन

प्राक्कथन

भारत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा पूर्वोत्तर है, जिसमें मणिपुर, असम, नागालैंड, मिज़ोरम, त्रिपुरा, मेघालय और सिक्किम सहित अरुणाचल प्रदेश आते हैं। कभी इस प्रदेश को नेफ़ा भी कहा करते थे। भारतीय साहित्य में पूर्वोत्तर राज्यों का साहित्यिक वैभव बहुत समय तक मुख्यधारा की दृष्टि से उपेक्षित रहा है, लेकिन नई पीढ़ियों में अरुणाचल प्रदेश की लोक परंपराओं, सांस्कृतिक विविधता, जनजातीय जीवन, सामाजिक और संघर्षों के परिवर्तन को चित्रित करने वाले हिन्दी उपन्यासों ने साहित्यिक जगत में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है।

इन उपन्यासों के माध्यम से न केवल यहाँ के जनजीवन का यथार्थ उभरकर सामने आया है, बल्कि हिन्दी साहित्य में भी नई संवेदना और सैद्धांतिक आयाम का समावेश हुआ है। अरुणाचल प्रदेश भारत का वह हिस्सा है, जहाँ जनजातीय संस्कृति और भाषा की विविधता में एकता का भाव उत्पन्न होता है। यह प्रदेश पर्यटन स्थलों के लिए प्रसिद्ध है, साथ ही देश के उगते सूर्य की किरणों वाले राज्य के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ नदियों की धारा बहती है, चारों ओर हरियाली ही हरियाली छाई हुई है। इन वादियों में पानी खेती, झूम खेती, चाय पत्ती की खेती, सरसों की खेती, धान की खेती आदि भी पाई जाती हैं। लेकिन फिर भी यह प्रदेश सम्पूर्ण भारत के लिए अगम्य है।

भौगोलिक रूप से यह प्रदेश पूर्व में म्यांमार, पश्चिम में भूटान, उत्तर में चीन तथा दक्षिण में नागालैंड और असम राज्य की सीमा से सटा हुआ है। 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल आबादी 13,83,727 है और क्षेत्रफल 83,743 वर्ग किलोमीटर है। वर्तमान में अरुणाचल प्रदेश में कुल 28 जिले हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं- अंजाव, बिचोम, चंगलांग, डिबंग वैली, ईस्ट कामेंग, ईस्ट सियांग, कामेंग, कामले, कुरुंग कुमेऊ, केयी पानयोर, क्रादादी, लेपा रादा, लोहित, लोअर डिबांग वैली,

लोंगडिंग, लोअर सियांग, लोअर सुबनसिरी, नामसाई, पापुम पारे, पक्के केससांग, सियांग, शी-योमी, तवांग, तिराप, अपर सियांग, अपर सुबनसिरी, वेस्ट कामेंग और वेस्ट सियांग।

इस प्रदेश के जिलों के नाम नदियों के नाम पर रखे गए हैं। प्रमुख जनजातियां 26 हैं और 100 से भी अधिक उप-जनजातियाँ मानी जाती हैं। इन सभी जनजातियों की अपनी-अपनी भाषाएँ, अपनी संस्कृति और रहन-सहन के अपने तौर-तरीके हैं, जो दूसरों से काफी भिन्न हैं। लेकिन अलग संस्कृति, अलग भाषा, अलग रहन-सहन और खानपान के बावजूद भी इन जनजातियों में एकता और सह-अस्तित्व की भावना हमेशा रही है। इसलिए राष्ट्रीय एकता के मामले में अरुणाचल प्रदेश देश के बाकी प्रदेशों से पीछे नहीं रहा है।

अरुणाचल प्रदेश में प्रकृति पूजक, दोनयी पोलो, ईसाई, बौद्ध, हिन्दू और मुस्लिम आदि धर्मों को माना जाता है। यहाँ अनेक प्रकार के त्योहार मनाए जाते हैं, जिनमें प्रमुख पर्व हैं- न्योकुम युल्लो, सोलुंग, मोपिन, द्री, लोसर, सी-दोनयी आदि।

यहाँ की संस्कृति, परंपरा और समाज ने हिन्दी साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया है। अरुणाचल प्रदेश में उपन्यास लेखन का आरंभ लुम्मेर दाई के उपन्यास 'पहारोंर हिले हिले' (1960) से माना जाता है, जो असमिया भाषा में लिखा गया है। परंतु हिंदी में अरुणाचल प्रदेश केंद्रित उपन्यास लेखन और दूसरी भाषा से हिंदी में अनुवाद करने की परंपरा की शुरुआत 21वीं शताब्दी से ही दृष्टिगोचर होता है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की ज्ञात संख्या- 10 है, जिसमें से 4 अनूदित उपन्यास हैं तो 6 मूलतः हिंदी में सृजित हैं। हिन्दी साहित्य में अरुणाचल प्रदेश से संबंधित रचनाओं के सृजन की प्रवृति धीरे धीरे बढ़ रही है। अरुणाचल प्रदेश से कई सारे ऐसे लेखक अब सामने आ रहे हैं जो सीधे सीधे हिंदी में लेखन कर रहे हैं और अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज और संस्कृति को अपने साहित्य का कथ्य बना रहे हैं। पिछले दो दशकों में धीरे धीरे उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। हिन्दी उपन्यासों में

अरुणाचल प्रदेश की आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्थितियों का चित्रण न केवल स्थानीय जीवन का दस्तावेज प्रस्तुत करता है, बल्कि भारतीय साहित्य की अखंड परंपरा में एक नई चेतना का संचार भी करता है।

इसी पृष्ठभूमि में मैंने प्रस्तुत शोध कार्य 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय को चुना। इस शोध विषय को चुनने का मेरा उद्देश्य है कि अरुणाचल प्रदेश का सामाजिक जीवन, संस्कृति और मानवीय संबंधों को हिन्दी उपन्यासों में किस प्रकार में रूपायित किया गया है- उसका उद्घाटन किया जाए और हिंदी के विद्वत समाज को उससे परिचित कराया जाए।

इस विषय को चुनने का कारण यह भी है कि इस क्षेत्र पर आधारित हिन्दी उपन्यास कम लिखे गए हैं और इस पर शोध कार्य भी बहुत कम हुआ है। इसलिए इस शोध कार्य के माध्यम से मैं यह जानने और समझने की कोशिश कर रही हूँ कि अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के समाज, संस्कृति, नारी की स्थिति और लोगों की भावनाओं को किस रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा इन उपन्यासों की भाषा- शैली कैसी है आदि।

इस शोध कार्य के विषय में मेरे शिक्षिक डॉ. अमिष वर्मा ने सुझाव दिया था। साथ ही मेरे शोध निर्देशक प्रो. संजय कुमार जी ने भी मूल्यवान सुझाव प्रदान किए, जिसके कारण मेरी भी इस विषय में रुचि उत्पन्न हुई।

प्रस्तुत शोध कार्य को अध्ययन की सुविधा के लिए पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है-

प्रथम अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश और उसकी जनजातियाँ : एक विवेचन' है। इस अध्याय में दो उप-अध्याय हैं। पहला उप-अध्याय है अरुणाचल प्रदेश : सामान्य परिचय और दूसरा उप-अध्याय है अरुणाचल प्रदेश की जनजातियाँ : सामान्य परिचय। इसके अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश का सामान्य

परिचय, जनजातियों का परिचय तथा अरुणाचली जनजातियों की भाषाओं का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रदेश की 26 प्रमुख जनजातियों का उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा' है। इस अध्याय में दो उप-अध्याय हैं। पहला उप-अध्याय है अरुणाचल प्रदेश के हिन्दी उपन्यासकार: सामान्य परिचय और दूसरा उप-अध्याय है अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास: सामान्य परिचय। इस अध्याय में अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासकारों और उपन्यासों का परिचय विस्तार से दिया गया है।

तृतीय अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और संस्कृति' है। इस अध्याय में दो उप-अध्याय हैं। प्रथम उप-अध्याय में समाज का तथा द्वितीय उप-अध्याय में संस्कृति का वर्णन है। इसके अंतर्गत धर्म, पर्व एवं त्योहार, खान-पान, पहनावा-ओढावा और जीविकोपार्जन के साधनों का विवरण शामिल है। इस अध्याय में अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त धर्म, त्योहार, पहनावा-ओढावा, खान-पान, अन्य विविध विषय: कृषि और व्यवसाय, चीन युद्ध, ऐतिहासिक संदर्भ, सद्भावना और सहानुभूति, मेहमान नवाजी, अंधविश्वास, पिछड़ापन, शिक्षा का अभाव आदि विषयों को विस्तार पूर्वक उल्लेखित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के प्रश्न' है। इस अध्याय के अंतर्गत सात उप-अध्याय हैं। पहला उप-अध्याय है कन्या मूल्य, दूसरा बाल विवाह, तीसरा बेमेल विवाह, चौथा बहुपत्नी प्रथा, पाँचवाँ बहुपति प्रथा, छठा प्रेम संबंध और सातवाँ स्त्री शोषण का स्वरूप है। इस अध्याय में इन सभी विषयों का विश्लेषण किया गया है।

पंचम अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का शिल्प विधान' है। इस अध्याय में दो उप-अध्याय हैं। पहला उप-अध्याय है अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों की भाषा और दूसरा

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की शैली। इस अध्याय में इन उपन्यासों की भाषा और शैली का विश्लेषण किया गया है।

उपसंहार के अंतर्गत उपर्युक्त अध्यायों से प्राप्त निष्कर्षों का समाहार प्रस्तुत किया गया है। अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची भी दी गई है, जिसमें उन पुस्तकों और स्रोतों की विस्तृत जानकारी दी गई है, जिससे इस शोध कार्य को लिखते समय सहायता प्राप्त हुई।

इस शोध कार्य को लिखते समय शोध-सामग्री जुटाने में कठिनाइयों और समय की कमी- दोनों का ही अनुभव हुआ। किंतु शिक्षकों, पुस्तकालयों, लेखकों तथा अन्य लोगों से प्राप्त सहयोग के कारण यह शोध कार्य पूर्ण हो पाया।

प्रस्तुत शोध कार्य को पूर्ण करने में मुझे अनेक व्यक्तियों का मार्गदर्शन और सहयोग प्राप्त हुआ, उन सभी के प्रति मैं तहेदिल से धन्यवाद व्यक्त करती हूँ। सबसे पहले मैं अपनी शोध निर्देशक आदरणीय प्रो. संजय कुमार, वरिष्ठ आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय का हृदय से आभार प्रकट करती हूँ, जिनकी प्रेरणा, मार्गदर्शन और सहयोग के बिना इस शोध कार्य को पूर्ण कर पाना मेरे लिए संभव नहीं था। मैं अपने प्राध्यापकों डॉ. सुषमा कुमारी और डॉ. अमिष वर्मा का भी तहेदिल से आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने शोध कार्य लेखन के दौरान अमूल्य सुझाव और सहयोग प्रदान किए।

मैं अपने विभाग के अन्य प्राध्यापकों वरिष्ठ प्रो. सुशील कुमार शर्मा और डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। मैं हिन्दी विभाग के कर्मचारी श्री राजीव सोनार को भी धन्यवाद देती हूँ, जो सदैव सहायता के लिए तत्पर रहते हैं। मैं अपनी सखी कृतिका विश्वकर्मा और छोटे भाई प्रलय कुमार बोरो का भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने शोध कार्य के दौरान हर कदम पर मेरा सहयोग किया और मेरे शोध कार्य की भाषागत त्रुटियों को सुधारने में विशेष सहयोग दिया। साथ ही, मैं

अपने विभाग के सहपाठियों- दिवेश कुमार चंद्रा, रघुवीर दान चारण, ओबिनाम सारिंग, पंखी काकाति और भाई सुशांत सिंह (मैथिल) को भी उनके सहयोग के लिए धन्यवाद देती हूँ। इन्हीं सभी के मार्गदर्शन, स्नेह और सहयोग के कारण यह शोध कार्य पूर्ण रूप से संपूर्ण और प्रस्तुत रूप में तैयार हो पाया है।

मैं अपने माता-पिता और परिवार के सदस्यों की भी आभारी हूँ जिनके आशीर्वाद, स्नेह और सहयोग से मैं इस मुकाम तक पहुँच पाई।

(ताबा याना)
शोधार्थी

विषयानुक्रमणिका

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
प्रमाण पत्र	**I**
घोषणा पत्र	**II**
प्राक्कथन	**III- IX**
विषयानुक्रमणिका	**X-XIII**

प्रथम अध्याय: अरुणाचल प्रदेश और उसकी जनजातियाँ: एक विवेचन **1-86**

(क) अरुणाचल प्रदेश: सामान्य परिचय

(ख) अरुणाचल प्रदेश की जनजातियाँ: सामान्य परिचय

द्वितीय अध्याय: अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा **87-149**

(क) अरुणाचल प्रदेश के हिन्दी उपन्यासकार: सामान्य परिचय

(ख) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास: सामान्य परिचय

तृतीय अध्याय: अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और संस्कृति **150-185**

(क) समाज

(ख) संस्कृति

i. धर्म
ii. पर्व एवं त्योहार
iii. खानपान
iv. पहनावा ओढ़ावा
v. जीविकोपार्जन के साधन

(ग) अन्य विविध विषय

i. कृषि और व्यवसाय

ii. चीन युद्ध

iii. ऐतिहासिक संदर्भ

iv. सद्भावना और सहानुभूति

v. मेहमान नवाजी

vi. अंधविश्वास

vii. पिछड़ापन

viii. शिक्षा का अभाव

चतुर्थ अध्याय: अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के प्रश्न **186-222**

(क) कन्या मूल्य

(ख) बाल विवाह

(ग) बेमेल विवाह

(घ) बहुपत्नी प्रथा

(ङ) बहुपति प्रथा

(च) प्रेम संबंध

(छ) स्त्री शोषण का स्वरूप

पंचम अध्याय: अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान **223-254**

(क) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा

(ख) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की शैली

उपसंहार **255-267**

संदर्भ ग्रंथ सूची **268-273**

परिशिष्ट- 1 **274-276**

शोधार्थी का जीवनवृत्त

शोधार्थी का विवरण

प्रथम अध्याय

अरुणाचल प्रदेश और उसकी जनजातियाँ: एक विवेचन

(क) अरुणाचल प्रदेश: सामान्य परिचय

(ख) अरुणाचल प्रदेश की जनजातियाँ: सामान्य परिचय

प्रथम अध्याय

अरुणाचल प्रदेश और उनकी जनजातियाँ : एक विवेचन

क. अरुणाचल प्रदेश: सामान्य परिचय

भारत में सबसे पहले सूर्य की किरणें अरुणाचल प्रदेश के आंजव जिले के डोंग गाँव पर पड़ती हैं। यह गाँव राज्य के पूर्वी हिस्से में स्थित है और सुबह चार बजे ही सूरज यहाँ उगता है। अरुणाचल प्रदेश के ज्यादातर जिलों के नाम स्थानीय नदियों से लिए गए हैं। यह पूर्वोत्तर भारत का एक खूबसूरत राज्य है, जहाँ तवांग, बोमदिला, नामसाई, तेजू, जीरो, सेपा और ईटानगर जैसे कई आकर्षक पर्यटन स्थल हैं। राज्य प्राकृतिक सुंदरता और विभिन्न संस्कृतियों से भरा हुआ है।

इसकी पूर्वी सीमा म्यांमार से, पश्चिमी भूटान से, उत्तरी तिब्बत से और दक्षिणी असम से लगती है। विभिन्न विद्वानों ने अरुणाचल प्रदेश के बारे में अलग-अलग विचार रखे हैं। उदाहरण के लिए, बी.बी. कुमार ने लिखा है कि पहले यह राज्य छोटे-छोटे हिस्सों में बँटा था और हर हिस्से का एक अलग नाम था।

20 फरवरी, सन् 1987 को 'अरुणाचल प्रदेश' के रूप में भारत का एक पूर्ण राज्य गठित हुआ। इसके पूर्व इस क्षेत्र को नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर एरिया (NEFA), नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर ट्रैक्ट्स तथा नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी के नाम से जाना जाता था। इसकी पुष्टि बी.बी. कुमार की पुस्तक *री-ऑर्गेनाइजेशन ऑफ नॉर्थ-ईस्ट इंडिया* में उपलब्ध है।

अरुणाचल प्रदेश का कुल क्षेत्रफल 83,743 वर्ग किलोमीटर है। वर्तमान में राज्य में 28 जिले हैं, जिनमें आंजाव, बिछोम, चंगलांग, डिबांग वैली, ईस्ट कामेंग, ईस्ट सियांग, कामेंग, कामले, कुरुङ कुमें, केई पनियोर, क्रादादी, लेपा रादा, लोहित, लोअर डिबांग वैली, लोंडिंग, लोअर सियांग,

लोअर सुबनसिरी, नामसाई, पापुम पारे, पक्के-केस्सांग, सियांग, शी-योमी, तवांग, तिराप, अपर सियांग, अपर सुबनसिरी, वेस्ट कामेंग तथा वेस्ट सियांग सम्मिलित हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार अरुणाचल प्रदेश की कुल जनसंख्या 13,82,611 है, जिसमें पुरुषों की संख्या 7,20,232 तथा महिलाओं की संख्या 6,62,379 है। अरुणाचल प्रदेश को केंद्र में रखकर हिंदी में अनेकों किताबें आई जिसमें अरुणाचल के विषय में निम्न परिचय दिया गया है:-

"अरुणाचल, जिसका अर्थ है "उगते सूरज की भूमि" यह राज्य भारत के उत्तर -पूर्व भाग में स्थित है। भौगोलिक दृष्टि से यह उत्तर में चीन, पश्चिमी में भूटान, पूर्व में म्यांमार और दक्षिण में असम व नागालैंड की सीमाएं लगती है। यह महान हिमालय पर्वतमाला के पूर्वी किनारे और पटकाई पर्वतमाला पर स्थित है। सन् 1826 तक इस पर्वतीय क्षेत्र का कोई स्पष्ट भौगोलिक अस्तित्व नहीं था, जिसे केवल इस क्षेत्र के दक्षिण में स्थित असम के मैदानी लोग ही जानते थे। अपनी दुर्गमता के कारण, यह एक छिपी हुई भूमि थी, जो बाहरी लोगों से अपरिचित और अनछुई थी।"[1]

"अरुणाचल प्रदेश ,भारतीय संघ का 24 वाँ राज्य है, जो पश्चिम में भूटान से, पूर्व में म्यांमार से, उत्तर तथा पूर्वोत्तर में चीन से और दक्षिण में असम के मैदानों से घिरा हैं। अरुणाचल प्रदेश को विश्व के सर्वाधिक उत्कृष्ट, विविधतापूर्ण तथा बहुभाषी जनजातीय क्षेत्रों में से एक क्षेत्र के तोड़ पर जाना जाता है। अरुणाचल पूर्वोत्तर क्षेत्र का सबसे बड़ा राज्य है। यह पूरा क्षेत्र वर्ष 1873 से अलग-थलग था जब अंग्रेजी ने यहाँ मुक्त आवाजाही बंद कर दी थी। वर्ष 1947 के बाद अरुणाचल पूर्वोत्तर सीमांती एजेंसी (एनईएफए) का हिस्सा बन गया। वर्ष 1962 में चीन के आक्रमण से इसका नीतियाँ महत्व सामने आया, और बाद में भारत सरकार ने असम के चारों ओर के सभी क्षेत्रों को राज्य का दर्जा देते हुए एजेंसी का विभाजन कर दिया।"[2]

"पूर्वोत्तर भारत के आठ राज्यों में से एक प्रमुख राज्य हैं, अरुणाचल प्रदेश, जहाँ सूर्य की पहली किरण पढ़ती है। इस खुबसूरत, मनोरम भूमि की आपनी अनेक गाथाएं है। विभिन्न संस्कृतियों का संगम कहे जाने वाले इस राज्य में आदी, गालो, ञिसी, तागिन, आपतानी, शेरदुक्पेन, मोनपा, मीजि, आका, वाङ्चो, नोक्टे, खामति, तंगसा, इदु मिश्मी, मिजू मिश्मी, दिगारू मिश्मी, मेंम्बा, खम्बा, आदि जनजातियाँ निवास करती हैं। यहाँ सूर्य का प्रथम किरण पड़ती है, विभिन्न संस्कृतियों का संगम होता है, अनेकता में एकता का वास होता है, यही अरुणाचल की पहचान है।"[3]

"अरुणाचल प्रदेश अपने नैसर्गिक सौंदर्य, सदाबहार घाटियों, वनाच्छादित पर्वतों, बहुरंगी संस्कृति, समृद्ध विरासत, बहुजातीय समाज, भाषायी वैविध्य एवं नयनाभिराम वन्य-प्राणियों के कारण देश में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।"[4]

"इसका क्षेत्रफल 83,743 वर्ग किलोमीटर है जो देश के क्षेत्रफल का 2.54 प्रतिशत एवं पूर्वोत्तर का (सिक्किम को छोड़कर) 32.81 प्रतिशत है। 2011 की जनगणना के अनुसार अरुणाचल की कुल जनसंख्या 13,82,611 है, जिनमें पुरुष 7,20,232 और महिला 6,62,379 है। जनसंख्या का घनत्व 17 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। यहाँ लिंगानुपात प्रति 1000 पुरुषों पर 920 है तथा साक्षरता दर 66.95 प्रतिशत है।"[5]

"अरुणाचल भारत का जनजातीय आबादी वाला एक सीमांत पर्वतीय प्रदेश है-इतना कह देना भर इस राज्य का परिचय नहीं हो सकता है। यहाँ हर दृष्टि से इतनी विविधता है कि किसी एक सीधे-सरल वाक्य से इसका परिचय नहीं दिया जा सकता। अरुणाचल ही क्या, समूचे पूर्वोत्तर में ही यह वैविध्य भरपूर है । फिर भी उसकी अपनी एक समेकित पहचान है। यदि एक वाक्य या वाक्यांश में इसका परिचय देना ही पड़े तो 'विविधता में एकता' पदबंध ही सटीक बैठता है, जो कि भारत भर कि पहचान है।"[6]

“गोकुल सोनी जी ने ‘सियांग के उस पार’ उपन्यास की भूमिका में लिखा है कि “उगते सूरज की भूमि’ अरुणाचल को प्रकृति ने असीम सौन्दर्य का वरदान दिया है। दक्षिण में असम, पूर्व में म्यांमार, दक्षिण-पूर्व में नागालैंड, पश्चिम में भूटान और उत्तर में तिब्बत से सटी इसकी सीमाओं ने, मानो इन सभी प्रदेशों की खूबसूरती को एक साथ अपने अन्दर आत्मसात कर लिया हो।”[7]

“वीर भारत तलवार ने ‘मेरी आवाज़ सुनो’ उपन्यास की भूमिका में अपनी बात इस प्रकार रखी है- “अरुणाचल की विभिन्न जनजातियों में कुछ लेखकों ने अपना साहित्य पड़ोसी भाषा असमिया में लिखा है, तो कुछ ने अंग्रेज़ी में; लेकिन कई लेखकों ने हिंदी में भी लिखा है।”[8]

“पूर्वोत्तर भारत से तात्पर्य अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा इन आठ राज्यों से है। भारत की तथाकथित मुख्यधारा से अलग पूर्वोत्तर का समाज, संस्कृति, रीति-रिवाज, परंपराएँ, मान्यताएँ, आर्थिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुरंगी हैं।”[9]

इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है कि अरुणाचल प्रदेश की पहचान एक सीमांत क्षेत्र के रूप में भौगोलिक दुर्गमता, ऐतिहासिक-प्रशासनिक परिवर्तनों तथा बहुजातीय/बहुभाषीय सामाजिक संरचना के परस्पर संवाद से गढ़ी गई है। इसके साहित्यिक अभिलेखन एवं भाषाई विकल्प इस निर्माण प्रक्रिया की अभिव्यक्ति स्वरूप हैं।

ख. अरुणाचल प्रदेश की जनजातियाँ: सामान्य परिचय:

अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों की संख्या एवं उनकी पहचान संबंधी विद्वानों के मत एकरूप नहीं हैं। कुछ स्रोतों में इन्हें 24, तो कहीं 22, 26 या अन्य आँकड़ों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उल्लेखनीय है कि अधिकांश संदर्भों में जनजातियों के नाम भी पूर्णतः या एक समान रूप से

निर्दिष्ट नहीं हैं। अब तक कोई प्रमाणिक लिखित आँकड़ा उपलब्ध नहीं है जिस पर पूर्ण निश्चय किया जा सके। अतः राज्य की प्रमुख जनजातियों की संख्या एवं पहचान आज भी अनिश्चित बनी हुई है।

कतिपय ग्रंथों में प्रमुख जनजातियों की संख्या 23 अथवा 26 बताई गई है, किंतु यह स्पष्ट नहीं है कि वास्तव में कौन-कौन सी जनजातियाँ प्रमुख हैं। प्रायः लेखकों ने केवल 10, 12 या 18 जनजातियों का उल्लेख कर 'आदि' शब्द संपादित किया है।

प्रमुख जनजातियों में आदी, निशी, आपातानी, नोक्टे, वांचू, तागिन, मोंपा, शेरदुकपेन एवं मिश्मी का विशेष रूप से उल्लेख प्राप्त होता है। कालांतर में इनकी संख्या एवं उप-विभाजन में वृद्धि हुई, फलस्वरूप अनेक जनजातियाँ द्विअथवा त्रिविध में प्रतिसंयुक्त हो गईं। यथा, आदी जनजाति के अंतर्गत गालो एवं मिशिंग को प्राचीनकाल में 'आबोर' नाम से संबोधित किया जाता था, जो वर्तमान में स्वतंत्र प्रमुख जनजातियाँ मानी जाती हैं। समान रूप से मिश्मी जनजाति, जो प्रारंभिक रूप से एक इकाई थी, आज इदु मिश्मी, डिगारू (तारोन) मिश्मी एवं कामन (मिजू) मिश्मी-तीन उप-जनजातियों में विभक्त है।

इस प्रतिसंयोजन का प्रमुख कारण जनसंख्या वृद्धि या परिवर्तन रहा है। जनसंख्या संवृद्धि के साथ क्षेत्रीय एवं सामाजिक पहचानें विकसित हुई, जिससे एक ही मूल से नूतन उप-जनजातियाँ उद्भूत हुईं। द्वितीय कारण रीति-रिवाज, बोली, भाषा एवं पर्व-प्रथाओं में विविधता है। तृतीय आपसी मतभेद एवं सामाजिक प्रतिस्पर्धा को उत्तरदायी माना जाता है। प्रायः एक मूल जनजाति के द्वय समूह स्वयं को 'असली' एवं परस्पर को 'नकली' घोषित कर विखंडित हो जाते हैं-जैसे भारत-पाकिस्तान विभाजन का ऐतिहासिक उदाहरण।

इसी क्रम में 100 से अधिक उप-जनजातियों का भी उल्लेख है, किंतु उनके लिए भी कोई दृढ़ प्रमाण उपलब्ध नहीं। स्पष्ट है कि अरुणाचल प्रदेश की जनजातीय संरचना सतत परिवर्तनशील, गतिशील एवं बहुस्तरीय रही है, जिससे एक निश्चित सर्वमान्य वर्गीकरण अभी तक प्रतिष्ठित नहीं हो सका।

यहाँ जनजातियों का द्विविध वर्गीकरण प्रस्तुत है-प्रथम वर्ग में जनसंख्या-आधारित पाँच प्रमुख तानी वंशज जनजातियाँ सम्मिलित हैं, जबकि द्वितीय वर्ग में अन्य प्रमुख जनजातियों को वर्णमाला क्रम से सूचीबद्ध किया गया है।

निशि जनजाति:

सन् १८७३ ई. में इस जनजाति को डफला, निशी, निश अथवा निशांग आदि नामों से संबोधित किया जाता था। वर्तमान में इसका नाम न्यिशी (Nyishi) के रूप में मान्य है। 'न्यिशी' शब्द का तात्पर्य 'मनुष्य' से है।

यह जनजाति आबो तानी के प्रथम वंशज के रूप में परिगणित होती है। इनके पूर्वजों के विषय में कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इनकी परंपराएँ एवं कथाएँ लोककथाओं, लोकनृत्यों तथा लोकगीतों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से संरक्षित हैं।

वीरेंद्र परमार की पुस्तक *अरुणाचल प्रदेश: लोक जीवन और संस्कृति* में अरुणाचल की जनजातियों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि इस ग्रंथ में भी 26 जनजातियों का पूर्ण विवरण नहीं है, तथापि इसमें 18 जनजातियों का उल्लेख है। इसमें न्यिशी एवं हिलसमीरी को पृथक-

पृथक जनजातियों के रूप में दर्शाया गया है, किंतु वर्तमान में दोनों को एक ही न्यिशी जनजाति के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है।

खम्बा एवं मेंम्बा जनजातियों को प्रायः एक साथ उल्लिखित किया जाता है, जबकि वास्तविकता में ये दो स्वतंत्र प्रमुख जनजातियाँ हैं। न्यिशी जनजाति कमले, याजाली, कुरुङ कुमें, अपर सुबनसिरी, पूर्वी कामेंग, निचली सुबनसिरी, क्रादादी एवं पापुम पारे आदि जिलों में व्यापक रूप से निवास करती है।

ऐतिहासिक साक्ष्यों से विदित होता है कि प्राचीन काल में इन क्षेत्रों के न्यिशी समुदायों को भौगोलिक स्थिति के आधार पर विविध नामों से जाना जाता था। उदाहरणस्वरूप, पूर्वी कामेंग के न्यिशी को बंगनी, निचली सुबनसिरी के न्यिशी को निशांग तथा पापुम पारे के न्यिशी को निश कहा जाता था। प्राचीन असमिया ग्रंथों में इन्हें 'डफला' नाम से भी संबोधित किया गया है। 'डफला' असमिया भाषा का पद है, जिसका अर्थ 'असभ्य' अथवा 'जंगली' होता है।

असमिया स्रोतों एवं मौखिक परंपराओं से ज्ञात होता है कि पूर्वार्ध में न्यिशी जनजाति के लोग मैदानी असम क्षेत्रों में लूटपाट करते थे। स्थानीय बुजुर्गों के कथनानुसार, पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि सीमित होने के कारण तथा फसलों के कीटों, बाढ़ अथवा जंगली हाथियों द्वारा नष्ट होने पर लोग मैदानी क्षेत्रों से नमक एवं चावल आदि आवश्यक वस्तुओं की लूट किया करते थे। वर्तमान में इन्हें 'डफला' नाम से नहीं पुकारा जाता। इस प्रसंग का उल्लेख एल. एन. चक्रवर्ती रचित एवं सच्चिदानंद चतुर्वेदी अनूदित पुस्तक *अरुणाचल का* आदिकालीन इतिहास में भी उपलब्ध है।

'न्यिशी' शब्द का अर्थ 'मानव' है। यह आबो तानी वंश की प्रथम उत्तराधिकारी मानी जाती है। न्यिशी समुदाय की एक प्रचलित लोककथा के अनुसार, निशि एवं बाघ सगे भाई थे- जिनमें

से एक बाघ बन गया, जबकि दूसरा निशि के रूप में मानव बना रहा। इस कथा का उल्लेख वीरेंद्र परमार की उक्त पुस्तक में है। यद्यपि इसकी प्रामाणिकता का प्रत्यक्ष ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, तथापि यह ग्रामीण क्षेत्रों में मौखिक परंपरा के रूप में जीवंत है।

वीरेंद्र परमार ने न्यिशी वंशावली का भी वर्णन किया है- "आबो तानी का पुत्र आतु न्या, आतु न्या का पुत्र हेरिन, हेरिन का पुत्र रिंगदो तथा रिंगदो के तीन पुत्र दोदुम, दोल एवं दोपुम। ये तीनों अपने-अपने उपवर्गों के मूल पुरुष माने जाते हैं।"

विशेष रूप से, समकालीन न्यिशी बुजुर्गों की स्थानीय उच्चारण परंपरा एवं मौखिक इतिहास के अनुसार इन नामों में भाषिक संशोधन आवश्यक है। 'न्या, हेरिन, रिंगदो' के स्थान पर सही रूप 'ञिया, हरिन, रीनदो' हैं। जनजातीय मान्यतानुसार प्रथम ऊई तानी का आगमन हुआ, फिर न्यिकुम तानी तथा उसके पश्चात आतु ञिया (ञिया तानी) उत्पन्न हुए। आतु ञिया से हरिन, हरिन से रीनदो तथा रीनदो से तादो का जन्म हुआ। तादो के पाँच पुत्र हुए, तादो के पाँच पुत्र हुए, जिन्हें पांच प्रमुख कबिलों के रूप में जाना जाता है। ये कबीले निम्नलिखित हैं-

1. आच्छ दोपुम- इसके अंतर्गत ङ्गुरंग, हिलंग, हिबा आदि उपवर्ग सम्मिलित हैं।
2. पाई दोदुम- इसके अंतर्गत तीन उपसमूह आते हैं:
    I. हीनाआब- नाबाम, बेंगिया आदि;
    II. गोयांगआब- ताबा, तेरी, कारा, त्सांग आदि;
    III. तारा आब- ताना, ताचांग, डिबिया आदि।
3. पायो दोल- इसके अंतर्गत चारु, तादार आदि वंश सम्मिलित हैं।
4. पको न्यिबी- इसके अंतर्गत आदी, गालो, आपातानी आदि समुदाय आते हैं।

5. अन्यिया हरी- इस कबिले के अंतर्गत ड्गुरी तथा ड्गुहा आब (जिनमें गोलो, चेरा आदि उपवंश सम्मिलित हैं) को प्रमुख माना जाता है।

न्यिशी जनजाति का समाज पितृसत्तात्मक संरचना वाला है। इसमें वंशानुगति, उत्तराधिकार एवं सामाजिक दायित्व पिता से पुत्र की ओर अग्रसर होते हैं।

आर्थिक दृष्टि से ये लोग कृषि-प्रधान जीवनयापन करते हैं तथा झूम चाशनी के साथ-साथ जलरोपण खेती दोनों प्रणालियों का अवलंबन करते हैं। आहार में मांसभक्षण इनकी प्राथमिकता रहती है। पारंपरिक रूप से बहुपत्नीत्व प्रथा प्रचलित रही है, जिसमें एक पुरुष के एकाधिक विवाह सामाजिक मान्यता प्राप्त है।

न्यिशी जनजाति का प्रमुख लोकनृत्य 'रिकहम पादा' है, जिसका प्रदर्शन उत्सवों, विवाहों एवं सामुदायिक समारोहों में विशेष रूप से होता है।

धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से, न्यिशी जनजाति तीन प्रमुख पर्व-त्योहारों का उत्साह पूर्वक आयोजन करती है-

1. बूरी-बूत उत्सव- यह पर्व प्रतिवर्ष 6 फरवरी को मनाया जाता है, विशेषतः कमले जिले के न्यिशी समुदाय द्वारा।

2. न्योकुम यूलो उत्सव- यह पर्व 26 फरवरी को मनाया जाता है और मुख्यतः पापुम पारे और पूर्वी कामेंग जिले के न्यिशी लोग इसे मनाते हैं।

3. लुंगते यूलो उत्सव- यह पर्व अप्रैल माह में मनाया जाता है, जो प्रायः कुरुंग कुमें जिले के न्यिशी समुदाय में लोकप्रिय है।

न्यिशी जनजाति अरुणाचल प्रदेश की प्रधान जनजातियों में अग्रणी है। इसकी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संरचना परंपरागत मूल्यों पर टिकी हुई है। यह आबो तानी वंश से अपनी

उद्गति का दावा करती है तथा मौखिक परंपराओं के द्वारा अपनी वंशावली को संरक्षित रखती है। समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था प्रचलिता है, जबकि झूम चालुक्य एवं जलचारी खेती इसके प्रमुख जीविकोपार्जन हैं।

न्यिशी समाज की अद्वितीय सांस्कृतिक छवि बहुपत्नी प्रथा, मांसभक्षिता एवं सामूहिक नृत्य 'रिकाम पादा' में प्रतिबिम्बित होती है। इसके प्रमुख उत्सव-बूरी-बूत, न्योकुम यूलो तथा लुंगते यूलो-जनजातीय संवाद, धार्मिक निष्ठा एवं सांस्कृतिक वैभव के प्रतीक है।

आदी जनजाति:

'आदी' शब्द का तात्पर्य पर्वतवासी से है। ब्रिटिश काल में इन्हें 'आबोर' नाम से संबोधित किया जाता था-यह पद असमवासियों द्वारा प्रचारित हुआ। जैसे निशी को 'डफला' कहा गया, उसी प्रकार आदी को 'आबोर' पद से अभिहित किया गया। 'आबोर' का अर्थ है-स्वतंत्र, दुर्गम एवं अपरिचित जाति। यह परिभाषा *अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास* ग्रंथ में स्पष्ट है। प्राचीनकाल में 'आदी' नाम प्रचलित न था; वर्तमान में 'आबोर' के स्थान पर आदी जनजाति नाम स्थापित हो गया है।

आदी जनजाति मुख्यतः पूर्वी सियांग, अपर सियांग, निचली डिबांग वैली एवं शी-योमी जिलों में निवास करती है। इनके क्षेत्र में देबिंग, रायांग, सिले, रानी, मेंबो, सिगर, पांगकंग, बोलेन, पागिन आदि सम्मिलित हैं। डॉ. वेरियर एल्विन ने 'आबोर' जनजाति को द्विविध विभक्त किया था—प्रथम आदी समूह, जिसमें मियोंग, पादम, पासी, पंगगिस, शिमोंग, बोरी, अशिंग, तंगम आदि उपसमूह सम्मिलित थे; द्वितीय गालो समूह, जिसमें रामोस, बोकार, पैलिबोस आदि आते थे। अब ये

दोनों स्वतंत्र प्रमुख जनजातियों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। आदी की स्वतंत्र बोली, पर्व-प्रथा एवं जीवनशैली है।

यह जनजाति अनुशासन एवं व्यवस्था पर आधारित है। आदी के अंतर्गत अनेक उपजनजातियाँ हैं-जैसे पादम, मियोंग, पासी, पगी, बोरी, ओशिंग, टंगम, मिल्लोर आदि। प्रत्येक की वेशभूषा, नियम-नीतियाँ एवं रीति-रिवाज भिन्न हैं। गालो जनजाति की भी पृथक बोली, उत्सव एवं पहचान है।

डॉ. वेरियर एल्विन ने *A Philosophy for North East Frontier Agency* में आदी जनजाति का परिभाषन प्रस्तुत किया है। इन्हें द्वय समूहों में वर्गीकृत किया गया-प्रथम आदी जनजाति, जिसमें मिन्योंग, पादम, पासी आदि उपजनजातियाँ; द्वितीय गालो, जिसमें रामो, बोकर, पैलिबोस आदि सम्मिलित हैं।

"The Adis fall into two main division – the Minyongs, Padams, Pasis, Panggis, Shimongs, Boris, Ashings, and Tangams- and the Gollong groups, with which may be associated the Ramos, Bokars and Paili bori of the far North"[10]

कुछ उप-जनजातियाँ वर्गीकरण में विसंगत दिखाई देती हैं- जैसे बोरी, बोकार एवं रामोस, जो आदी जनजाति के अंतर्गत आती हैं, न कि गालो समूह में। डॉ. वेरियर एल्विन की पुस्तक *A Philosophy for North East Frontier Agency* में अनेक तथ्यात्मक अशुद्धियाँ हैं।

प्राचीन काल में आदी जनजाति में मुसुप एवं रासेंग नामक सामूहिक भवन प्रचलित थे, जो युवा लड़कों-लड़कियों के समूहों हेतु प्रयुक्त होते थे। लड़कियों के निवास को रासेंग तथा लड़कों को

मुसुप कहा जाता था। पंचायत या सभा भवन को 'केबांग' नाम से अभिहित किया जाता था, जिसे सभा-गृह भी कहते थे।

जैसे आपातानी में लापांग-बुलयांग, निशी में ञेलदोकुम को नाम्म तथा नोक्टे में पोह के समान, आदी में 'केबांग' प्रचलित है। इसे ग्राम सभा या पंचायत भवन भी माना जा सकता है, जहाँ गाँव वासी समस्याओं का समाधान एवं मुद्दों पर विचार-विमर्श हेतु एकत्र होते हैं।

मुसुप में किशोर-समूह तथा रासेंग में किशोरियाँ निवास करती थीं। दोनों भवनों में चूल्हा (मेहरुम) होता था, जहाँ लड़कियाँ गालह (वस्त्र) बुनती थीं। अब यह परंपरा लुप्तप्राय हो चुकी है तथा सिलाई-बुनाई कला धीरे-धीरे विलुप्त हो रही हैं।

'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक में मुसुप का विस्तार से उल्लेख है– "मुसुप लड़कों की गतिविधियों और भावी जीवन के प्रशिक्षण का केंद्र होता है। वैसे ही अविवाहित लड़कियों के संगठन को रासेंग कहते हैं। अविवाहित युवतियां रात को भोजन के बाद रासेंग में एकत्रित हो जाती हैं और रात को वहीं सोती हैं। यहाँ पर रात तक लड़कियाँ सूत काटने और कपड़ा बुनने का काम करती हैं। एक दूसरे की सहायता करना यहाँ का नियम है। बिना किसी प्रशिक्षण केंद्र में गए, लड़कियाँ यहाँ कपड़ा बुनने की कला में प्रवीण हो जाती हैं। कपड़ों की नई-नई डिजाइन इसी समय तैयार होती हैं। रासेंग में ही लड़कियां अनुशासन में रहना और बड़ों की आज्ञा मानना सीखती हैं।"[11]

हमारा अरुणाचल *प्रदेश* पुस्तक में 'मोसुप' का उल्लेख है, किंतु सही रूप 'मुसुप' है। समान रूप से 'राशिंग' पद त्रुटिपूर्ण है- सही 'रासेंग' है। उक्त ग्रंथ में अनेक तथ्यात्मक अशुद्धियाँ हैं, जिनका संशोधन आवश्यक है।

आदी जनजाति का समाज पितृसत्तात्मक संरचना वाला है। इसके प्रमुख लोकनृत्य 'पोनुंग' एवं 'देलोंग' हैं। 'पोनुंग' स्त्रियाँ प्रस्तुत करती हैं, जबकि 'देलोंग' पुरुषों तक सीमित है। इस जनजाति में पुत्रियों के प्रति माता-पिता का स्नेह अग्रणी है- यह लिखित रूप में अभिलिखित न होने पर भी अनेक अनुभवों एवं कथनों से सिद्ध है।

हर जनजाति में पुत्रियों का प्रेम प्राप्त होता है, किंतु आदी में यह अपेक्षाकृत प्रबल है। विवाहोत्तर कन्या एवं दामाद को दीर्घकाल निवास का अधिकार प्राप्त है। मिन्योंग उपसमूह में विवाह प्रक्रिया सरल एवं सहज है। वर पक्ष एक महागिलहरी, अदरक चटनी एवं आपोंग (स्थानीय मधु) ग्रहण कर कन्या गृह प्रस्थान करता है। सहमति मिलने पर विवाह संपन्न होता है।

आदी जनजाति की विवाह विधि इस प्रकार है-युवक विवाहेच्छा प्रकट करने पर माता-पिता गाँव के प्रवरों को सूचित करते हैं। बुजुर्ग द्वय पक्षों से सहमति ग्रहण करते हैं। स्वीकृति पर प्रक्रिया अग्रसर होती है। मध्यस्थ के रूप में एक वृद्धा नियुक्ति होती है, जिसे 'अरेबिना' कहा जाता है। अन्य जनजातियों के समान मिथुन, गौ, सूकर, छागल, मत्स्य, कुकुट आदि भेंट अनिवार्य नहीं। केवल गिलहरी, अदरक चटनी एवं कालो आपोंग से विवाह पूर्ण होता है। यह विधि अत्यंत सरल है। कतिपय स्रोतों के अनुसार यह प्रथा मिन्योंग- विशेष न होकर सम्पूर्ण आदी जनजाति में प्रचलित है।

इसका उल्लेख 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक में भी मिलता है- "मिन्योंग लोगों में विवाह तय करने की दूसरी प्रथा है। जब लड़का विवाह की इच्छा प्रकट करता है, तब गाँव के बड़े-बड़ों को सूचित किया जाता है। यदि वे प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं, तो बात आगे बढ़ती है। एक बुजुर्ग महिला को मध्यस्थ की भूमिका निभानी पड़ती है। उसे 'अरेबिना' कहते हैं। सुखी गिलहरी, मास और आपोंग लेकर वह लड़की के घर जाती है। वह जाकर कहती है- 'मैं कुछ सब्जी की तलाश

में आई हूँ,' जिससे विवाह का अभिप्राय होता है। फिर दोनों ओर से मंजूरी हो जाने पर वह बुजुर्ग महिला अपनी भेंट (आपोंग कादुंग) दे देती है।'[12]

आदी समाज में लड़कियों को बहुत सम्मान और प्रेम दिया जाता है। निशि और नोक्ते समाज की तरह यहाँ लड़कियों को शादी के साथ-साथ ससुराल नहीं जाना पड़ता। यहाँ लड़की ही घर की लक्ष्मी मानी जाती है। इसलिए शादी के बाद भी लड़की जब चाहे अपने माता-पिता के यहाँ रह सकती है। समाज में ऐसा विश्वास है कि लड़की का शादी के बाद घर छोड़कर चला जाना परिवार के लिए बड़ा नुकसान होता है। लड़की के परिवार में एक कार्यकर्ता की कमी हो जाती है, जबकि ससुराल में एक अतिरिक्त सदस्य बढ़ जाता है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक में उल्लेख है– "आदी समाज में यह विश्वास है कि लड़की का घर छोड़कर जाना परिवार का बड़ा नुकसान होता है। दुल्हन की कीमत इस नुकसान की पूर्ति नहीं कर पाती। लड़की के जाने से माता-पिता को होने वाले आर्थिक नुकसान की पूर्ति कई वर्षों तक जारी रहती है। इसके फलस्वरूप, लड़के और उसके रिश्तेदारों को कई साल तक लड़की के माता-पिता को भेंट के रूप में वस्तुएं देना आवश्यक होता है। लड़की के घर एक काम करने वाले व्यक्ति की कमी हो जाती है, जबकि लड़के के घर एक अतिरिक्त कार्यकर्ता बढ़ जाता है। इसलिए लड़के को अपने समूह के साथ पकड़ी गई मछलियां अपने ससुराल वालों को देनी पड़ती हैं। इसी प्रकार, जाल और भाले से पकड़ी गई मछलियों का भी आधा हिस्सा लड़की के घर भेजा जाता है। इसी तरह सामूहिक शिकार में प्राप्त शिकार का भी हिस्सा लड़के को अपने ससुराल वालों को देना पड़ता है।"[13]

आदी समाज में मृतकों के अंतिम संस्कार के लिए प्रायः दफनाने की परंपरा अपनाई जाती है। यदि कोई बच्चा माँ के पेट से ही मृत जन्म लेता है, तो उसकी लाश को कपड़े में लपेटकर किसी पेड़ की डाल पर टांग दिया जाता है। बड़े लोगों के मरने पर किसी कम्बल को टुकड़ों में काटने का

नियम भी है। प्राकृतिक कारणों से मरने वालों के लिए अलग स्थान निर्धारित होता है, जबकि दुर्घटना या आग में जलकर मरने वालों को अलग स्थान पर दफनाया जाता है। आदी जनजाति में अलग-अलग नियम और परंपराएँ पाई जाती हैं। पादाम, पासी और मियोंग लोग भी विशिष्ट रीति-रिवाज अपनाते हैं। पादाम और मिन्योंग लोग बाल काटने की परंपरा मिश्मी जनजाति की तरह अपनाते हैं। इसके पीछे कहा जाता है कि पुराने समय में जो लोग युद्ध करते थे या युद्ध में जाते थे, वे ऐसा बाल काटते थे ताकि दुश्मन बाल पकड़ न सके। दूसरा कारण यह था कि उस समय कैंची उपलब्ध नहीं थी, इसलिए दाँतों से काटना आसान लगता था। तीसरा कारण यह भी बताया जाता है कि यह उस समय का नया फैशन था, जो बाद में गायब हो गया। आदी जनजाति के प्रमुख पर्व सोलुंग और आरन हैं। एल. एन. चक्रवर्ती और अनुवादक सच्चिदानंद चतुर्वेदी की किताब 'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' में आदी जनजाति का इतिहास विस्तार से दिया गया है। इसमें बीच-बीच में 'आदि' शब्द का प्रयोग किया गया है, जबकि सही शब्द आदी ही है, न कि 'आदि'। अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' में उल्लेख है कि "असमिया भाषा में 'आबोर' का अर्थ है- एक स्वतंत्र, दूरवर्ती, अज्ञात जाति। यह शब्द कुछ जनजातियों तथा उनकी उपजातियों के लिए पर्याप्त रूप से प्रयोग में लाया जाता रहा है, विशेषकर उन लोगों के लिए जो मिरी क्षेत्र के पूर्वी पहाड़ियों में दिबांग नदी तक निवास करते हैं। परंतु विडंबना यह है कि उक्त क्षेत्र के निवासी स्वयं को आदी कहते हैं, न कि 'आबोर'। श्री गेट के अनुसार, इस जनजाति का सबसे पहला संदर्भ चीनी यात्री हुएनसांग के माध्यम से प्राप्त होता है, जिसने सातवीं शताब्दी की शुरुआत में बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिए संपूर्ण भारत का भ्रमण किया। इसके बाद 17वीं शताब्दी के डफला आक्रमणों को छोड़कर उस समय के सीमांत इतिहास के बारे में बहुत कम ज्ञात है। हुएनसांग के बाद, हम श्री जुमला का साथ देने वाले फातियाह-ए-इब्रियाह के लेखक से सुनते हैं कि उन पहाड़ियों पर मिरी, मिशमी, डफला और कुछ

अन्य जनजातियाँ भी रहती थीं। आदी जनजाति के बारे में सबसे पहली बार हमें 18वीं शताब्दी के अंत में ज्ञात होता है।[14]

वेरियर एल्विन ने एक अन्य मिथक का संकलन किया है, इस मिथक के अनुसार: "आरंभ में केवल रात्रि थी, दिन और प्रकाश का कहीं कोई नामो-निशान नहीं था। संसार में केवल वियु (आत्मा) का निवास था और मानव का जन्म नहीं हुआ था। कायुम का पुत्र युमकांग थे, युमकांग का पुत्र कासी, कासी का पुत्र सियांग, सियांग का पुत्र आबो, आबो का पुत्र बोमुक, बोमुक का पुत्र मुकसेंग, मुकसेंग का पुत्र सेदी-मेंलो, सेदी-मेंलो का पुत्र दिलिंग था। दिलिंग का पुत्र लितुंग था, लितुंग का पुत्र तुए, तुए का पुत्र येप्पे और येप्पे की पुत्री पेदोंग नाने थी। पेदोंग नाने का पुत्र दोनी अथवा तानी था। दोनों ही सृष्टि का आदि पुरुष बने।"[15]

सही वंशानुक्रम को स्थानीय परंपराओं और बुजुर्गों की मान्यता अनुसार इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है कायुम → युमकांग → कासी → सियांग → आबो → बोमुक → मुकसेंग → सेदी-मिलो → दिलिंग→ लितुंग → तुए → येप्पे → पेदोंग → दोनी → निलो → लोकुंग → कुमिंग-कुरी → आबो तानी (महान दादा/पिता)। आदी जनजाति मुख्यतः पानी की खेती पर आधारित जीवनयापन करती है और इनके घर सामान्यतः मैदानी या समतल क्षेत्रों में स्थित होते हैं।

तागीन जनजाति:

तागीन जनजाति परिश्रमी एवं आत्मनिर्भर समुदाय है। यह मुख्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में अवस्थित है तथा कृषि इनके जीवन का मूल आधार है। ये मिजोरमवासियों की भाँति खाइयों एवं ढलानों पर घर बनाते हैं।

प्राचीन काल में तागीन लोग नदियों-नालों से बाँस की खोंड़ों में जल संग्रह कर पहाड़ी गृहों तक पहुँचाते थे। तत्कालीन बर्तनों के अभाव में बाँस में ही अन्न पकाया जाता था। इनका भोजन वन्य फल-मूल, नदीय मत्स्य, क्षुद्र पक्षी, गिलहरी, हरिण एवं वानरी वानरों के मांस से परिपूर्ण था, जिसे अग्निप्रकोष्ठ में भक्षित किया जाता था।

तागीन जनजाति का क्षेत्र दापोरिजो, दुम्पोरिजों, ताक सिंग, तालिहा (चाइना बॉर्डर) और अपर सुबनसिरी जिले में फैला हुआ है। उनके गाँव आमतौर पर एक-दूसरे के पास नहीं होते, बल्कि दूर-दूर फैले हुए क्षेत्र में स्थित होते हैं। इस विषय में दयाल जी ने ‘हमारा अरुणाचल प्रदेश’ में लिखा है: “ये लोग दूर-दूर बिखरे हुए गाँवों में रहते हैं। इनके गाँव प्रायः पहाड़ों की ढलानों पर स्थित होते हैं। शेष महीनों के भोजन की व्यवस्था के लिए उन्हें दूर-दूर फैले जंगलों के फलों, कंद-मूलों तथा पशुओं के शिकार पर निर्भर रहना पड़ता है। ये लोग शिकार करने के लिए विष के बुझे वाणों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार उपजाऊ भूमि का अभाव उनके जीवन के लिए बड़ी चुनौती बना हुआ है, जिसका वे हँसते-हँसते मुकाबला करते हैं। अपनी इस ‘झूम-खेती’ से जो थोड़ी-बहुत फसल, जैसे चावल और मकई, उन्हें प्राप्त होती है, उससे ही वे अपना जीवन यापन करते हैं। कभी-कभी मिर्च, अदरक, प्याज, बीन, बैंगन और कुछ अन्य सब्जियां भी वे अपने खेतों में उगा लेते हैं।”[16]

इस प्रकार तागीन जनजाति का जीवन कठिन पर सजीव और पर्यावरण के अनुकूल है। उनकी कृषि, शिकार और जंगल पर निर्भरता उन्हें आत्मनिर्भर बनाती है और उनके साहस, परिश्रम तथा जीवट को स्पष्ट रूप से दर्शाती है। प्राचीन समय में इन जनजातियों को ‘डफला तागीन’ कहा

जाता था। बाद में उन्हें अलग से तागीन जनजाति का नाम दिया गया। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक में उल्लेख है: "पहले उन्हें 'डफला' जनजाति के लोगों के समकक्ष मानकर 'डफला-तागीन' कहा जाता था, किन्तु सुबनसिरी जिले के उत्तर-पूर्व में रहने वाले ये लोग एक अलग जनजाति के हैं।"[17]

एल. एन. चक्रवर्ती ने भी लिखा है कि पहले तागीन जनजाति के विषय में जानकारी बहुत कम थी। इन्हें डफला जनजाति के अंतर्गत माना जाता था, लेकिन बाद में उन्हें स्वतंत्र जनजाति के रूप में गिना गया। पहले निशि जनजाति के अंतर्गत इन्हें शामिल माना जाता था, किन्तु तागीन जनजातियों की बोली, भाषा, संस्कृति, पोशाक और पर्व निशि जनजाति से भिन्न थे। इस भिन्नता के कारण तागीन जनजाति को अलग पहचान मिली और यह एक प्रमुख जनजाति के रूप में स्थापित हुई।

'द नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर ऑफ बंगाल' में मि. मैकेन्जी लिखते हैं: "पहले उपलब्ध अभिलेखों में तागीन के विषय में बहुत कम संदर्भ प्राप्त होते हैं। वर्तमान में इसके बारे में बहुत-सी सूचनाएँ उपलब्ध हैं, विशेष रूप से वर्ष 1953 में घटित अचिंमोरी घटना के बाद। नॉर्थ लखीमपुर की सीमा पर रहने वाली डफला जनजाति ही तागीन-डफला के रूप में जानी जाती है। परंतु बहुत समय बाद यह तथ्य प्रकाश में आया कि तागीन एक विशेष जनजाति है, जो ड्रेकोली, तालिहा और उसके आगे उत्तरी सीमा चौकी के निकट क्षेत्र में निवास करती है। यह सुबनसिरी जनपद का पूर्वी क्षेत्र है। इस जनजाति की अनुमानित जनसंख्या लगभग चौबीस हजार है, जो सियांग और सुबनसिरी जनपद में फैली हुई है। वर्ष 1911 में एक सैनिक सर्वेक्षण दल ने इस क्षेत्र का दौरा किया था, परंतु उसके बाद चालीस वर्षों के अंतराल में कोई भी उस क्षेत्र में नहीं गया।"[18]

उनकी पारंपरिक पोशाक लाल रंग की होती है- नीचे के वस्त्रों से लेकर सिर पर पहने जाने वाली टोपी तक, प्रायः पूरा परिधान लाल रंग का होता है। तागीन पुरुष भी निशि और आपातानी जनजातियों की भाँति सिर पर टोपी पहनते हैं, जिसे वे अपनी भाषा में ''बोतुंग'' कहते हैं। यह बोतुंग बाँस (बेंत) से बनाया जाता है। तागीन पुरुष प्रायः लंबे केश रखना पसंद करते हैं। बोतुंग केवल बाँस से ही नहीं, बल्कि कभी-कभी मिथुन या हिरण की खाल से भी बनाया जाता है।

'हमारा अरुणाचल प्रदेश' में वर्णित है- ''तागिन लोग अपने सिर पर बाँस का बना हैट पहनते हैं, जिसे ये अपनी भाषा में 'बोतुंग' कहते हैं। कभी-कभी ये लोग मिथुन या हिरण की खाल से बना हैट भी पहनते हैं। हैट के पीछे की ओर चमड़े का एक टुकड़ा लगा रहता है, जो गर्दन के पीछे झूलता रहता है और सुरक्षा की दृष्टि से गर्दन को ढके रखता है। किसी दुश्मन द्वारा अचानक पीछे से तलवार का वार होने पर व्यक्ति की गर्दन कटने से बच जाती है।''[19]

तागिन एवं निशी जनजातियाँ बहुपत्नीत्व प्रथा का अनुसरण करती हैं। ये संयुक्त कुटुम्ब में निवास करते हैं, जहाँ प्रत्येक पत्नी के लिए पृथक चूल्हा व्यवस्थित होता है। पत्निगण परस्पर संनादित होकर कृषि कार्य संभालती हैं तथा एक-दूसरे का सहयोग करती हैं।

तागीन लोग विविध आभूषण धारण करते हैं- हाथों में कंगन, कमर में बेल्ट और गले में माला। इनके नाम एवं संलग्न मान्यताएँ भिन्न हैं। इन सभी आभूषणों के नाम और उनसे जुड़ी मान्यताएं अलग-अलग हैं। स्त्रियां जो कमर में बेल्ट पहनती हैं, उसे तागिन में 'डिंगसे', निशि में 'हुही', आदी में 'सुमबी', गालो में 'ऊगी' और आपातानी में 'बियांग' कहा जाता है। ये आभूषण अलंकरण मात्र न होकर शारीरिक संरक्षण के प्रतीक भी हैं। तागीन पुरुषों का कटिपट्ट 'तायेन' कहलाता है, जो समाज में मूल्यवान वस्तु के रूप में आदृत है। पर्वकाल में इसे धारण कर पुरुष गौरवांवित एवं आत्माभिमानी भाव से विगमन करते हैं। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' में उल्लेख है-

“यह पुरुषों की कीमती वस्तु समझी जाती है। अपने गाँव से बाहर जाते समय इस बेल्ट को पहनकर जाना गौरव की बात मानी जाती है। इस बेल्ट को इनकी भाषा में ‘तायेन’ कहते हैं। इसी प्रकार स्त्रियां भी कमर में धातु की बनी पतली चपटी प्लेट पहनती हैं जो बेल्ट में लटकी रहती हैं। खेत में काम करते समय पुरुष एवं स्त्रियां अपनी बेल्ट में ‘माह’ (एक प्रकार की छोटी सिगड़ी) लटकाए रहते हैं, जिसमें जलती हुई आग से धुआं निकलता रहता है। यह धुआं उनके शरीर को विषैले मच्छरों के काटने से रक्षा प्रदान करता है।”[20]

तागीन जनजाति प्रकृति के प्रति गहन अनुराग एवं आसक्ति रखती है। ये अपनी मातृभूमि को आदर एवं भक्ति के भाव से संनादित करते हैं। इसी हेतु वे अपनी भूमि को अन्य जनजातियों को विक्रय नहीं करते। उनकी मान्यता है कि परकीय को भूमि प्रत्यापन करने पर भूमिदेवता ‘गिडावारु’ क्रुद्ध हो जाते हैं। यदि अन्य जनजाति का कोई व्यक्ति उनके ग्राम में बसावट हेतु आता है, तो तागीन लोग उसे निःशुल्क भूमि प्रदान करते हैं। कालक्रमेण वह गाँव का अभिन्न अंग बन जाता है। उपजाऊ भूमि के अभाव में वे वन का लघु भाग दान देते हैं, जिसे वह शुद्धीकरण कर कृषियोग्य बना लेता है। ‘हमारा अरुणाचल प्रदेश’ पुस्तक में उल्लेख किया गया है कि- “तागीन जनजाति अपनी भूमि के प्रति गहरा लगाव रखती है, परंतु बदलते समय के साथ यह परंपरा धीरे-धीरे कम होती जा रही है। आज यह बात सुनने को तो मिलती है, पर देखने को बहुत कम मिलते है।”[21]

पहले के समय में इन जनजातियों का विवाह माँ-पिताजी द्वारा तय किया जाता था। लेकिन आजकल के समय में अपनी-अपनी पसंद से लड़का-लड़की शादी करते हैं। पहले के समय में तागीन जनजातियों के विवाह की प्रक्रिया के लिए किसी व्यक्ति का सहयोग लिया जाता था। वही मध्यस्थ व्यक्ति दुल्हन का मूल्य भी तय करता था। पहले के समय में विवाह की आयु लड़कों की सोलह-सत्रह वर्ष और लड़कियों की चौदह-पंद्रह वर्ष रहती थी। हमारा अरुणाचल पुस्तक में उल्लेख किया

है कि –"शादी-विवाह के मामले में लड़की और पिता किसी मध्यस्थ व्यक्ति का सहयोग लेते हैं। मध्यस्थ व्यक्ति ही लड़की के पिता के लिए 'दुल्हन का मोल' तय करता है। लड़कों का विवाह सोलह-सत्रह वर्ष तथा लड़की का विवाह चौदह-पंद्रह वर्ष की आयु में कर दिया जाता है। धनी व्यक्ति, जो एकाधिक बार 'दुल्हन का मोल' दे सकते हैं, एक से अधिक विवाह भी कर लेते हैं। विवाह के बाद एक उत्सव होता है, जिसे 'यूलों' कहते हैं। अधिकांशत: लोग एक ही विवाह से संतुष्ट रहते हैं। मामा और बुआ की संतानों का विवाह बहुत शुभ माना जाता है। पिता की मृत्यु हो जाने पर पुत्र को भी विमाताएँ विरासत के रूप में मिल जाती हैं।[22]

तागीन जनजाति प्रकृति-पूजक है। ये दोन्यी-पोलो धर्म का अनुसरण करती है, जहाँ 'दोन्यी' का तात्पर्य सूर्य तथा 'पोलो' का चंद्र से है। तागीन लोग सूर्य-माता (दोन्यी) एवं चंद्र-पिता (पोलो) की उपासना करते हैं। ये अपने मृतकों को पारिवारिक गृहावास के आसन्न भूमि में अंत्येष्टि करते हैं। ऐसा करने का विश्वास है कि इससे मरने वाले व्यक्ति की आत्मा परिवार के साथ रहती है और परिवार की सुरक्षा करती है। 6 जनवरी को तागीन जनजाति सी-दोन्यी त्योहार मनाता है। इसके प्रमुख लोक नृत्य हैं: सी-दोन्यी नृत्य, नाह नृत्य, और सीहोमव नृत्य।

गालो जनजाति:

गालो जनजाति अरुणाचल प्रदेश की एक प्रधान जनजाति है। इसमें कोई उप-जनजाति नहीं है। अतिथि-सत्कार में यह अग्र गण्य मानी जाती है। इसका मुख्य निवास पूर्वी एवं पश्चिमी सियांग, अपर सुबनसिरी, लेपारादा तथा निचली सियांग जिलों में है।

गालो लोग सहायक स्वभाव के एवं स्वच्छता-प्रिय होते हैं। पुरुष पत्नी-सेवा में संलग्न रहते हैं तथा उनके लघु- महान् कार्यों में सहायता करते हैं- श्रृंगार-सामग्री तक की देखभाल करते हैं। यह अरुणाचल की सर्वाधिक सुशिक्षित जनजातियों में गण्य है। इसका लोकनृत्य 'पोनुंग' है। गालो लोग कलाप्रिय एवं संगीत-रसिक होते हैं। ये जलरोपण खेती करते हैं, क्योंकि उनके क्षेत्र में पर्याप्त समतल भूमि उपलब्ध है।

'तिर्दु' नामक बाँसनिर्मित यंत्र से मत्स्यार्पण करते हैं। मत्स्योत्सारण हेतु नदी-नालों में 'काला पोका' (स्थानीय मधु) एवं 'तिर्काक' (बाँस प्याला) ग्रहण करते हैं। तिर्काक से पोका पान प्रिय है, विशेषतः वृद्धजन प्रिय करते हैं। गालो कृषक-प्रवृत्ति के परिश्रमी हैं। कृषिकाल में खेत-स्वच्छता से रोपण-कटाई तक निष्ठापूर्वक संलग्न रहते हैं।

पारंपरिक स्वादिष्ट व्यंजन 'आमिन-ताके' एवं 'पोका' है, जो पर्वों पर विशेषतः प्रतिष्ठापित होता है। गालो गृह चतुर्कोणीय विभक्त है- ञोदे, बागों, उदु एवं ञोसी। प्रत्येक का पृथक मान्यता एवं वैशिष्ट्य है। ञोदे में प्रवरजन (दादा-दादी, नाना-नानी), बागों में पुरुषजन (पिता, भ्राता), उदु में युवतियाँ (बहनें, दीदियाँ), ञोसी में गृहिणियाँ (माता, दायित्वभारिणियाँ) निवास करती हैं। इनका उल्लेख मिनाम उपन्यास में है।

गालो गृह पारंपरिक पद्धति से निर्मित होते हैं। ञोदे में दोसी इगिन स्थापित होता है। पूजादिवसे दोसी गिनसी को दुल्हिनोपमा इति, ताके, आमिन, पोका एवं रिमें से अलंकृत किया जाता है- जो शुभागम्य है। गृहागमनोपरांत उपो पर विस्तारित कर सुखाते हैं। धूपाभावे चूल्होपर रापको (मचान) पर आगार्द्रता से शीघ्र संशुष्क करते हैं। महिलाएँ हीपार-देकी (ओखली) से कूटती हैं, ओपो से शुद्ध करती हैं तथा ओसी-इगिन में संचय करती हैं। इस प्रकार गालो जीवन बाँस एवं बाँसोपकरणों के परितः संनादित रहता है।

गालो समाज में पारिवारिक संबन्धों को परम आदर है। प्रवरजन आदरणीय एवं उच्चस्थ हैं। पारिवारिक अनुशासन, पारस्परिक आदर एवं सहयोग की गहन भावना प्रखर है। रिमे इनाम गालो महिला-केंद्रित हस्तकला है। मिनाम में वर्णित है कि गालो स्त्रियः रुबु-ताप सहायता से सूत्राद् बेसेक-गाले (स्त्रीलपेट वस्त्र), जेपे-जैया (ओढ़नी-भामंडल), शॉल एवं ताम्गो (पुरुष अचकन) बुनती हैं। प्रत्येक सूत्र में श्रम, प्रेम एवं कलानिपुणता प्रतिबिम्बित होती है। विविध रंगसूत्रों से जीवन-अनुभव, प्रकृति-भक्ति एवं सौंदर्य-बोध रचती हैं। गालो स्त्रियों की पहचान जेसे कोरे बेसेक से है। गाले शब्द पादाम जनजातियों का शब्द है। गालो में इसे बेदू-बेसेक कहा जाता है, परंतु यह गाले नाम से ही प्रसिद्ध है। यूँ तो गाले हर प्रकार के होते हैं और अधिकांश जनजातियों की महिलाएँ इसे बुनती हैं, परंतु जेसे कोरे केवल गालो जनजाति के लोग ही बनाते हैं। जेसे कोरे का दो अवसरों पर विशेष महत्व होता है- विवाह के अवसर पर और मोपिन त्योहार के अवसर पर। विवाह से पूर्व स्त्रियाँ अपनी शादी की पोशाक, अर्थात जेसे कोरे, स्वयं बुनती हैं। प्राचीन काल में बेसेक घुटनों तक ही पहना जाता था, जिसे बेतु कहा जाता था, किंतु अब इसकी लंबाई बढ़कर पैरों तक पहुंच गई है, जो बेसेक कहलाने लगी है। 'मिनाम' उपन्यास में उल्लेख किया है कि– "ओमें ञिम यानी महिलाओं को बेलि जिगि ल, बेपों जोगो ल, तेक्सी बिनिर ला, तेक्पोर बोनोर ला" कहकर यह बताया गया है कि एक स्त्री का शरीर ढका हुआ ही अच्छा लगता है।"[23]

'अरुणाचल प्रदेश लोकजीवन और संस्कृति' पुस्तक में गालों जनजाति की उत्पत्ति को बताते हुए लिखा है कि –"गालो वर्ग की मान्यता है कि उनकी उत्पत्ति सिचि से हुई है। ये अपने पूर्व पुरुषों की वंशावली का इस प्रकार विवरण देते हैं – सिचि > सिबुक > बुकसिन > सिंतु > तुरी > रिनी अथवा तानी। जिस प्रकार आदी जनजाति का उद्भव अनिश्चित है, उसी प्रकार उनके मूल निवास और देशांतर गमन के संबंध में जानने के लिए भी हमें इनके मिथकों और लोक साहित्य का आश्रय

लेना पड़ता है।"[24] स्थानीय जनजातियों से वंश का सही पता चला कि- सीबों बोनयी से न्यिसी, सीसी से सिचाक, चाकरूम से रूमजी, जिमी से मीसीन, सिनतु से तुरी और रिनी से आबो तानी निकले हैं। गालो जनजाति में मोपिन त्योहार 5 अप्रैल को मनाया जाता है। गालो जनजाति के लोक नृत्य पोपीर और पोनुंग हैं।

आपातानी जनजाति:

आपातानी जनजाति अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध जनजाति मानी जाती है। इनका मुख्य निवास स्थान लोअर सुबनसिरी जिले की प्रसिद्ध जीरो घाटी है, जो अपनी प्राकृतिक सुंदरता और कृषि संस्कृति के लिए जानी जाती है। आपातानी समाज की पहचान उनके चेहरे पर बने पारंपरिक ठेतु (टैटू) और कृषि-आधारित जीवन शैली से होती है। ठेतु को वे श्रृंगार और सामाजिक गौरव का प्रतीक मानते हैं।

यह जनजाति अत्यंत शांतिप्रिय और मेहनती होती है। इनके पास मैदानी भूमि की उपलब्धता के कारण वे पानी खेती, कीवी, और प्लम की खेती में निपुण हैं। पर्यटन की दृष्टि से जीरो घाटी में शिवलिंग, तले वैली, मेघना गुफा, किले पखो, तरीन फिश फार्म, डोलो मंदो, हापोली व्यू, ज़ीरो पूतो और पाइन ग्रोव जैसे स्थान अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

'Democracy in NEFA' पुस्तक में आपातानी जनजाति की सामाजिक संस्था बुलियांग का उल्लेख किया गया है। बुलियांग को तीन प्रकारों में विभाजित किया गया है- आखा बुलियांग, यापा बुलियांग और अजांग बुलियांग।

"These buliang are men of character and ability, drawn from among the members of a lineage which, owing to its wealth and status, always furnishes one or two buliang, or chosen on account of their personal standing in the community. There are three types of buliang. The akha buliang are the principal leaders of the village, who even when too old to take a very active part in the life of the community must be consulted on all important matters. The yapa buliang are middle-aged men who carry on the day-to-day conduct of village affairs, settle disputes and keep the akha buliang informed of developments. The ajang buliang finally, are young men who act as messengers and assistants of the yapa buliang and function in some respects as the leaders and spokesmen of the younger generation."[25]

'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' पुस्तक में आपातानी जनजातियों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। इसमें लिखा है कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक, आपातानी जनजाति के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी। यानी यह धारणा नहीं थी कि आपातानी जनजाति भी इस क्षेत्र में निवास करती है। बाद में, सन् 1889 में किसी ने इस क्षेत्र का दौरा किया और पता चला कि यह भी एक स्वतंत्र जनजाति है। तब जाकर यह ज्ञात हुआ कि इस जनजाति की अपनी अलग पहचान और सांस्कृतिक विशेषताएं हैं। यह जनजाति मुख्य रूप से खेती, अनाज और मछली व्यापार के लिए प्रसिद्ध है। इसका उल्लेख किया है कि -"मैदानी क्षेत्र के निवासियों को उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक, आपातानी जनजाति के अस्तित्व के विषय में कोई जानकारी नहीं थी, क्योंकि श्री ए. मैकेंजी ने अपनी पुस्तक 'North East Frontier of Bengal' में इस जनजाति का कोई

उल्लेख नहीं किया था। आपातानी जनजाति का सबसे पहला उल्लेख मेजर ग्राहम द्वारा किया गया, जो डफला क्षेत्र में जाने वाले एक दल के लौटने के बाद प्रस्तुत किए गए प्रतिवेदन में मिलता है। श्री क्रो जो हींग चाय बाग के प्रबंधक थे और उन्होंने आपातानी क्षेत्र का दौरा वर्ष 1889 में किया था। ऐसा भी ज्ञात हुआ कि श्री क्रो के साथ आपातानी दल पहली बार मैदानी क्षेत्र में उतरा था। इसका अर्थ यह हुआ कि वर्ष 1889 के पूर्व तक आपातानी जनजाति का मैदानी क्षेत्र से कोई संबंध नहीं था। अब तक मैदानी क्षेत्र में उनके न आने का कारण डफला जनजाति द्वारा उत्पन्न बाधाएँ भी हो सकती हैं, क्योंकि डफला, आपातानी और मैदानी क्षेत्र के निवासियों के मध्य मध्यस्थता कर अपनी आय सुनिश्चित करते थे। श्री क्रो के आपातानी क्षेत्र दौरे के बाद, आपातानी लोग मैदानी क्षेत्र में आना प्रारंभ कर दिए। वे विशेष रूप से जोहींग चाय बाग में आते थे और अपने साथ आपातानी घाटी में उत्पादित वस्तुएँ लाते थे, जिनमें रबर का उत्पादन अधिक था।''[26]

आपातानी जनजाति स्वभाव से बड़े शांतिप्रिय होते हैं। निशि जनजाति की तरह वे लूटपाट या हिंसा नहीं करते और शॉर्ट टेम्पर या गुस्से वाले नहीं माने जाते। आपातानी लड़कियाँ और लड़के अत्यंत खूबसूरत और आकर्षक होते हैं। यहाँ के लोग चावल की खेती, कीवी, सेब, प्लम, संतरा और पाइन (पसा) आदि की खेती करते हैं। गाँव में सामाजिक व्यवस्था सुव्यवस्थित है। ड्री त्योहार के अवसर पर गाँव के सभी सदस्य- पुरुष, महिला, बच्चे, जवान और बुज़ुर्ग- अपने रंग-बिरंगे पारंपरिक पोशाक पहनकर पूजा स्थल पर पहुँचते हैं। पूजा स्थल में दो पुजारी रहते हैं: एक बड़ा पुजारी और एक छोटा पुजारी, जो बड़े पुजारी के मंत्र का पीछे-पीछे उच्चारण करता है। मंत्र उच्चारण समाप्त होने के बाद पशुओं की बलि अर्पित की जाती है। इसके पश्चात सामूहिक नृत्य होता है, गीत गाया जाता है, और नृत्य एवं गान के पश्चात भोजन का आरंभ किया जाता है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक में लिखते है कि - ''बड़े पुजारी के साथ छोटे पुजारी मंत्रों का उच्चारण करते हैं। बलि

देने के समय पशुओं पर चावल के आटे का लेप मल दिया जाता है। अलग-अलग देवताओं के नाम पर अलग-अलग बलि दी जाती है। बलि पशु का मांस सामूहिक भोज में प्रयोग होता है और सभी लोग इसे प्रसाद मानकर स्वीकार करते हैं। लड़कियां, विशेष रूप से आपोंग और खीरा, सभी लोगों में भोजन बांटती हैं। खाने-पीने के साथ-साथ नाच-गाना चलता रहता है। यह लड़के-लड़कियों का सामूहिक नृत्य होता है और उभरते कलाकारों के लिए यह एक सुअवसर प्रदान करता है। हँसी-ठहाके से वातावरण जीवंत और उत्साहपूर्ण बना रहता है। तीसरे दिन नाच-गाने के बाद सामूहिक भोज का आयोजन होता है। इस अवसर पर मेहमानों का विशेष स्वागत किया जाता है और सभी लोग परस्पर प्रेम और स्नेह के साथ मिलते हैं। इस प्रकार, इस अवसर पर अच्छी फसल होने की आशा लोगों में नई उमंग और उत्साह भर देती है।''[27]

ड्री त्योहार 5 जुलाई को मनाया जाता है। आपातानी जनजाति में लोक नृत्य और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का विशेष महत्व है। उनका पसंदीदा नृत्य प्री नृत्य है। इसके अलावा, आपातानी जनजाति के अन्य लोक नृत्य हैं दामीनदा और पाखू इतु। त्योहार के अवसर पर लोग पारंपरिक पोशाक पहनते हैं और सामूहिक रूप से पूजा, नाच-गान और भोज में भाग लेते हैं। यह आयोजन सामाजिक सौहार्द, सांस्कृतिक चेतना और एकता का प्रतीक होता है।

पूरोइक/सुलुंग जनजाति:

पुरोइक का अर्थ है- 'मनुष्य/मानवता'। पुरोइक जनजाति अपने आप को आकाशवासी 'खोर्डखिया' वंशज मानती है। इसका उल्लेख 'अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ' में मिलता है।

जहाँ वारु ताग नामक व्यक्ति अपने आप को बताते हैं, वह कहते हैं: 'मैं कोई सुलुंग नहीं हूँ, मैं पुरोइक हूँ, मनुष्य हूँ।' इस वाक्य से स्पष्ट होता है कि पुरोइक जनजाति सच्चा, ईमानदार, मेंहनती और सहनशील है। 'अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ' में जमुना बीनी लिखा है कि - "हम सुलुंग नहीं, हम पुरोइक हैं। पुरोइक! यानी मनुष्य! हम आकाशवासी 'खोर्डखिया' के वंशज हैं। पृथ्वी पर सुख और खुशहाली लाने के लिए उतरे थे। जहाँ उतरे वहाँ ताड़ वृक्षों की भरमार थी। हाँ, उस स्थान का नाम था 'साक्माखांग'।"[28]

पुरोइक जनजाति निम्नलिखित क्षेत्रों में निवास करती है: च्यांगताजों, पक्के केस्सांग, पीपु, बामेंग, लादा, सावा, सेजोंसा, सेप्पा, खेनेवा, कोलोरियांग, सरली, दामीन, पारसी परलों, न्यापिन, फास्संग, पालीन, पानीयसांग, ताली और पीपसोरंग। वे करा दादि, कुरुङ कुमें, पूर्वी कामेंङ और पक्के केस्साग जिलों में भी रहते हैं। पुरोइक जनजाति मुख्यतः झूम खेती अपनाती है, लेकिन जहाँ मैदानी क्षेत्र मिलता है वहाँ पानी की खेती भी करते हैं। यहाँ मक्का, धान, रागी, कद्दू, हरी सब्जियाँ और ताड़ वृक्ष उगाए जाते हैं। मुख्य भोजन में ताड़ वृक्ष, चावल, मक्का, माँस और मछली शामिल हैं। पुरोइक लोग बाँस और बेंत की कलाकारी में माहिर हैं। प्राचीन काल में निशि जनजाति ने इन्हें दास बनाकर रखा था, लेकिन अब यह प्रथा समाप्त हो चुकी है और सभी आजाद हैं। खान-पान, रहन-सहन और सांस्कृतिक समानता के कारण उन्हें पहले निशिंग (दफला) ही समझा जाता था। लेकिन भाषा और संस्कृति की दृष्टि से सुलुंग एक अलग जनजाति है। इस जनजाति को उजागर करने का श्रेय श्री हैमनड्रेफ को जाता है, जिन्होंने 1947 में सुलुंग लोगों की जीवन शैली का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त, श्री सी. आर. स्टोनर ने 1945-48 के बीच कई बार इस क्षेत्र का भ्रमण कर जानकारी प्रदान की। पुरोइक लोग आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अन्य जनजातियों की तुलना में पिछड़े रहे हैं। पहले वे भोजन के लिए शिकार और जंगली कंद-मूल पर निर्भर थे। बाद में पड़ोसी

जातियों से खेती सीखकर, उन्होंने झूम विधि अपनाई। लेखक लिखते हैं कि - "जहाँ समतल जमीन है, वहाँ स्थायी खेती भी की जाती है। खेत में बीज बोने और फसल काटने का कार्य महिलाएं करती हैं।

आबो तानी को सुलुंग समाज का पूर्वज माना जाता है। धार्मिक आस्था और क्रियाकलाप निशिंग जनजाति के समान है। प्रमुख त्योहार 'वाएन्यी' है, जिसका संबंध आबो तानी से है।

पुजारी मंत्रोच्चार करता है। पूजा स्थल को बाँस और फूल-पत्तों से सजाया जाता है। पर्याप्त मात्रा में आपोंग, चावल और मांस तैयार किए जाते हैं। बलि चढ़ाई जाती है, और बलि चढ़ाए गए सूअर के आगे की बाई टांग पुजारी को दी जाती है, शेष भाग पकाया जाता है और सभी ग्रामवासी भोजन में शामिल होते हैं। इस पर्व में नृत्य और गीत भी प्रस्तुत किए जाते हैं। पहले यह त्योहार व्यक्तिगत स्तर पर मनाया जाता था, अब सामूहिक रूप से मनाया जाता है। मृतक के शव को घर के नजदीक ही दफनाने की परंपरा है।"[29] अन्य पर्व: गुमकुम-गुमपा पर्व 15 अप्रैल को मनाया जाता है। इस अवसर पर गुमकुम-गुमपा लोक नृत्य प्रस्तुत किया जाता है।

अका / हरुस्सो जनजाति:

'आका' पद असमी भाषा से ग्रहीत है, जिसका तात्पर्य 'मुखरंगन' से है। इस जनजाति के सन्निकटवासी निशी, मिजी एवं शेरदुकपेन हैं, जिनका प्रभाव इसमें प्रखर है। वर्तमान में यह हरुस्सो अथवा हरसों नाम से विख्यात है। निवास क्षेत्र ठरिजिनों, भालुकपोंग, बुरागाँव, जमीरी, पालीजी, खुप्पी आदि है, जो पश्चिमी कामेंग जिले में अवस्थित हैं।

हरुस्सो की द्वय उप-जनजातियाँ हैं—कुत्सुन (हजारीखोवा) एवं कोवात्सुन (कपासचोर)। एकलकुटुम्ब प्रथा प्रचलिता है।

हरुस्सो में ग्राम पंचायत व्यवस्था है। प्रधान के रूप में गाँव बूढ़ा नियुक्त होता है। सहायक द्वय-बोढ़ा एवं गिब्बा। बोढ़ा सूचना अधिकारियों को समाचार पहुँचाता एवं गाँव बूढ़ा को घटनाविवरण प्रदान करता है। गिब्बा गाँववासियों की निगरानी एवं शान्ति-व्यवस्था का संरक्षक है।

हरुस्सो जनजाति भी प्रकृति पूजक है। वे आकाश, पृथ्वी, जल, पर्वत आदि का पूजन करते हैं। स्थानीय भाषा में आकाश को मेंज अऊ यानी पिता के रूप में, पर्वत को फु अऊ यानी पिता के रूप में, पृथ्वी को नो एन यानी माता के रूप में, और जल को हु एन यानी माता के रूप में पूजते हैं। "यह समुदाय ग्यारह वंशों में विभक्त है, जिनमें कुत्सुन और कोवात्सुन प्रमुख हैं। इनकी मान्यता के अनुसार, उनके पूर्वज मैदानी क्षेत्र में निवास करते थे। बाद में, इनके पूर्वजों को कृष्ण-बलराम ने वहां से भगा दिया था। नेचीदो-आका जनजाति का सबसे महत्वपूर्ण त्योहार है। यह प्रत्येक वर्ष नवंबर महीने में सामुदायिक स्तर पर आयोजित किया जाता है। पाँच वर्ष के अंतराल पर यह त्योहार दिसंबर (नुचोकु) में मनाया जाता है। जब यह दिसंबर में आयोजित किया जाता है, तो समस्त ग्रामवासियों की सुख-समृद्धि के लिए वन देव (नेचिगीरी) के नाम पर छोटे जानवरों के साथ-साथ मिथुन और सांड की बलि दी जाती है। त्योहार के प्रथम दिन को नेचीसेव कहा जाता है, और इस दिन दुष्ट शक्तियों को गाँव से बाहर जाने का आह्वान किया जाता है। इस अवसर पर देवी-देवताओं को चावल निर्मित मदिरा, चावल, शकरकंद आदि अर्पित किए जाते हैं, तथा जानवरों की बलि दी जाती है। इस त्योहार के अवसर पर जिन देवी-देवताओं की पूजा की जाती है, उनके नाम हैं- नेथपसिरों, नेचिकृकु, तमोमुथि, स्पसीनि, हूसिगा-मिसिगा, दमुखि-मुदु, हुफ़ु-खरु आदि। नेचीदो त्योहार के अवसर पर सभी

ग्रामवासी सामूहिक भोज में सम्मिलित होते हैं, नाचते-गाते हैं, और अपने गाँव एवं समाज के कल्याण की कामना करते हुए विभिन्न दैवी शक्तियों की पूजा करते हैं।"[30]

'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' पुस्तक में पोसा के विषय में विस्तार से जानकारी दी गई है। हरुस्सो जनजाति स्वावलंबी और सक्षम होने के कारण पड़ोसी जनजातियों द्वारा उन्हें सम्मान और प्रेम दिया जाता है। ब्रिटिश सरकार द्वारा असम पर शासन स्थापित करने के समय, आकाओं को पोसा का भुगतान असम सरकार द्वारा किया जाता था। "नई ब्रिटिश सरकार ने इस पोसा की व्यवस्था यथावत बनाए रखी। वर्ष 1825 के अभिलेखों के अनुसार, हजारी खोवा उप-जनजाति अपने आवंटित क्षेत्रों के प्रत्येक घर से पोसा के रूप में प्राप्त करते थे, जिसमें स्त्रियों द्वारा पहने जाने वाले वस्त्र, एक गांठ सूत और एक दस्ती रुमाल (गमछा) शामिल था। सरकार वस्तु रूप में पोसा के भुगतान की प्रणाली को पूरी तरह से उचित नहीं मानती थी, इसलिए उसने वस्तुओं को मुद्रा से बदलने के लिए हजारीखोवाओं के साथ एक समझौता किया। इस समझौते के अनुसार अब पोसा में उन्हें वस्तुओं के स्थान पर वार्षिक रूप से 175 रुपए की धनराशि का भुगतान किया जाएगा। हजारीखोवा इस नई व्यवस्था का लाभ, कपास्चोर उपजाति के साथ निकट संबंध होने के कारण, बहुत दिनों तक नहीं उठा पाए। इन संबंधों के कारण वर्ष 1835 में हजारीखोवाओं के और सरकार के बीच मतभेद उत्पन्न हो गए। वर्ष 1842 में पुनः एक समझौता हुआ, जिसमें यह सुनिश्चित किया गया कि आकाओं को पके रूप में वार्षिक रूप से तय राशि का भुगतान किया जाएगा।[31]

हरुस्सो जनजातियों के प्रमुख पर्वों में न्येथरी और नेची दो पर्व 10-15 नवंबर को मनाए जाते हैं। इन अवसरों पर उनका लोक नृत्य साना सेदी बेला और लईमदरों विशेष रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

इदु-मिश्मी जनजाति:

मिश्मी जनजाति लोहित, आंजाव एवं डिबांग वैली क्षेत्रों में निवास करती है। इसकी त्रिविध समूहावली है, जिनमें ‘इदु-मिश्मी’ एक है, जिसे प्राचीनकाल में ‘चूली कटा’ नाम से अभिहित किया जाता था। यह शब्द असमिया भाषा से लिया गया था। स्त्रियां अपने बालों को वाटी/कटोरी के रूप में काटकर रखती थीं। इस तरह का हेयर स्टाइल पासीघाट के पादम और मिनयोंग्स गाँव की बुजुर्ग महिलाओं के यहाँ भी देखा जा सकता है।

वेरियर एल्विन की किताब ‘ए फ़िलॉसफ़ि फॉर नेफ़ा’ में चूली कटा मिश्मी का उल्लेख किया गया है, पर इसका कारण स्पष्ट नहीं किया गया है। "There are three main groups of Mishmis: the Digaru or Taraon, the Miju or Kaman, and the Chulikatta or Idu. The chief difference between them lies in the way they style their hair. The Chulikattas- the very word means ‘cropped hair’- cut their hair around the head in a manner similar to the Padams and Minyongs. In fact, they live close to the Padams, and there are traditions suggesting that the two tribes share a common origin."[32]

आज के मिश्मी बहनों और भाइयों से इसका कारण पूछा जाए तो उन्हें भी इसकी जानकारी नहीं है। अब यह प्रथा चुलीकाटा, आदी और इदु मिश्मी जनजातियों में कम देखी जाती है। पुराने समय में यह प्रथा यहाँ मशहूर थी, तभी तो इन्हें “चूली कटा मिश्मी” कहा जाता था, यानी उनकी पहचान यहीं से होती थी। इसका उल्लेख ‘हमारा अरुणाचल प्रदेश’ पुस्तक में उल्लेख किया गया है - “इदु-मिश्मी एक विशेष वर्ग है। इस वर्ग की एक विशेषता यह है कि ये अपने बालों को एक खास ढंग से काटते हैं; संभवतः इसलिए इन्हें चूली कटा मिश्मी कहा जाता रहा है।”[33]

वेरियर एल्विन की किताब ‘DEMOCRACY IN NEFA’ से उद्धृत: “The Idu Mishmis, hard, tough people who live in widely scattered villages in what is now the Dibang Valley Sub-Division of NEFA, call their village council the abbala. It is usually composed of a few elderly villagers, reputed for their wisdom and soundness of judgement. Its jurisdiction,’ says Mr. T.K. Barua, who has written a book on this tribe and the working of the council, ‘is restricted to judicial matters only, and does not include village administration. When any man brings a complaint to the abbala, the members first hear him and after a few days, go to the house of the accused. Witnesses are summoned to give evidence and their statements along with those of the accused are patiently heard. Villagers who are not immediately concerned may attend the case, if they wish to do so.”[34] ‘रेह’ त्योहार इदु मिश्मी जनजाति द्वारा 1 और 2 फरवरी को मनाया जाता है। यह त्योहार दो प्रकार से मनाया जाता है:

1. एक समूह (कम्यूनिटी) में, जिसमें पूरे गाँव के लोग एकत्र होकर उत्सव मनाते हैं।
2. पारिवारिक स्तर पर, अपने रिश्तेदारों के साथ, जिसे ‘के में हा’ (Keh Me Ha) कहा जाता है। इदु मिश्मी जनजातियों का लोक नृत्य ‘ईगु’ है, जो इस अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है।

कमान / मिजू-मिश्मी जनजाति:

दूसरा समूह मिजू-मिश्मी है। मिजू-मिश्मी जनजाति का क्षेत्र तेजु, वाक्रो, सोनपुरा, बिलोंग, तिलाई, गोइलियांग, हवाई, किबीतो, मेंटेंगलियांग, खमलांग आदि तथा अंजाव और लोहित जिलों में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में दो प्रमुख नदियाँ बहती हैं, जिनके नाम रिमा नदी और कामबंग नदी हैं।

यह जानकारी वेरियर एल्विन की किताब 'DEMOCRACY IN NEFA' से उद्धृत की गई है। "The Kaman Mishmis are a small group, allied to the Taraon or Digaru Mishmis, who live in small, widely scattered settlements along the lohit and Khamlang Valleys and other wild and remote valleys leading to them. Since sometimes a village consists of only one fairly large house, it is natural that strong regular councils have not developed. However, the Kamans believe in settling their disputes by negotiation. Their temperament is very different from that of the Idu Mishmis, and when necessary, they approach some man of substance and influence, such as the great chiefs of Singranglut, Bonglut, or the Gaobura of Ngatai, who then summons what they call a pharai- a gathering of local elders representing each clan from several villages."[35]

इन तीनों में ईदू मिश्मी का पारंपरिक वस्त्र मिजू मिश्मी और डिगारू मिश्मी से अलग होता है, भाषा भी अलग होती है। लेकिन मिजू और डिगारू मिश्मी के पारंपरिक वस्त्र एकदम मिलता-जुलता है, पर उनकी भाषा अलग होती है। इन तीनों की भाषा अलग-अलग होने के कारण एक-दूसरे से समझ नहीं पाते हैं। एक-दो शब्द सामान्य ढंग से समझ सकते हैं पर पूरी तरह से नहीं समझ पाते हैं। मिश्मी समाज में 'ताला' (हिरण की कस्तूरी) और 'रुचई/उचई' (मिश्मी तीता) पाई जाती है, जो एक प्रकार से दवा का काम करती है। आँख दर्द, डायरिया, पेट दर्द, खांसी आदि को ठीक करती है।

डिगारू मिश्मी लड़कियाँ बहुत सुंदर-सुंदर शॉल और बैग बनाती हैं और उस पर डिजाइन डालने का कार्य 'कमान मिश्मी' करते हैं। ऐसा कहा जा सकता है कि आज भी डिजाइन बनाने में आगे हैं। उनकी इस सुंदर कला को देखकर लोग पूछने पर वे बताते हैं कि -"उनके पूर्वजों ने तितलियों के पंखों, साँपों और मछलियों को देखकर ही कपड़ों पर डिजाइन बनाई है।"[36] थाओ कपू (महिलाओं का कपड़ा) जो लड़की नीचे के भाग में पहनती है, दूसरी भाषा में 'गाले' कह सकते हैं। लापा, काजूम, जिंग, शवल (पुरुषों का कपड़ा)। मिश्मी लोग, निशी लोगों की तरह बेंत और बाँस का पुल बनाकर नदियों को पार करते हैं। निशी भाषा में पुल को 'गोचो' कहते हैं और मिश्मी भाषा में 'ट्रा प्रों' कहते हैं। "नदी पार करने के लिए पुल आदि बनाने पड़ते हैं और सचमुच ही मिश्मी लोग पुल बनाने में बड़े माहिर हो गए हैं। भयंकर घाटियों और नदियों को पार करने के लिए बनाए गए उनके पुलों को देखकर साधारण आदमी तो एक बार दहल ही जाता है। इन पुलों की बनावट देखकर कुशल इंजीनियर भी दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं। ये पुल यहाँ के रहने वाले मिशमी लोगों के जीवन के प्राण होते हैं। पुल बेंत से बनाए जाते हैं, जिनको पार करना साधारण आदमी के बस की बात नहीं है। उसे पार करने के लिए विशेष कौशल और हिम्मत की आवश्यकता होती है।"[37]

इन तीनों में ईदू-मिश्मी का पारंपरिक वस्त्र मिजू-मिश्मी और डिगारु-मिश्मी से अलग होता है। भाषा भी अलग होती है, जबकि मिजू और डिगारु मिश्मी के पारंपरिक वस्त्र एकदम मिलता-जुलता है, पर उनकी भाषा अलग होती है। इन तीनों की भाषाएं अलग होने के कारण वे एक-दूसरे से पूरी तरह समझ नहीं पाते; केवल कुछ शब्द सामान्य ढंग से समझ सकते हैं। मिश्मी समाज में 'ताला' (हिरन का कस्तूरी) और 'रुचई/उचई' (मिश्मी तीता) पाई जाती हैं, जो औषधीय उपयोग में आती हैं। ये जड़ी-बूटियां आँख के दर्द, डायरिया, पेट दर्द, खांसी आदि बीमारियों के उपचार में प्रयोग होती हैं।

डिगारु-मिश्मी की लड़कियाँ अत्यंत सुंदर शाल और बैग बनाती है, और उन पर डिजाइन बनाने का कार्य मिजू-मिश्मी करती हैं। कहा जा सकता है कि आज भी डिजाइन बनाने में वे अग्रणी हैं। उनकी इस सुंदर कला को देखकर लोग जब उनसे पूछते हैं, तो वे बताते हैं कि उनके पूर्वजों ने तितलियों के पंख, साँपो और मछलियों से प्रेरणा लेकर कपड़ों पर डिजाइन बनाई हैं। थाओ कपू, जो मिश्मी महिलाओं का पारंपरिक परिधान है, लड़कियां अपने शरीर के निचले भाग पर पहनती हैं; इसे अन्य भाषाओं में 'गाले' कहा जा सकता है। पुरुषों का पारंपरिक वस्त्र लापा, काजूम, झिंग और शवल होता है। मिश्मी और निशी लोग बेंत और बांस का पुल बनाकर नदियों को पार करते हैं। निशी भाषा में पुल को 'गोचो' और मिश्मी भाषा में 'ट्रा प्रों' कहा जाता है। नदियों को पार करने के लिए ये पुल अत्यंत आवश्यक हैं, और मिश्मी लोग पुल बनाने में अत्यंत निपुण हैं। भयंकर घाटियों और तेज बहाव वाली नदियों को पार करने के लिए बनाए गए उनके पुलों को देखकर साधारण व्यक्ति भी स्तब्ध रह जाता है। इन पुलों की जटिल बनावट देखकर कुशल इंजीनियर भी दांतों तले अंगुली दबा लेते हैं। ये पुल मिश्मी लोगों के जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। बेंत और बांस से बने इन पुलों को पार करना साधारण व्यक्ति के लिए आसान नहीं है; इसे पार करने के लिए विशेष कौशल और साहस की आवश्यकता होती है। मिश्मी समाज के विवाह व्यवस्था में, लड़के वाले जो कुछ भी भेंट के रूप में लड़की को देते हैं, उसे लड़की पक्ष स्वीकार करता है। ठीक इसी तरह, लड़की वाले भी लड़के वाले को भेंट देते हैं। लड़की वाले जितनी कीमत मांगते हैं, उसके बराबर मूल्य की वस्तुएं लड़की वाले भी लड़के वाले को देते हैं। बस एक मिथुन लड़की वाले द्वारा मुफ्त रखा जाता है। इस प्रक्रिया को डिगारु मिश्मी भाषा में "ल्यू", कमान मिश्मी भाषा में "डीन" और इदू मिश्मी भाषा में "ब्री" कहते हैं। ब्री शब्द शादी के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। इसका उल्लेख 'हमारा अरुणाचल प्रदेश में किया गया है - "मिश्मी समाज में विवाह एक मध्यस्थ के द्वारा सुनिश्चित किया जाता है, लेकिन लड़की की पसंद और स्वीकृति को महत्व दिया जाता है। लड़की की सहमति के बिना विवाह नहीं हो सकता। भारत

के अन्य भागों की तरह, मिश्मी समाज में दहेज कोई समस्या नहीं है।"[38] इस जनजाति के पारंपरिक लोक नृत्यों में 'एई-आह-आई हिम', 'रेन' और 'मेंसालाह' प्रमुख हैं।

खम्बा- जनजाति:

खम्बा जनजाति अरुणाचल प्रदेश की एक प्रमुख जनजाति है, जो महायान एवं तिब्बती बौद्ध धर्म की अनुयायी है। इसका निवास मुख्यतः यांग-सांग-छु वैली, टूटिंग, मनकोटा, ताशिंगोंग, योरटोंग, सिंगा, लांगो, क्यूकांग, तितापुरी, कुगिंग, रिवोटाला, पेमा सेलरी एवं गेलिंग आदि क्षेत्रों में फैला हुआ है। यह अपर सियांग एवं पश्चिम सियांग जिलों में प्रधानतः पायी जाती है। खम्बा लोग पर्वतीय (झूम) एवं सिंचित (जलरोपण) कृषि पर निर्भर हैं। प्रमुख फसलें मक्का, बाजरा, कपास एवं जौ हैं। कृषि उनका जीवनोचित साधन एवं आर्थिक आधार है।

विकिपीडिया से उद्धरित- "The Khamba are a tribe of people who live in the Yang-Sang-Chu Valley in the western part of Arunachal Pradesh, India. They are known for their Tibetan Buddhist beliefs, their unique script, and their language, which is endangered and under-documented.The Khamba are Mahayana Buddhists and follow Tibetan Buddhism."[39]

'Tribes of Arunachal Pradesh: History and Culture' पुस्तक में उल्लेख किया गया है कि खम्बा जनजाति में बहुपति प्रथा (Polyandry) प्रचलित है, किंतु यह प्रथा मेंम्बा जनजाति में और भी अधिक व्यापक रूप से पाई जाती है।- "Polyandry is prevalent among them, but it is more in vogue among the Membas."[40]

'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक साहित्य' ग्रंथ में उल्लिखित है कि खम्बा जनजाति की जनसंख्या अत्यल्प है। सन् 1991 की जनगणना अनुसार इसकी कुल संख्या 1,333 थी। वर्तमान में यह वृद्धि अवश्य हुई है, किंतु अद्यतन आँकड़े सटीक रूप से उपलब्ध नहीं हैं।

अरुणाचल प्रदेश संग्रहालय के अनुसार, खम्बा में बहुपतित्व एवं बहुपत्नीत्व प्रथाएँ प्रचलित रहीं। स्थानीय मौखिक साक्ष्यों से विदित है कि प्राचीनकाल में ये समाजोन्मुख स्वीकृत थीं। आज इनका प्रचार सीमित है; यद्यपि कतिपय स्थानों पर लेशमात्र विद्यमान है, तथापि खुली स्वीकृति नहीं है। यह जनजाति पशुपालन, कालीनबुनन एवं लकड़ी-नक्काशी के लिए प्रसिद्ध है। पुरुष चित्रकला एवं मुखौट-निर्माण में निपुण हैं। पूर्वकाल में वस्तुविनिमय व्यापार पड़ोसियों से करते थे। भाषा 'खम्बा खड़ी' तिब्बती का द्वंद्वात्मक रूप है। लिपि 'हिंगना' है। प्रमुख पर्व 'लोसर' एवं 'धरूबा' सामाजिक-धार्मिक महत्त्व के हैं।

राज्य संग्रहालय से उद्धृत विवरण के अनुसार – "In marriage both polygamy and polyandry are in practice. Agriculture is their mainstay of life. However, carpet weaving, wood carvings, domestication of animals are also important means of their livelihood. The men are expert in mask making and painting. Earlier they had a barter trade with their neighbouring communities. They are Buddhist by religion and follow the Mahayana sect. Their important festivals losar (New Year) celebrate twice a year. Dhruba is also an important festival they celebrate. They have colourful dances and pantomimes. Their language is called as Khamba khadi which is a dialectical variation of Tibetan and the script they use is called Hingna."[41] इस जनजातियों का लोक नृत्य- खाम्बा ठोंइवी है ।

खामती-जनजाति जनजाति:

खामती जनजाति को पारंपरिक रूप से "सोने से भरे भूमि की जनजाति" कहा जाता था। इसे ताई खामती के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इस जनजाति का संबंध ताई प्रजाति से माना जाता है। खामती जनजाति के लोग शांतिप्रिय और दयालु स्वभाव के होते हैं। यह जनजाति हीनयान बौद्ध धर्म का पालन करती है। उनके निवास क्षेत्र में, विशेषकर नामसाई जिले में, गोल्डेन पगोडा स्थित है, जो वर्तमान में एक प्रमुख पर्यटक आकर्षण है।

'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक साहित्य' पुस्तक के अनुसार, खामती शब्द का शाब्दिक अर्थ दो प्रकार से समझा जाता है। खाम का अर्थ "सोना" और ती का अर्थ "स्थान" है। इसके अनुसार, खामती वे लोग थे जो सोने जैसे मूल्यवान स्थान पर निवास करते थे। इसके अतिरिक्त, खामती शब्द का एक दूसरा अर्थ भी है, अर्थात "किसी स्थान में छिपकर रहने वाला।"

'अरुणाचल प्रदेश लोक-जीवन और संस्कृति' पुस्तक से उद्धृत: "खाम का अर्थ होता है सोना और ति का अर्थ होता है स्थान। जो लोग ऐसे स्थान पर रहते थे, उन्हें खामती के नाम से जाना जाता था। इस शब्द का दूसरा अर्थ है 'किसी स्थान से चिपक कर रहने वाला' (खाम = चिपकना, ति = एक स्थान) ।"[42]

खामती जनजातियाँ असम, अरुणाचल प्रदेश और म्यांमार में निवास करती हैं। असम राज्य में खामती जनजातियों के निवास क्षेत्रों में प्रमुख हैं: नारायणपुर, बोरखम्ती गाँव, देओतोला, बारपाठर, सरिभूयन, बारीगाँव आदि। इसके अतिरिक्त, लखीमपुर, तिनसुकिया और धेमाजी जिलों में भी खामती जनजातियाँ बसी हुई हैं। अरुणाचल प्रदेश में खामती जनजातियों का प्रमुख क्षेत्र नामसाई जिला है, जिसमें चोखाम, नानाम खामती, ना नाम खिमियांग, मनमो, लाथो, टेंगापानी, गुना नगर,

नालुङ और निगरो गाँव शामिल हैं। इसके अलावा, चांगलांग और लोहित जिलों में भी यह जनजाति निवास करती है। म्यांमार में खामती जनजातियों का बसावट हखाम्ती और सागाइंग जिलों तक फैला हुआ है। खामती जनजाति का इतिहास विस्तार पूर्वक 'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' पुस्तक में वर्णित है। इसके अतिरिक्त, 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक साहित्य' और 'डेमोक्रेसी इन नेफा' पुस्तकों में भी इस जनजाति के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं का उल्लेख किया गया है। 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक-साहित्य' से उद्धृत: - "विद्वानों की मान्यता है कि खामती जनजाति का मूल निवास बर्मा की इरावदी नदी घाटी में बोर-खामती क्षेत्र था। वे भारत में 18वीं सदी के मध्यकाल से लेकर 19वीं सदी के पूर्वार्ध के बीच देशांतरित होकर आए। ई. टी. डाल्टन और मैकेंजी ने अनुमान लगाया कि खामती लोगों के प्रथम दल ने सदिया के दक्षिण में स्थित टेंगापानी में अपना पहला आवास स्थापित किया। कुछ अन्य विद्वानों का मानना है कि अरुणाचल प्रदेश के चांगलांग जिले में स्थित विजय नगर में खामती लोगों का प्रथम दल आया था। खुदाई के उपरांत विजय नगर में बौद्ध स्तूप का पता चला, और पुरातत्ववेत्ताओं की मान्यता है कि यह स्तूप खामती लोगों से संबंधित है। इन लोगों के जीवन और संस्कृति पर चीन की ताई संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। वे ताई वर्ग की भाषा बोलते हैं, और उनकी संस्कृति एवं परंपराओं पर बर्मा का भी प्रभाव रहा है। कुछ विद्वानों के अनुसार, खामती लोग बर्मा के शान प्रदेश से देशांतरित होकर आए थे। जब वे प्रथम बार असम में प्रवेशित हुए, तो असम के राजा की अनुमति से वे टेंगापानी नामक नदी के किनारे बस गए।"[43] यहाँ जो कहा गया है- 'इन लोगों के जीवन और संस्कृति पर चीन की ताई संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है'- यह तथ्य गलत है। वास्तविकता यह है कि इन पर चीन का नहीं, बल्कि बर्मा का प्रभाव है, क्योंकि सौ वर्ष पहले बर्मा भी भारत का ही हिस्सा था। चीन से उनका कोई संबंध नहीं है। इस विषय में स्थानीय जनजातियों की राय अवश्य ली जानी चाहिए। खामती जनजातियों में मुख्यतः

पानी खेती की जाती है। इसके साथ-साथ विभिन्न प्रकार की फल, सब्जियां और स्वादिष्ट चावल उगाते हैं। खेती के लिए वे बैल और भैंस का प्रयोग करके जोत लगाते हैं। प्राचीन समय में प्रत्येक गाँव में एक चीफ रहता था, साथ ही अनाज का भंडार रखने वाला घर भी होता था, जहां से गाँव के सभी लोग अपने आवश्यक अनाज प्राप्त करते थे।

प्राचीन काल में खामती समाज कई वर्गों में विभाजित था। प्रथम स्थान पर चीफ लोग रहते थे, दूसरे स्थान पर पुजारी, तीसरे स्थान पर आम जनता और चौथे स्थान पर दास वर्ग। वर्तमान समय में यह वर्ग भेद धीरे-धीरे समाप्त हो गया है। समाज में बदलाव के कारण अब ऊँच-नीच या भेदभाव का पालन नहीं किया जाता; सभी व्यक्तियों को समान दृष्टि से देखा जाता है। आज भी समाज में बौद्ध पुजारियों को अधिक सम्मान दिया जाता है। खामती घरों में पारंपरिक रूप से चावल से बनी मदिरा पी जाती है। उनकी भोजन प्रणाली में मांस, मछली, पत्तेदार सब्जियां और चावल प्रमुख हैं। खामती भाषा में सार्वकालिक, सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान को 'चान-खून-संग' कहा जाता है। खामती लोग इसी 'चान-खून-संग' में अपनी आस्था रखते हैं। खामती समाज में विवाह प्रणाली स्थिर और एकपत्नीव्रती है। निशि जनजाति की भांति एक से अधिक पत्नी रखने की प्रथा यहाँ नहीं पाई जाती। समाज में तलाक जैसी प्रथा भी नहीं है और सामाजिक नियमों तथा कानूनों का पालन सख्ती से किया जाता है।

'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक-साहित्य' पुस्तक के अनुसार, बौद्ध धर्म अपनाने के उपरांत खामती समाज धीरे-धीरे बौद्ध धर्म की शिक्षाओं और उसकी गहन सूक्ष्मताओं को अपने जीवन में आत्मसात करता गया। वर्तमान समय में यह समुदाय गौतम बुद्ध के उपदेशों के अनुसार अपना आचरण करता है। इनका विश्वास है कि मानव सेवा ही ईश्वर की सेवा है और किसी मानव को दुख पहुँचाना ईश्वर को दुख पहुंचाने के समान है। खामती समाज यह मानता है कि मनुष्य

की स्थिति जन्म से नहीं बल्कि उसके आध्यात्मिक कर्मों से निर्धारित होती है। निर्वाण की प्राप्ति ही मानव का सर्वोच्च लक्ष्य है। एक धार्मिक खामती अपना दैनिक जीवन प्रार्थना से आरंभ करता है, जिसे 'स्वी-खु' कहा जाता है। इस प्रार्थना के दौरान भगवान बुद्ध की मूर्ति के समक्ष निवेदन किया जाता है। खामती समाज भगवान बुद्ध की पूजा ईश्वर के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य के पथ प्रदर्शक और सत्य एवं ईमान का मार्गदर्शन करने वाले एक नैतिक उपदेशक के रूप में करता है। इसके अतिरिक्त, खामती लोगों की धारणा है कि गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म की परंपरा में चौथे स्थान पर हैं। वे विश्व के महान धार्मिक उपदेशकों में गिने जाते हैं और उनकी मूर्तियां पांच हजार वर्षों के पश्चात पंचम बौद्ध उपदेशक 'अरी मितिया' के रूप में प्रकट हुई। खामती समाज में बौद्ध विहार को "चांग" या "बापू चांग" कहा जाता है। भगवान बुद्ध का जन्मदिन और उनकी पुण्यतिथि खामती लोग उल्लासपूर्वक मनाते हैं। इन अवसरों पर बुद्ध के विचारों और उपदेशों पर व्यापक चर्चा होती है और समाज के सदस्य उनके मार्गदर्शन को समझने का प्रयास करते हैं। इसके अतिरिक्त, खामती लोग संकेन पर्व को भी परंपरागत उल्लास और उत्साह के साथ मनाते हैं। संकेन नए वर्ष का पर्व है और खामती वर्ष के प्रथम दिन इसका आयोजन विशेष रूप से किया जाता है। इस दिन समाज के लोग पारंपरिक रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानों और सामूहिक उत्सवों के माध्यम से नए वर्ष का स्वागत करते हैं। संकेन पर्व- संकेन का शाब्दिक अर्थ 'जल क्रीड़ा' है। इस दिन खामती समाज के स्त्री, पुरुष और बच्चे एक-दूसरे पर जल छींटते हैं और नववर्ष की बधाई देते हैं। इस त्योहार की तैयारी इसके कुछ दिन पहले से ही आरंभ हो जाती है। गांव के नवयुवक अस्थायी चांग का निर्माण करते हैं और उसे फूल-पत्तियों से सजाते हैं।

गाँव के गोम्पा से भगवान बुद्ध की मूर्ति को निकालकर अस्थायी चांग में स्थापित किया जाता है। समारोहपूर्वक प्रतिमा को स्नान कराया जाता है। इस स्थल को स्थानीय भाषा में 'क्यांग-

फ्रा' कहा जाता है। मूर्ति पर जल का छिड़काव इस त्योहार का मुख्य आकर्षण होता है। पुजारी कुछ मंत्रों का उच्चारण करते हैं, जबकि नवयुवक, पुरुष और महिलाएं नाचते-गाते हुए मूर्ति पर जल चढ़ाते हैं। इस अवसर पर लड़के-लड़कियां एक-दूसरे पर जल और कीचड़ डालकर हर्ष और उल्लास प्रकट करते हैं। मैकु सुम्फई पर्व- खामती समाज का एक अन्य महत्वपूर्ण पर्व है मैकु सुम्फई, जिसमें 'मैकु' का अर्थ है बाँस का टुकड़ा और 'सुम्फई' का अर्थ है आग जलाना। यह पर्व शीत ऋतु के आरम्भ से पूर्व आयोजित किया जाता है। -"पर्व की तैयारी कुछ दिन पहले से ही शुरू हो जाती है, जब धान के खेतों में बांस और लकड़ी का विशाल ढेर एकत्रित किया जाता है। पर्व के दिन प्रातःकाल बांस और लकड़ी के ढेर में आग लगाई जाती है। इसके पश्चात समाज में सामूहिक भोज का आयोजन किया जाता है, जिसमें सभी समुदाय के सदस्य भाग लेते हैं। भोजन के पहले खामती समाज में गौतम बुद्ध के उपदेशों और विचारों पर चर्चा की जाती है। खामती जन पंचशील के सिद्धांतों में अगाध आस्था रखते हैं, जिसे स्थानीय भाषा में 'जी सीन-हा' के नाम से जाना जाता है। इस समुदाय के पास नृत्य और नाटिका की समृद्ध परंपरा है।"[44] ताई खामती जनजातियों का पारंपरिक लोक नृत्य 'का पुंग' के नाम से जाना जाता है। खामती जनजाति के प्रमुख पर्व संकेन और मैकु सुम्फई हैं, जो सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

खावा / खोवा (बुगुन) जनजाति:

खावा जनजाति आका, सरतांग, मोनपास, मिजी और शेरतुकपेन जनजातियों के पड़ोस में वेस्ट कामेंग जिले में निवास करती है। इसका क्षेत्र मुख्य रूप से सिंगचुनग, दिखियांग, सिथु, वांगहू, सचिदा, कस्पी, रामू, लीचीनी, मगोपाम और नम्फ़री तक फैला हुआ है। बुगुन जनजाति की छह उप-जनजातियाँ हैं: हखुआंग त'उआ, हायइंग त'उआ, ब्राइ त'उआ, हाजी त'उआ और देछन त'उआ।

यह जनजाति स्वभाव से दयालु, सरल और ईमानदार मानी जाती है। बुगुन और आका जनजाति का आसपास निवास होने के कारण दोनों में परस्पर सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव देखा जा सकता है। अरुणाचल प्रदेश की अधिकांश जनजातियां कृषि पर निर्भर हैं, और बुगुन जनजाति भी खेती-बाड़ी से अपना जीवन यापन करती है। यहाँ झूम खेती का प्रचलन है, जिसमें खेतों में विविध प्रकार की सब्जियां और मक्का उगाया जाता है। सामाजिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक है और एक से अधिक पत्नी रखना सामान्यतः स्वीकार्य है। हालांकि, अधिक पत्नियाँ केवल आर्थिक रूप से सक्षम व्यक्ति ही रख सकते हैं, क्योंकि कन्या के मूल्य का भुगतान करना आवश्यक होता है।

यहाँ की महिलाएं खेतों में भी और घरों में भी समान रूप से मेंहनत करती हैं। विकास की दृष्टि से बुगुन जनजाति पिछड़ी मानी जाती है। हालांकि, वर्तमान में झूम खेती की तुलना में स्थायी खेती की ओर उनका रुझान बढ़ रहा है, जो मुख्य रूप से सरकार द्वारा स्थायी कृषि को प्रोत्साहित करने की नीति के कारण संभव हो रहा है।

बुगुन जनजाति में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित है, किन्तु यह केवल उन व्यक्तियों के लिए संभव है जो आर्थिक रूप से सक्षम हैं, क्योंकि विवाह के लिए वधू-मूल्य का भुगतान अनिवार्य होता है।

"बुगुन लोग अनेक पर्व-त्योहार मनाते हैं, जिनमें क्श्यात-सोवाई प्रमुख है। यह त्यौहार प्रतिवर्ष दिसंबर के तीसरे सप्ताह में मनाया जाता है और इसे पुजारी की सहायता से एक निश्चित स्थान पर आयोजित किया जाता है। त्योहार के प्रथम दिन पूजा स्थल की सफाई की जाती है। दस दिनों तक चलने वाले इस पर्व के अंतिम दिन सभी ग्रामीण पूजा स्थल पर एकत्रित होकर सामूहिक भोज में सम्मिलित होते हैं। समय के साथ बुगुन समाज में शिक्षा का प्रसार होने के कारण परंपरागत प्रथाएँ धीरे-धीरे बदल रही हैं और आधुनिकता का समावेश बढ़ रहा है। वर्तमान में बुगुन केवल कृषि-जीवी नहीं रहे, बल्कि व्यापार, सरकारी सेवा और अन्य पेशों में भी उनकी भागीदारी बढ़ गई है।[45]

'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' पुस्तक में बुगुन और हरुस्सो जनजातियों के बारे में जानकारी कुछ घटनाएँ दी गई हैं, जिसे पढ़कर लगता है कि ये निशि और पुरोइक जनजातियों की तरह हैं। बुगुन जनजाति को हरुस्सो जनजाति अपने काम के लिए उपयोग करता था। बुगुन लोग हरुस्सो जनजाति का विरोध नहीं करते हैं। उनका मानना है कि अत्याचारों का विरोध करने से कोई फायदा नहीं होता; वे इस पर विश्वास ही नहीं करते हैं। "यह जनजाति अपने ऊपर किए गए अत्याचारों का विरोध करने में विश्वास नहीं करती, इसलिए इनका अस्तित्व अन्य पूर्वोत्तर जनजातियों की अपेक्षा बहुत बाद में प्रकाश में आया। आकाओं द्वारा इनके साथ न्यूनाधिक गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता रहा है। इस जनजाति के लोग आकाओं के खेतों में काम करते थे तथा मकान बनाते थे, परंतु उस कार्य के बदले में उन्हें जो कुछ दिया जाता था वह बहुत कम होता था और कभी-कभी तो कुछ भी नहीं दिया जाता था। आका और खोवा (बुगुन) जनजातियों के मध्य वैसा ही संबंध हैं जैसे कि सुलुंग और डफला जनजातियों के मध्य हैं।"[46]

एल. एन. चक्रवर्ती जी ने 'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' में जिस प्रकार उल्लेख किया है, वैसा पहले था, लेकिन अब स्थिति बदल गई है। अब यह दो जनजातियाँ प्रमुख जनजातियों के रूप में जानी जाती हैं और कोई गुलामों का जमाना नहीं है। प्रत्येक जनजाति की अपनी-अपनी विशेषता और पहचान है। यह जनजाति 10 सितंबर को फाम-खो-सोवाई त्योहार मनाती है। इनके लोक नृत्य में गैसयो-स्यो और गिदीनदक-गैसयो-स्यो प्रमुख हैं।

जाखरींग/मयोर जनजाति:

जाखरींग एवं मयोर जनजातियों को प्रारंभ में एक ही माना जाता था, किंतु सन् 1978 में इन्हें पृथक् जनजातियों के रूप में वर्गीकृत किया गया। जाखरींग जनजाति वालोंग एवं किबितों क्षेत्रों में, आंजाव तथा लोहित जिलों में निवास करती है। मृदुल कुमार चक्रवर्ती द्वारा रचित आलेख पर आधारित विवरण उपलब्ध है, यद्यपि इसकी पूर्ण प्रामाणिकता निश्चित नहीं है। क्षेत्रीय दूरी एवं भिन्न बोली के कारण परस्पर संपर्क न्यून है। आज भी कतिपय व्यक्ति इन्हें एक ही जनजाति मानते हैं।

यह जनजाति बौद्ध धर्म को मानती हैं और झूम खेती करती हैं। इस जनजाति पर लिखित प्रमाण नहीं है, जिसके कारण यह कहना मुश्किल है। स्पेस एंड कल्चर इंडिया वेब से उद्धृत: "The 1978 Gazetteer of lohit district mentions that Zakhrings and Meyors are separate groups… the Zakhrings of Arunachal Pradesh are largely known as Meyor. They speak 'Zakhring and Meyor language, which belongs to the Bhutiya group of the Tibeto-Burman family of languages' (Blench and Post, 2011), although they speak Hindi and Nefamese as their lingua franca."[47] जाखरींग या मयोर जनजाति का त्योहार सुनगकहू, तसोटँगपहो वंगले, तसो टँगपो और लोसर है।

तुत्सा जनजाति:

तुत्सा जनजाति अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजातियों में से एक है। प्राचीनकाल में इन्हें हतूत नाम से जाना जाता था। 'तुत्सा' का अर्थ 'तुत का पुत्र' है। मान्यता है कि इनके मूल निवासी म्यांमार के रोंगकों-सनसिक गाँव से थे। वे होकमेंन-होकसन मार्ग से पठकाई पर्वत पार कर प्रथम तूत/तुतन्यू गाँव में बस गए। वर्तमान में यह जनजाति तिराप एवं चांगलांग जिलों में निवास करती है।

यह झूम चाशनी पर निर्भर है। मुख्य भोजन में चावल, रागी, बोइल पत्र, शाक, मांस एवं मत्स्य सम्मिलित हैं। 'अरुणाचल प्रदेश राज्य संग्रहालय' से उद्धृत:

"The little known Tutsas are also called as Hatut. As per oral literature of the Tutsas, their original home is Rongkon Sansik in Myanmar and migrated through the way called Hokmen Hoksan and crossing the Patkai hill and first settled in the Tut or Tutnyu village in the Barap river valley in Tirap district. Since then they called themselves as 'Tutsas', meaning the son of Tut.

Agriculture is their mainstay of life and they practice shifting cultivation. Their main food crops are chah cham (paddy), sehmal (millet), pawang (maize) etc."[48] तुत्सा जनजाति 11 अप्रैल को पोंगटु पर्व मनाती है।

तंगसा जनजाति:

तंगसा जनजाति को पर्वतवासी अथवा गिरिजन कहा जाता है। इसकी उप-जनजातियाँ हैं- मुक्लोम, लुंगचंग, जुगली, तिखाक, मोस्सांग, किमसिंग, रोंगरंग, हवी, लुंगफी, मुँगरे, सांगकेय, पोंगठाई, लॉगरी, हाचेग, संगवाल, लँगचीग, थामफंग एवं यांगकुक।

इसका क्षेत्र रंगकटू, केंगकहू, लॉगलुङ, काँटांग, रंगरां, पुराना पलोनै, नेओटन, सॉगकिंग, नया पलोनै, नम्फाइनोंग, ठेरेमकन, नयांग, नोंगथाम, खरसांग, इंजान आदि में विस्तृत है तथा चांगलांग जिले में प्रधान निवास है। मान्यता है कि कृषिभूमि संशोधन एवं कबीला-विग्रह के कारण तंगसा ने चांगलांग अपनाया। 'अरुणाचल प्रदेश लोक जीवन और संस्कृति' पुस्तक से उद्धृत:

“अरुणाचल के चांगलांग जिले में तांग्सा जनजाति का निवास है। तांग्सा का शाब्दिक अर्थ ‘गिरिजन’ है। तंग का अर्थ ‘पर्वत’ और सा का अर्थ ‘निवासी’ या ‘लोग’ है। इसके देशांतर गमन संबंधी आख्यानों से स्पष्ट है कि ये लोग कृषि योग्य भूमि की तलाश एवं कबीलाई झगड़ों के कारण अपने मूल निवास स्थान से देशांतरित होकर चांगलांग जिले में बस गए थे। यह समुदाय कई उपवर्गों में विभक्त है, जैसे- लंगचंग, योग्ली, मोसंग, रोन-रंग, खेमसिंग, मोकलुम, तिखक, पोंथाई, लोंगफी, संके, लुंगरी, ताईपी और हवे।”[49] तंगसा जनजाति में एक से अधिक पत्नियाँ नहीं रखी जाती और तलाक की प्रथा भी नहीं है।

जिले की अन्य जनजातियों के विपरीत तंगसा समुदाय में बहुपत्नी विवाह की प्रथा नहीं है। तांग्सा समाज में तलाक की अनुमति नहीं है। अधिकांश तंगसा गाँव पहाड़ की ढलान पर स्थित होते हैं। जल की उपलब्धता ही इसका मुख्य कारण है। इनके घर बहुत पास-पास बने होते हैं।”[50] तंगसा जनजाति भी झूम खेती करती है, जिसमें धान, मक्का, रागी, सब्जियां आदि उगाई जाती हैं। इन लोगों के यहाँ खेती को लेकर कई त्योहार मनाए जाते हैं। मार्च में समफंग त्योहार मनाया जाता है, इसके अलावा ‘लमरा’, ‘पेरोंग’, मोल और कुकजोंग जुलाई महीने में मनाए जाते हैं। इस जनजाति का सामूहिक और प्रमुख त्योहार मोह-मोल है। ‘अरुणाचल प्रदेश लोकजीवन और संस्कृति’ पुस्तक से उद्धृत: “तांग्सा लोग कृषि पर आधारित तीन मुख्य त्योहार मनाते हैं। खेतों में बीज बोने से पहले, मार्च-अप्रैल महीने में समफंग त्योहार मनाया जाता है। यह त्योहार तीन दिनों तक आयोजित होता है। महिलाएं खेत का एक छोटा सा टुकड़ा साफ करती हैं, वहाँ फूल का पौधा लगाती हैं और एक लकड़ी गाड़ देते हैं। लकड़ी पर मदिरा, मांस और चावल अर्पित किया जाता है। इस अवसर पर गांव वाले उत्साहपूर्वक भोज में सम्मिलित होते हैं। लमरा अथवा पेरोंग तांग्सा लोगों का सबसे बड़ा त्यौहार है। यह त्योहार फसल तैयार होने के बाद, तीन दिनों तक प्रत्येक गाँव में अगस्त माह में

आयोजित किया जाता है। मोल और कुकजोंग भी तांग्सा लोगों के महत्वपूर्ण त्योहार है। मोल त्योहार जून-जुलाई में मनाया जाता है। इस त्योहार में मृतकों को भोज्य पदार्थ और मदिरा अर्पित करके उनसे सुख-समृद्धि की प्रार्थना की जाती है। इनका विश्वास है कि देवी-देवताओं की अप्रसन्नता के कारण ही लोग बीमार पड़ते हैं। सभी अनुष्ठानों में सूअर और मुर्गी की बलि दी जाती है। तांग्सा समाज में मृत्यु विषयक अनेक अवधारणाएँ प्रचलित हैं। वृद्धावस्था की मृत्यु ईश्वर की इच्छा मानी जाती है, जबकि अकाल मृत्यु को दुष्ट शक्तियों की करतूत समझा जाता है। मृतक के शव को चौबीस घंटे बाद दफनाया जाता है। तांग्सा की कुछ उपजातियों में शव को जलाने की प्रथा भी है। सामान्यतः शव को घर के सामने ही दफनाया जाता है, परंतु अकाल मृत्यु की स्थिति में शव को गाँव के बाहर जंगल में दफनाया जाता है। मृतक के वंशजों द्वारा कब्र खोदी जाती है। दूसरों को शव स्पर्श करने अथवा कब्र खोदने की अनुमति नहीं है। परिवार का मुखिया सर्वप्रथम कब्र खोदना आरंभ करता है, इसके बाद अन्य निकट संबंधी कब्र खोदते हैं। कब्र में रखने से पहले जल से शव का स्नान कराने की प्रथा है। मृत्यु के उपरांत, तांग्सा लोग सामान्य मामलों में तीन दिनों तक और असामान्य मामलों में पाँच से सात दिनों तक कुछ निषेधों का पालन करते हैं। इस दौरान गांव का कोई व्यक्ति न तो इनके घर आता है और न ही ये लोग किसी के घर जाते हैं। सामान्य मृत्यु में चौथे दिन भोज का आयोजन किया जाता है, जिसमें गांव वासियों को आमंत्रित किया जाता है। इस दिन सूअर मारा जाता है और पुजारी द्वारा मृत आत्मा को मांस और मदिरा अर्पित किया जाता है।"[51] इस अवसर पर तांग्सा लोग मोह-मोल नामक त्योहार मनाते हैं। इस पर्व में पांगवा नामक लोक नृत्य प्रस्तुत किया जाता है।

दिगारु / ताराओं-मिश्मी जनजाति:

मिश्मी जनजाति पहले तीन समूहों में बंटी हुई थी, लेकिन अब इन्हें तीन प्रमुख जनजातियों के रूप में देखा जाता है। ताराओं जनजाति दाव, दाउ, हयूलियांग और चागलागम क्षेत्र के अंजाव तथा लोअर दिबांग वैली, लोहित जिले में निवास करती है।

इस जनजाति की महिलाएं अत्यंत कुशल शाल बुनती हैं और शालों पर विभिन्न प्रकार के डिज़ाइन बनाती हैं। एल. एन. चक्रवर्ती जी के अनुसार, पहले तीनों मिश्मी जनजातियाँ आपस में मतभेद या आक्रमण करती थीं, जिस कारण अलग-अलग समूहों में बंट गया।

मिश्मी जनजाति के विषय में कुछ जानकारी असम के आदिकालीन इतिहास में मिलती है। इस इतिहास में मिश्मियों का पहला उल्लेख सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में मिलता है, जब असम अहोम राजाओं के शासन में था। कहा जाता है कि अहोम राजा रामध्वज, जिन्हें सुक्लाम्फा के नाम से भी जाना जाता है, के शासनकाल में मिश्मियों ने अहोम शासित क्षेत्र पर आक्रमण किया था। इस आक्रमण में मिश्मियों को असफल होना पड़ा और आक्रमण के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों को अहोम राजा को सौंपना पड़ा।

वर्ष 1827 में, लेफ्टिनेंट विल कोक्स ने तोरन (तेन) मिश्मी जनजाति को इस बात के लिए सहमत करवा लिया कि वे विल कोक्स और उनके साथ के व्यक्तियों को मेंजो क्षेत्र में जाने के लिए अपने गाँव से होकर गुजरने देंगे। विल कोक्स ने पाया कि तेरेन जनजाति पर क्रिसांग, घालूम और खोशा नामक तीन प्रमुखों का शासन है, जो तीनों भाई थे।

"जहां तक मिजू जनजाति के प्रमुखों का प्रश्न है, उसके एक प्रमुख रुदिंग ने तो यात्रियों की कुछ सहायता की थी, परंतु एक अन्य वरिष्ठ प्रमुख जींगसा ने इसका कड़ा विरोध किया। इतना ही नहीं, दल के सदस्यों को उसके एक विश्वासघाती आक्रमण का भी सामना करना पड़ा। इस आक्रमण

से बचते हुए, दल के सदस्यों ने रातों-रात भागकर ब्रह्मपुत्र नदी के उस स्थान पर शरण ली थी। डॉ. ग्रिफिथ्स ने अक्टूबर 1836 में मिश्मी पहाड़ियों के अपने दौरे के दौरान लोहित नदी के किनारे बसे घालुम गांव तक यात्रा की। घालुम में तेरोन जनजाति के सदस्यों ने उनका स्वागत भव्य रूप से किया, परंतु डॉ. ग्रिफिथ्स को मिज़ू-मिश्मी क्षेत्र में आगे जाने से रोक दिया गया। तेरोनों ने इसका कारण यह बताया कि डॉ. ग्रिफिथ्स के इस दौरे से पहले, मिज़ू जनजाति के लोगों ने सत्तर लामाओं की सहायता से उनके गांव पर आक्रमण किया था और उन्हें हानि पहुँचाई थी।"[52] 'तमला दु' त्योहार 13, 14 और 15 फरवरी को मिजू-मिश्मी और डिगारु-मिश्मी जनजातियों द्वारा मनाया जाता है। दिगारु-मिश्मी समाज में यह मान्यता है कि महिला गर्भावस्था के समय हिरण का मांस खा सकती है, परन्तु जन्म देने के बाद हिरण का मांस नहीं खा सकती। प्राचीन समय में मिश्मी और निशि जनजाति समाज में अंतिम संस्कार की परंपरा लगभग समान थी। लाश को पांच दिन तक रखा जाता था ताकि उसके रिश्तेदार पहुंच सकें। इस बीच, मिश्मी भाषा में 'गूल्क' और निशि भाषा में 'ञुब' शब्द का प्रयोग होता था, जिसका अर्थ होता है– स्थानीय पुजारी। दनदाई उस मृत्यु का कारण पता लगाकर मृतक की आत्मा को शांत करता था। इसी समय तक लाश से सड़ी हुई गंध बाहर निकलती थी। आजकल दोनों समाजों में ऐसा नहीं किया जाता; अब मृतक को एक-दो दिन में दफना दिया जाता है। दिगारु-मिश्मी जनजातियों का लोक नृत्य 'बुइया' है, जो मुख्यतः ताजमपु, दुइया और तानुया पर्व के दौरान प्रस्तुत किया जाता है।

धम्माई (मिजी/साजोलांग) जनजाति:

मीजी लोगों को आग का आविष्कार करने वाला माना जाता है। 'मिजी' शब्द का शाब्दिक अर्थ भी यही है- 'आग देने वाला', जहाँ 'मि' का अर्थ आग और 'जी' का अर्थ देना है। मिजी

जनजाति के अनुसार, यह नाम पड़ोसी आका जनजाति ने उन्हें दिया था। कहानी इस प्रकार है- पुराने समय में आका गाँव में एक जनगणना करने वाला आया, जो गाँवों की संख्या जानने आया था। जब उसने पूछा कि "क्या यहां और कोई गांव है?", तो आका जनजाति ने अपनी भाषा में उत्तर दिया कि "हाँ, वहाँ एक मिजी गाँव है, जो हमें आग देता था।" आका भाषा में 'मि' का अर्थ आग और 'जी' का अर्थ देने वाला होता है। आका लोग इस गांव को अपने स्थानीय नाम साजोलाग और धम्माई से जानते थे, लेकिन उन्होंने अपनी भाषा में कह दिया कि "हाँ, वहाँ आगे देने वाला गाँव है।" जनगणना करने वालों ने इसे समझ लिया और वहीं से यह जनजाति या गाँव मिजी जनजाति के नाम से प्रचलित हो गया।

मिजी जनजाति का क्षेत्र देबबीनंग, रुरंग, अपर दजंग, दितचिक, नाकू, डिबरिक, नचिमघों, खेलोंग, निजोंग, चालंग, नजंग, अधर दजंग, नफर, जंगनचिंग, लादा एवं निजोंग आदि में विस्तृत है। यह पूर्वी एवं पश्चिमी कामेंग जिलों में निवास करती है। मिजी प्रकृति-पूजक हैं-सूर्य, चन्द्र, पर्वत एवं वन पूज्य हैं। उनके पड़ोसी जनजातियों में हरुस्सो, मोनपा और निशि शामिल हैं। मिजी लोग स्वयं को साजोलाङ और धम्माई कहते हैं। किसी पुस्तक में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, लेकिन स्थानीय जनजाति के अनुसार, साजोलाङ एक व्यक्ति का नाम है। यह साजोलाङ धम्माई का पिता था, यानी 'महान पिता', और उसके सभी पुत्रों को धम्माई कहा जाता था। इस जनजाति में भी झूम खेती प्रचलित है। मुख्य भोजन में चावल, मांस और मछली शामिल हैं। मिजी समुदाय दो वर्गों में बंटा है- न्युबु और न्युलु। साजोलाङ जनजाति के अनुसार यह प्रथा पुराने समय की थी और वर्तमान में दास प्रथा जैसी प्रथा अब नहीं है। वीरेंद्र परमार जी ने अपनी पुस्तक 'अरुणाचल प्रदेश लोकजीवन और संस्कृति' में लिखा है कि मिजी लोग स्वयं को धम्माई भी कहते हैं। 'अरुणाचल प्रदेश लोक जीवन और संस्कृति' से उद्धृत- "मीजी लोग स्वयं को धम्माई

कहते हैं। लोक कथाओं के अनुसार मीजी जनजाति का मूल निवास क्षेत्र मैदानों में और संभवतः असम में था। असम के आहोम शासकों के साथ इनका घनिष्ठ संबंध माना जाता है। मीजी का शाब्दिक अर्थ है 'आग देने वाला', जहाँ 'मी' का अर्थ आग और 'जी' का अर्थ देने वाला है। ऐसा माना जाता है कि मीजी लोग सर्वप्रथम आग के प्रयोग से परिचित हुए होंगे या उन्होंने आग का आविष्कार किया होगा।"[53] मीजी लोग स्वयं को सजोलांग कहते हैं। यह समुदाय दो वर्गों में विभक्त है- न्युबु, जिसे सामाजिक दृष्टि से विशिष्ट माना जाता है, और न्युलु, जिसे अपेक्षाकृत हीन समझा जाता है। इस समाज में दास प्रथा भी प्रचलित थी। धर्म की दृष्टि से यह समाज जड़ात्मवादी है। ये लोग पर्वत, वन, सूर्य, चंद्रमा सहित अन्य दैवी शक्तियों में विश्वास करते हैं। मीजी जनजाति का सबसे प्रमुख त्योहार चिडंग है। यह त्योहार सुख, समृद्धि और आरोग्य की कामना के साथ धूमधाम से मनाया जाता है। 'चिन' का अर्थ है पूजा और 'डंग' का अर्थ है अर्पित करना तथा बलि देना। इस त्योहार में सर्वशक्तिमान आध्यात्मिक प्रतीक जंग लंग नाई, सूर्य, चंद्रमा, पर्वत, नदी और वन आदि की पूजा की जाती है। उन्हें विभिन्न वस्तुएं अर्पित की जाती हैं, जानवरों की बलि दी जाती है और मंत्रों तथा गीतों के माध्यम से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास किया जाता है। यह त्योहार सामुदायिक स्तर पर आयोजित होता है।

"इसके अतिरिक्त मीजी जनजाति खान गेलम त्योहार भी मनाती है। यह त्योहार व्यक्तिगत स्तर पर आयोजित होता है और इसमें खर्च अधिक होता है। अतः सामान्यतः केवल धनी लोग ही इसका आयोजन करते हैं। मीजी समुदाय की आजीविका का प्रमुख साधन कृषि है। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण ये लोग झूम खेती करते हैं। उनकी खेती अनिश्चित होती है, इसलिए ये लोग दैवी शक्तियों से अच्छी फसल की कामना करते हैं और खेती के प्रत्येक चरण में संस्कार या त्योहार अवश्य आयोजित करते हैं।"[54]

मिजी जनजाति के प्रमुख त्योहार हैं—खा, चिडंग एवं खान गेलम। खान गेलम व्यक्तिगत स्तर पर मनाया जाता है, जबकि खा एवं चिडंग सामूहिक रूप से आयोजित होते हैं। प्रमुख लोकनृत्य पेंगेरोई है। भाषा में देवता को 'जांगलांग लोई' कहा जाता है। खा त्योहार झूम खेती की फसल काटने के बाद मनाया जाता है। मिजी लोग इसे इसलिए आयोजित करते हैं ताकि झूम खेती के दौरान जंगल साफ करने और सुखाए हुए जंगलों को आग लगाते समय अनजाने में हुई जीव-जंतुओं की हत्या का पाप इस देवता के सम्मान से नष्ट हो सके।

'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक से उद्धृत- "मिजी लोगों की धारणा है कि झूम खेती जलाते समय जाने-अनजाने हुई जीवों की हत्या का पाप जांगलांग लोई को मनाने से नष्ट हो जाता है। वे अनजाने में हुई हत्याओं के लिए देवता से क्षमा मांगते हैं। इस अवसर पर पुरोहित चीते की खाल से बनी टोपी पहनकर, पूजा की घंटी और पेड़ की एक टहनी हाथ में लेकर पूजा स्थल पर मंत्र बोलता रहता है, मानो देवता से पूजा स्थल पर भेंट स्वीकार करने की प्रार्थना कर रहा हो। युवक चक्कर लगाते हुए घूम-घूम कर ढोल और मंजीरे बजाते रहते हैं। यह त्योहार पांच से दस दिन तक चलता है। जिस दिन यह समाप्त होता है, उस दिन पुरोहित सभी के गले में ऊन का धागा बांध देता है। इस अवसर पर सामूहिक भोज भी आयोजित किया जाता है। भोज के बाद लोग अलग-अलग समूह में नाचते-गाते जंगलों में शिकार के लिए चले जाते हैं। मिजी लोगों का विश्वास है कि यह त्योहार उन्हें भविष्य के खतरों को सहन करने की शक्ति देता है।"[55] इस जनजाति का दूसरा प्रमुख लोक नृत्य है 'पेनरे', जो चिडंग त्योहार के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है।

नाह जनजाति:

नाह जनजाति को तागिन जनजाति की उप-जनजाति माना जाता है। इसके निवास क्षेत्र हैं— गुंसिंग, तायींग, इसनाया, लिंगबिंग, टोंग्बा, येजा, रेडिंग, रेडी, दादू गाँव, ताक्सिंग क्षेत्र एवं अपर सुबनसिरी जिला। इसकी जनसंख्या अत्यल्प है। यह ना-भाषा बोलती है, जो तागिन से भिन्न एवं संपर्क-न्यून है। धर्म बौद्ध है। यह भारत-चीन सीमा के सन्निकट अपर सुबनसिरी में वासति। सीजू त्योहार नवंबर-दिसंबर में उत्सावित है। नाह जनजाति भी झूम खेती करती है। इस जनजाति का मुख्य भोजन चावल, मरुआ, मक्का, मांस, मछली और पत्तेदार सब्जियाँ हैं।

नोक्ते जनजाति:

नोक्ते जनजाति का मतलब है गाँव के लोग। इस जनजाति का क्षेत्र है खोंसा, बोरदुरिया, दादाम, मोकटोआ, नमसांग, खेते, जांकङ आदि क्षेत्र है और तिराप जिले में वसा है। नोक्ते जनजाति का शाब्दिक अर्थ 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक साहित्य' पुस्तक में दिया गया है — "नोक्ते" का शाब्दिक अर्थ होता है गाँव के लोग। (नोक = गाँव, ते = लोग)"[56] न्यिशी जनजाति और नोक्ते जनजाति में थोड़ी-थोड़ी समानताएँ दिखाई देती / मिलती हैं। जैसे जब स्त्री गर्भवती होती है तो उन्हें खान-पान का खास ध्यान रखना पड़ता है, साथ ही पुरुष भी ध्यान रखते हैं। किसी भी जानवर को मारकर पति अकेले नहीं खा सकते, किसी मृत्यु शरीर के पास या मरते हुए जानवर को नहीं देख सकते। ऐसा देखने या खाने से जन्म होने वाले शिशु पर बुरा असर पड़ता है। मुझे लगता है ऐसा भारत के हर कोने में लागू होता होगा। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक से उद्धृत- "गर्भावस्था में स्त्रियों के आने-जाने और खान-पान पर कई प्रकार के प्रतिबंध लग जाते हैं। गर्भवती महिला हिरण का मांस, कड़वे फल, सूखा मांस और सूखी मछलियां नहीं खाती। वह उन दिनों किसी जानवर का वध भी नहीं कर सकती। उसके लिए मुर्दे को देखना वर्जित होता है। जिस घर में मृत्यु हो जाती है,

गर्भवती स्त्री वहाँ नहीं जा सकती। इतना ही नहीं, गर्भवती महिला के पति पर भी कुछ प्रतिबंध होते हैं। वह इस अवधि में सांप या दूसरे जानवरों की हत्या नहीं कर सकता। वह घर की किसी वस्तु को बेच नहीं सकता। उनके लिए भी किसी के मृत शरीर को छूना मना है। इस प्रकार पत्नी की गर्भावस्था की इस विधि में पति–पत्नी दोनों ही नियमों का ईमानदारी से पालन करते हैं।"[57]

इस उदाहरण में जो दीन दयाल जी ने लिखा है कि गर्भवती महिला हिरण का मांस नहीं खा सकती, इस वाक्य को नोक्ते स्थानीय जनजाति ने गलत बताया है। क्योंकि प्राचीन समय से लोग जंगलों में रहते आए थे, तो जंगल का मांस, मछली नहीं खाएंगे तो ताकत/शक्ति कहाँ से आएगी। हाँ, लेकिन नोक्ते लोगों ने बताया कि कुछ-कुछ जंगली पत्ते नहीं खा सकते। बाकी सब खाते थे और खा सकते हैं। हाँ, यह सही है कि जब आस-पड़ोस में किसी की मृत्यु हो जाती है, तो गर्भवती महिला उस स्थान पर नहीं जा सकती, साथ ही उसका पति भी वहाँ नहीं जा सकता। अगर जाना भी पड़ता है, तो शव के स्थान या शव की चीजों को हाथ नहीं लगाना होता है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक से उद्धृत- "जिस घर में मृत्यु हो जाती है, गर्भवती स्त्री वहाँ नहीं जा सकती। इतना ही नहीं, गर्भवती महिला के पति पर भी कुछ प्रतिबंध होते हैं। वह इस अवधि में सांप या दूसरे जानवरों की हत्या नहीं कर सकता। वह घर की किसी वस्तु को बेच नहीं सकता। उनके लिए भी किसी के मृत शरीर को छूना मना है। इस प्रकार पत्नी की गर्भावस्था की इस विधि में पति–पत्नी दोनों ही नियमों का ईमानदारी से पालन करते हैं।"[58]

नोक्ते लोग मानते हैं कि स्त्री को ससुराल में ही अपना पहला संतान जन्म देना चाहिए। मायके में जन्म देना अशुभ माना जाता है। इसका कारण यह है कि बच्चा दादा-दादी को पहचान पाए और पहला प्रयोग रीति लड़के के माता-पिता को ही मिलना चाहिए। यह नियम बंगाल की परंपरा से विपरीत है, क्योंकि बंगाल में गर्भवती महिला मायके जाकर पहला बच्चा जन्म देती है। 'हमारा

अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक से उद्धृत- "एक गर्भवती महिला आठवें महीने तक घर और खेत में काम करती है। नवविवाहिता आठवें महीने के पश्चात अपने पिता के घर नहीं रह सकती, उसे अपनी ससुराल जाना पड़ता है। नोक्ते लोगों का विश्वास है कि संतान पिता के घर ही पैदा होनी चाहिए। वे मायके में संतान का पैदा होना अशुभ मानते हैं।"[59]

नोक्ते समाज में जुड़वा बच्चों का जन्म होना भी अशुभ माना जाता है। ऐसा जन्म होने से परिवार में अच्छा लक्षण नहीं माना जाता है। ऐसा विश्वास प्राचीन समय में था, आज के समाज में ऐसा नहीं माना जाता है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' से उद्धृत- "नोक्ते समाज में जुड़वा बच्चों के जन्म होना अशुभ माना जाता है।"[60]

इस जनजाति में पौराणिक काल में हेड-हंटिंग का प्रचलन बहुत ज्यादा चलता था। न्यिशी जनजाति में भी इस प्रकार की प्रथा थी, लेकिन नोक्ते और वांगचू जनजाति की तुलना में कम थी। इसका कारण न्यिशी जनजाति में दो भाइयों के आपसी मतभेद, ज़मीनों की लेन-देन, अशिक्षा आदि को बताया जाता है। लेकिन नोक्ते जनजातियों में स्त्रियों की जनसंख्या कम होने के कारण स्त्रियों को लेकर आपस में सिर काटाकाटी करना और नमक के स्थान को लेकर भी दो गाँवों में झगड़ा हो जाता था, ऐसा बताया जाता है। जिसके कारण एक-दूसरे के सिर काटने की प्रथा शुरू हुई, ऐसा माना जाता है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' से उद्धृत- "बहुत समय पूर्व नोक्ते समाज में शत्रुओं के सिर काटने की प्रथा प्रचलित थी। अब इस प्रथा की केवल याद भर रह गई है। प्राचीन काल में एक जनजाति दूसरी जनजाति पर आक्रमण करती रहती थी। कभी-कभी नमक के स्थान को लेकर भी दो गाँवों में झगड़े हो जाते थे। सिर काटने की प्रथा के पीछे इनके समाज में एक कथा प्रचलित है- प्राचीन काल में प्रेम का साम्राज्य था, भय का नामोनिशान नहीं था। आदमी और जानवर सभी एक साथ रहते थे। इसी तरह समय बीतता गया, सभी सुखी थे। समय के साथ-साथ जनसंख्या बढ़ने लगी। स्त्री और पुरुषों

की जनसंख्या में संतुलन बिगड़ गया। स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक हो गए। स्त्रियों को पाना कठिन हो गया। तब उन्हें लेकर झगड़े प्रारंभ हो गए। एक बार एक स्त्री को पाने की होड़ में दो पुरुषों में झगड़ा हो गया और पोटेई नामक एक व्यक्ति मारा गया। पोटेई का भाई छोटा था। बड़ा होने पर वह एक बार जंगल में शिकार खेलने गया। वहाँ उसे एक मधुमक्खी ने काट लिया। उसे बहुत दर्द हुआ। वह विचार करने लगा कि उसके बड़े भाई पोटेई को जब मारा गया होगा, तब उसे कितना दर्द हुआ होगा। यह सोचकर उसने अपने बड़े भाई के हत्यारे का सिर काट लिया। तभी से शत्रुओं के सिर काटकर लाने की प्रथा प्रचलित हो गई।"[61] 25 नवंबर को चलो-लोकु त्योहार मनाया जाता है। लोक नृत्य में युद्ध नृत्य भी होता है, "छमवांगबोंग" नृत्य कहा जाता है। लोकगीत भी युद्ध गीत ही होते हैं। 'DEMOCRACY IN NEFA' में लिखा है कि -"Once the Noctes were a tribe of warriors and head-hunters who involved themselves frequently in inter-village disputes and raids. the political life of the people was maintained by the chief and elders, a body which is called variously Ngothun, Ngongthun or Ngongthit. This councill maintains law and order, decides disputes within the village and with other villages and also organizes development activities. In the old days they also planned their wars and head-hunting forays. Nowadays, the Nocte village councils are functioning almost like regular panchayats and undertake all sorts of activities for the development and welfare of the people, besides deciding their disputes.

The chief of the village, who is called lowang, is the head of the council and functions as its chairman. It is he who gives the final decision on any affair, after consulting the other members."[62]

मेंम्बा जनजाति:

मेंम्बा जनजाति का क्षेत्र जेलिंग, मेंचूका, गेलिंग, टूटींग, पाचकशीरी, दोरजिलिंग, लुपसो, सेखार, छुटलिंग, लहालउंग, देजेंथाँग और योरनयी आदि क्षेत्रों में फैला हुआ है। यह जनजाति मुख्यतः पश्चिमी सियांग और अपर सियांग जिलों में निवास करती है।

मेंम्बा जनजाति अपने पड़ोसी जनजातियों को पहचानने का प्रयास करती है। इनके अनुसार, पूर्व दिशा में बोकर जनजाति है, जो आदी जनजाति की उप-जनजाति है; पश्चिम दिशा में तागीन जनजाति, दक्षिण में रामो और पैलिबो जनजातियाँ हैं- ये दोनों भी आदी जनजाति की उप-जनजातियाँ हैं; और उत्तर दिशा में मैकमोहन रेखा (सीमा) स्थित है। मेंम्बा जनजाति भी बौद्ध धर्म को मानने वाली जनजाति है।

इस जनजाति के विषय में बहुत कम पुस्तकें उपलब्ध है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश', 'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' और 'डेमोक्रेसी इन नेफा' जैसी पुस्तकों में मेंम्बा और खम्बा जनजातियों का उल्लेख बहुत सीमित रूप में मिलता है। केवल कुछ हद तक जानकारी इन पुस्तकों में उपलब्ध है- 'अरुणाचल प्रदेश लोक जीवन और संस्कृति', Tribes of Arunachal Pradesh: History and Culture, और 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक साहित्य'।

मेंम्बा जनजाति झूम खेती का पालन करती है, जिसमें चावल, मक्का, पत्तेदार सब्जियाँ और रागी जैसी फसलें उगाई जाती हैं। इस जनजाति का प्रमुख पर्व 'दुबा' कहलाता है। टूटींग क्षेत्र में स्थित बड़ा गोम्पा मंदिर इस त्योहार का मुख्य आयोजन स्थल होता है। यहाँ 'दुबा' का शाब्दिक अर्थ है - 'बुरी शक्तियों का विनाश'। 'अरुणाचल प्रदेश लोकजीवन और संस्कृति' पुस्तक से उद्धृत- "दुबा मेंम्बा जनजाति का प्रमुख त्योहार है। यह त्योहार एक सप्ताह तक मनाया जाता है। टुटिंग का गोम्पा उनके धार्मिक क्रियाकलापों का सबसे प्रमुख केंद्र है। मेंम्बा परंपरा के अनुसार यह त्योहार लोगों की भलाई और समाज में सुख-शांति की स्थापना के लिए मनाया जाता है। इस त्योहार के आयोजन से बुरी शक्तियों का नाश होता है और शुभ शक्तियों की प्रबलता के कारण समुदाय के लोग सुखी व स्वस्थ रहते हैं। सभी लोग दुर्भाग्य, रोग और प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा के लिए अपने इष्ट देवता की प्रार्थना करते हैं। लोगों का विश्वास है कि यदि दुबा त्योहार नहीं मनाया जाए तो वे सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। इस पर्व के अवसर पर अजगर, घोड़े, सिंह, बंदर आदि जानवरों के मुखौटे पहनकर लोग नृत्य करते हैं।"[63]

ऐतिहासिक रूप से मेंम्बा जनजातियाँ सदियों से ट्रांस हिमालयन व्यापार में संलग्न रही हैं। यह व्यापार मुख्यतः भारत और तिब्बत के बीच होता था। आज भी यह परंपरा जारी है। पुराने समय में लोग व्यापार के लिए घोड़ों द्वारा चलने वाली कारवाँ का उपयोग करते थे। मेंम्बा जनजाति कृषक है और यहाँ झूम खेती की जाती है। इनमें मुख्य फसल धान है, इसके अलावा रागी, मक्का और विभिन्न सब्जियां उगाई जाती हैं। 'Arunachal living Heritage.com' से उद्धृत- "Historically the Memba were engaged in trans Himalayan trade, linking India and Tibet for centuries. Even today the tradition of horse-driven caravans continues, which were used in the past for regular trade in Tibet. They are

agrarian people, practicing jhum cultivation and growing millets, maize, and various vegetables. Paddy is their main crop, and they also cultivate millet, maize, vegetables etc."[64]

मेंम्बा जनजाति के प्रमुख लोकनृत्य हैं 'बरदो' और 'बरोह'। ऐसा भी मान्यता है कि खम्बा और मेंम्बा जनजातियाँ पहले एक ही थी, लेकिन बाद में ये अलग-अलग मुख्य जनजातियाँ बन गई। इसका कारण मुख्यतः जनसंख्या का संतुलन, छोटे परिवार में रहने की इच्छा, आपसी मतभेद, रीति-रिवाज, वेशभूषा, पारंपरिक पोशाक, भाषा और सांस्कृतिक अंतर बताया जाता है।

बिभाष दर भी लिखते हैं कि ये दोनों जनजातियाँ उत्तर सियांग में निवास करती हैं और इनका धर्म बौद्ध धर्म है। ये लोग झूम खेती करते हैं और यहाँ मक्का, बाजरा, रागी, कपास और जौ उगाते हैं।

मेंम्बा जनजाति में एक से अधिक पति रखने की प्रथा पुराने समय में प्रचलित थी, लेकिन आज के समय में यह नहीं अपनाई जाती। वर्तमान में सभी एक ही विवाह से संतुष्ट रहते हैं। 'Tribes of Arunachal Pradesh: History and Culture' से उद्धृत- "Khambas and Membas inhibiting northern Siang are Buddhist by religion. They resemble much with the Monpas of Tawang and West Kameng. Polyandry is prevalent among them, but it is more in vogue among the Membas. Agricultural activities is popular among them. Millet and maize are their staple food. They grow cotton and barley also."[65] मेंम्बा जनजाति भी लोसर त्योहार मनाती है।

मोनपा जनजाति:

मोनपा जनजाति के नाम से ही दिमाग में तवांग, बोमदिला, नफरा, जी गाँव और शेर गाँव क्षेत्र, जो पश्चिमी कामेंग जिला में स्थित हैं, का चित्र उभरता है। यह क्षेत्र बर्फीला और कठोर जलवायु वाला है, जहाँ के निवासी अत्यंत मेंहनती और सहनशील हैं। यहां का ठंडा पानी हाथों को काटने जैसी तीव्र ठंड पैदा करता है, और दिसंबर के महीने में अत्यधिक ठंड के बावजूद मोनपा जनजाति के लोग अपने दैनिक कार्यों में तत्पर रहते हैं।

सुबह जल्दी उठकर वे अपने घरों के सारे कार्य निपटाते हैं और चावल पकाकर परिवार के लिए भोजन तैयार करते हैं। यदि हम उस परिस्थिति में रहते, तो इतनी ठंड और मेंहनत के कारण सर्दी से बीमार पड़ने की संभावना अधिक होती। मोनपा क्षेत्र भूटान और तिब्बत की सीमाओं के निकट स्थित है, जो इस जनजाति की जीवन-शैली और सांस्कृतिक विशेषताओं को प्रभावित करती है।

मोनपा शब्द का शाब्दिक अर्थ है- "निचले देश के रहने वाला," अर्थात ठंडी पहाड़ियों में रहने वाली जनजाति। मोनपा जनजाति के क्षेत्र में अनेक पर्यटन स्थल हैं, जिनमें सिला पास, नूरानांग झरना, तवांग मठ, उरगेलिङ्ग मठ, टाकतसंग गोम्पा, खिनमेंय मठ, बप तेंग कंग झरना, बुमला पास, माधुरी झील, पाँगकंग तेंग त्सो झील, जसवंत घर और तवांग युद्ध स्मारक प्रमुख हैं।

'हमारा अरुणाचल प्रदेश' से उद्धृत विवरण के अनुसार- "मोनपा का अर्थ होता है- निचले देश के रहने वाले लोग। ये लोग भेड़ों का पालन करते हैं और भेड़ों से मिलने वाली ऊन सर्दी में उनकी रक्षा करती है। पुरुष शुद्ध लाल ऊन से बना 'चूबा' पहनते हैं और एक विशेष प्रकार की टोपी

भी पहनते हैं। सर्दी से बचने के लिए ये भारी ऊनी बूट पहनते हैं, जो घुटनों तक ऊँचे होते हैं। इसके अतिरिक्त, ये लोग लकड़ी की म्यान में सजी एक छोटी तलवार भी प्रायः अपने साथ रखते हैं।"[66]

मोनपा जनजाति महायान बौद्ध धर्म की अनुयायी है। यह जनजाति शांतिपूर्ण, दयालु, अतिथि-सत्कार में निपुण और व्यवहार कुशल मानी जाती है। मोनपा जनजाति का उप-जनजातीय विभाजन उनके निवास क्षेत्र के आधार पर किया गया है, जिसमें तवांग मोनपा, दिरांग मोनपा, लिश मोनपा, भूत मोनपा और पंचन मोनपा शामिल हैं। वेरियर एल्विन की पुस्तक 'Democracy in NEFA' से उद्धृत अनुसार:- "The Monpa of Kameng have had well-developed village self-governing institutions at least for the last thousand years and the power exercised by the councils as well as their democratic nature compare very favourably with the kebangs among the Adis. West Kameng falls into three fairly distinct geographical units: Tawang, inhabited by the Northern Monpas; Dirang, inhabited by the Central Monpas; and Kalaktang, inhabited by the Southern Monpas. Village councils are present in the most developed form with the strongest traditions among the Northern Monpas; and this note is a study mainly of the institutions in that area."[67]

कृषि यहाँ के लोगों का मुख्य जीवनधारा है। यहाँ के लोग झूम खेती के साथ-साथ स्थायी खेती भी करते हैं। इस क्षेत्र में सेब, कीवी, संतरा, चावल, मिर्च, कद्दू, मक्का, मटर, पालक, लाइपट्टा, लहसुन, प्याज, अदरक, आलू, टमाटर, बीन्स आदि फल और सब्जियां उगाई जाती हैं।

कुछ क्षेत्रों जैसे कलकटांग और दिरांग में खेती के लिए पारंपरिक लकड़ी के हल का प्रयोग किया जाता है, जिसे बैलों की सहायता से चलाया जाता है। यहाँ के लोग जैविक खाद का उपयोग

करते हैं, जो जंगल की पत्तियों, याक और गाय के गोबर से तैयार की जाती है। यह जनजाति पशुपालन में भी निपुण है। इनके यहाँ याक, गाय, घोड़ा, बकरी, भेड़, सूअर और गधा आदि पाले जाते हैं।

मोनपा जनजाति कलाकारी में भी अग्रणी है। ये बाँस के छोटे-छोटे टुकड़ों से घरों की सजावट, डिजाइन और गोम्पा (बौद्ध मठों) के मंदिरों की मूर्तियों को सुंदरता से तैयार करते हैं। ये लोग स्वयं बुने हुए पारंपरिक वस्त्र पहनना पसंद करते हैं।

'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक के अनुसार- "कामेंग के सेब पुरे भारत में प्रसिद्ध है। मोनपा स्त्रियां बहुत सुंदर गलीचे बुनती है, जिसमें ड्रैगन डिजाइन वाले गलीचे विशेष रूप से आकर्षक होते हैं। नृत्य इनके जीवन का अभिन्न अंग है। यहाँ अनेक धार्मिक नृत्य होते हैं, जिनमें लकड़ी से बने मुखौटे पहने जाते हैं, जो मनुष्य और जानवरों के रूप में बनाए जाते हैं।"[68] मोनपा जनजाति में एक से अधिक पति और एक से अधिक पत्नी रखने की प्रथा पुराने समय में प्रचलित थी। आज के समय में यह प्रथा बहुत कम देखी जाती है। गालो जनजाति में भी एक से अधिक पति रखने की प्रथा पुराने समय में थी, लेकिन आजकल यह भी समाप्त हो गई है। एक से अधिक पत्नी रखने की परंपरा आज भी कुछ स्थानों पर देखी जाती है। दो से अधिक पति रखने की प्रथा बंद हो चुकी है। मेरा मानना है कि जब अधिक पत्नी रखने की प्रथा चल रही है, तो अधिक पति रखने की प्रथा भी चलनी चाहिए- या फिर दोनों को ही बंद कर देना चाहिए, ताकि कहानी यहीं समाप्त हो जाए। मेरे अनुसार, दोनों ही प्रथाएँ न होना ही उचित है। जब मैंने स्थानीय लोगों से एक से अधिक पति या पत्नी रखने के कारणों के बारे में पूछा, तो उन्होंने बताया कि- पहला कारण यह था कि जनसंख्या का संतुलन बनाए रखने के लिए ऐसा करना पड़ता था। दूसरा कारण, स्वयं को प्रसिद्ध और धनी दिखाने की इच्छा थी। तीसरा कारण, अपने पूर्वजों की मान्यताओं और परंपराओं का

पालन करना बताया गया। लेकिन हाँ, तिब्बत और भूटान जैसे देशों में आज भी यह बहुपतित्व प्रथा लागू है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक से उद्धृत- "आजकल मोनपा लोग एक ही विवाह करते हैं। लगभग 30 वर्ष पहले एक पति और एक पत्नी का कोई निश्चित बंधन नहीं हुआ करता था। जब पुरुष दो पत्नियां रख सकता था, तब स्त्रियां भी दो या दो से अधिक पति रख सकती थीं। औरतों का सम्मान यहाँ सदा से होता आया है। 'मेंन', 'चोरटेन' और 'गोंपा' इनके विचारों और विश्वासों के प्रतीक हैं। 'मेन' तीन से चार मीटर लंबी और लगभग आधा मीटर चौड़ी एक दीवार होती है। इस दीवार पर इनका पवित्र मंत्र "ॐ मणि पद्मे हूँ" लिखा रहता है। यही मंत्र 'मेन' के पत्थरों पर भी अंकित किया जाता है। कुछ पत्थरों पर वे सुंदर कमल के फूल और बुद्ध की प्रतिमाएँ भी उकेरते हैं।"[69]

इनकी यह मान्यता है कि इनके रहते प्रेतात्माएँ मनुष्यों को नुकसान नहीं पहुँचा सकते। कुछ लोग अपने जीवनकाल में ही 'मेन' का निर्माण करते हैं। धनी व्यक्तियों की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में भी 'मेन' बनाई जाती है। पैदल चलने वाले लोग 'मेन' को सदा अपनी दाईं ओर रखकर चलते हैं।

'चोरटेन' स्तूप के आकार का बना होता है। यहाँ कभी-कभी प्रार्थनाओं का आयोजन किया जाता है, जिसका संचालन लामा करते हैं। उपस्थित लोग पूजा स्थल की तीन बार परिक्रमा करते हैं।

"'गोंपा' इनका मंदिर होता है। इसमें भगवान बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा स्थापित होती है। यहाँ धार्मिक पुस्तकों की भी कोई कमी नहीं है। ये पुस्तकें 'पाली' भाषा में लिखी होती हैं, और उसकी लिपि भी पाली ही है। इस क्षेत्र में पाली भाषा का अमूल्य साहित्य उपलब्ध है, जो शोधकर्ताओं के लिए एक बहुमूल्य भंडार है।"[70]

'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक से उद्धृत- "तवांग का गोंपा मोनपा लोगों का एक बड़ा तीर्थ और सांस्कृतिक केन्द्र है। लगभग 3048 मीटर की ऊँचाई पर स्थित यह गोंपा भारत का सबसे बड़ा बौद्ध विहार है। इसमें लगभग 500 लामा रहते हैं। डॉ. एल्विन ने इसकी तुलना इटली के पुराने शहर और प्राचीन ऑक्सफोर्ड से की है। इस मठ की स्थापना के विषय में कई मत प्रचलित हैं। एक मत के अनुसार पंचम दलाई लामा के प्रतिनिधि मेंरालामा ने इसकी स्थापना की थी। स्थापना के समय मेंरालामा ने घोड़े के देवता 'तामडिंग' की पूजा की थी। तभी से आसपास के क्षेत्र को 'तवांग' कहा जाने लगा। दूसरे मत के अनुसार, बहुत पहले एक पूज्य लामा यहाँ आए और अपने घोड़े से उतरे। उन्होंने घोड़े को आशीर्वाद दिया। इस मत के अनुसार 'तवांग' का अर्थ होता है- 'घोड़ों का अस्तबल'। इस क्षेत्र में आज भी सवारी और सामान लाने-ले जाने में घोड़ा अत्यंत उपयोगी है। तवांग के गोंपा में आज भी एक अत्यंत महान पुस्तक सुरक्षित है। इस पुस्तक में भगवान बुद्ध की वाणी अंकित है। यह पुस्तक भोजपत्र (ताड़पत्र) पर पाली भाषा में बड़े-बड़े स्वर्णाक्षरों में लिखी गई है। एक-एक अक्षर लगभग दो तोले सोने से बना है। सोने के भार से यह पुस्तक अत्यंत भारी हो गई है, जिसे दो व्यक्ति मिलकर उठाते हैं। किसी विशिष्ट अतिथि के आगमन पर गोंपा के लामा आज भी उसे यह पुस्तक दिखाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि अच्छे कर्म स्वर्णाक्षरों में लिखे जाते हैं- यह केवल कहावत नहीं, बल्कि यहां का एक जीवंत यथार्थ है। इस यथार्थ को आज भी हम अपनी आँखों से भारत, तिब्बत और भूटान के सांस्कृतिक संगम- तवांग में देख सकते हैं।"[71]

एल. एन. चक्रवर्ती ने 1962 में चीन द्वारा तवांग पर किए गए आक्रमण का उल्लेख किया है, परंतु इसके कारणों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। चीन के इस हमले से तवांग के निवासियों को अत्यंत कष्ट झेलने पड़े। वहाँ सब कुछ नष्ट हो गया था- लोगों ने अपने परिजनों, घरों और आजीविका को खो दिया। अनेक लोगों की मानसिक और आर्थिक स्थिति बुरी तरह प्रभावित हुई।

'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' पुस्तक से उद्धृत- "दुर्भाग्यवश वर्ष 1962 में चीन द्वारा किए गए आक्रमण से तवांग के विकास कार्यों में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न हुई थी। वहाँ के निवासियों को इस आक्रमण से अत्यधिक कष्टों का सामना करना पड़ा। कुछ लोगों ने अपना घर छोड़कर असम में शरण ली। सड़के, मकान और पुल नष्ट हो गए थे। चिकित्सालय और विद्यालय बंद कर दिए गए थे। वहाँ चल रहे राष्ट्र-निर्माण के कार्यक्रम अचानक ठप पड़ गए थे। चीनी सैनिकों के वापस जाने के बाद, घर छोड़कर भागे हुए लोगों को पुनः उनके गाँवों और घरों में भेजा गया तथा एक बार फिर विकास कार्यों को गति देने का प्रयास किया गया। वर्तमान में तवांग के निवासियों को हर प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हो रही हैं और वे सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं।"[72]

मोनपा जनजाति में अंतिम संस्कार की चार विधियाँ प्रचलित हैं- पहली, शव को आग में जलाया जाता है; दूसरी, शव को गिद्धों को खिलाया जाता है; तीसरी, शव को टुकड़ों में काटा जाता है; और चौथी, शव को दफनाया जाता है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक से उद्धृत- "जब किसी धनी व्यक्ति की मृत्यु होती है, तो उसका शव ये लोग अपने श्मशान 'कार्पोचांग' ले जाते हैं। वहाँ मृत व्यक्ति के पास आग जलाते हैं और दीपक भी प्रज्वलित करते हैं। इस प्रकार वे गिद्धों को शव पर टूट पड़ने का निमंत्रण देते हैं। मृत व्यक्ति का सिर काटकर धड़ से अलग रख दिया जाता है। जब गिद्ध पूरा शरीर खा लेते हैं, तब अंत में काटा गया सिर भी उन्हें खाने के लिए दे दिया जाता है। यदि गिद्ध निमंत्रण स्वीकार नहीं करते, तो मृत शरीर को जला दिया जाता है। सर्दियों के समय, जब 'कार्पोचांग' नहीं जाया जा सकता, तब भी शव को जला दिया जाता है। एक साधारण व्यक्ति के शव को पास की नदी के किनारे ले जाया जाता है, जहाँ मृत शरीर को 108 टुकड़ों में काटकर नदी में प्रवाहित किया जाता है। नदी की मछलियां इन टुकड़ों को खा जाती हैं। यदि मृत व्यक्ति को कोई संक्रामक रोग रहा हो, तो उसके शव को दफना दिया जाता है। मृत्यु के सात दिन बाद लामा एक विशेष प्रकार की

पूजा करते हैं, जिसका उद्देश्य मृत आत्मा को शांति प्रदान करना होता है। मोनपा जनजाति के पार्थिव शरीर के विसर्जन में अनेक संस्कृतियों की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।”[73] मोनपा जनजाति का प्रमुख त्योहार लोसर है। यह त्योहार हर वर्ष 28 फरवरी से 2 मार्च तक मनाया जाता है। इसी त्योहार से मोनपा लोगों का नववर्ष आरंभ होता है। मोनपा जनजाति का लोक नृत्य ‘आजी लामु’ कहलाता है, जो इनके सांस्कृतिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

योबीन/लीसु जनजाति:

योबीन जनजाति भी अरुणाचल की प्रमुख जनजाति है। इस जनजाति का क्षेत्र है- विजेनघर, गांधीग्राम, शिडी लीसू, मियाओ, इंजान, खरसांग, वांगलोंग, किबितो आदि क्षेत्र। यह जनजाति चांगलांग और अंजाव जिला के आसपास रहती है।

योबीन पुरुष लोग शिकार करने में माहिर रहते हैं। ये लोग मांसाहारी हैं; चावल, मक्का, हरी सब्जी, मछली आदि इनका मुख्य खान-पान है। इस जनजाति में भी पितृसत्तात्मक समाज है। लीसू जनजाति को काला लीसू के नाम से भी पुकारते हैं क्योंकि उनकी पारंपरिक पोशाक पूरी काली होती थी; इसका कारण यह है कि पड़ोसी जनजातियाँ उन्हें काला लीसू के नाम से पुकारते थे।

योबीन जनजाति के बारे में बताया जाता है कि ये लोग पहले नगाचेमें गाँव में थे, जहां बहुत सारी नदियां और झीलें थी और उसी नदियों से मछली पकड़कर खाते थे। वहाँ से दूसरा स्थान आया जिसका नाम ईचिमि गाँव है, वहाँ वसा। फिर ईचिमि से पूताओ स्थान पर अपना गाँव वसा। फिर पुताओ से 110 किलोमीटर चलकर भारत के राज्य अरुणाचल प्रदेश के मुखापीकों क्षेत्र में बस गए। वहाँ से दाओडी, गवामीडी, चईदुडी, शिडी, हाजूली, एबेदी आदि क्षेत्र में फैल कर वसा हुआ।

योबीन जनजाति का भोजन- चावल, मरुवा, बागीखू, मक्का, अरुं, माँस-मछली और जंगली पत्तेदार सब्जियां। योबीन जनजाति के बारे में विस्तार से जानकारी 'The Tribes of Arunachal Pradesh: History and Culture' किताब में दी गई है।

अरुणाचल प्रदेश के राज्य संग्रहलय से उद्धृत: "Yobin men are expert hunters. Agriculture and fishing are the main subsistence of life. Their staple food consists of rice, millet, vegetables, and meat."[74]

योबीन जनजाति का त्योहार- "खोशी पाई", फरवरी में मनाया जाता है। इस जनजाति का लोक नृत्य- "चांगों" और "वाखी खी" नृत्य है।

वांचो जनजाति:

वांचो जनजाति पश्चिमी और दक्षिण तिरप, लोंगदिङ, चांगलांग जिला पर भी रहती है। कहते हैं कि वांचो लोग बहुत महान और बहादुर होते हैं। नोक्टे जनजाति और वांचो जनजाति आसपास रहती हैं; दोनों की हेड हंटिंग प्रथा खूब चलती थी। अब नहीं चलती है। इस जनजाति का समाज दो हिस्सों में बटा हुआ था- एक मुख्य वर्ग, जिसे वांगहाम के नाम से जाना जाता था, और दूसरा आम लोग, जिन्हें वांगपान के नाम से जाना जाता था। इन जनजातियों में मुखिया की व्यवस्था रहती थी। आज भी यह व्यवस्था गाँव में चलती है। इनका समाज मुख्यतः दो स्तरों में विभाजित है- वांगहाम और वांगपान। मुखिया का वर्ग वांगहाम कहलाता है। साधारण लोग वांगपान वर्ग के अंतर्गत आते हैं। आपसी झगड़ों से निपटने के लिए एक मुखिया होता है। मुखिया वर्ग की बात आज भी सुनी जाती है और उसे अब भी पूरा सम्मान दिया जाता है। सभी वर्ग के लोग आपस में बड़े प्रेम

से रहते हैं। केवल उत्सवों और विवाहों के समय ही इनके सामाजिक वर्ग भेद उभरकर सामने आते हैं।"[75]

वांचो जनजाति के पुरुष लोग अपने शरीर में सुंदर-सुंदर डिजाइन का टैटू या गोदवाया जाता है, इसे श्रृंगार का अंग मानते हैं। पहले के ज़माने में ये लोग अपने शरीर पर हाथी के दांत, सींग, फूलों और पंखों से सजाते थे। अभी के ज़माने में ये सब गायब हो गया है; आजकल ऐसा श्रृंगार नहीं किया जाता है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' से उद्धृत- "पहले ये लोग हाथी-दांत के गहने, सींग, सीप, पंख और फूलों से अपने कानों और बालों को सजाते थे। अब यह प्रथा धीरे-धीरे कम हो रही है। स्त्रियाँ सुंदर स्कर्ट पहनती हैं, और शाल का प्रयोग भी करती हैं। स्त्रियां और पुरुष गोदने-गुदवाने में बड़ा विश्वास करते हैं। यह काम बड़ा कलापूर्ण होता है। इनके शरीर के अलग-अलग भागों पर अलग-अलग तरह की डिज़ाइनें गुदी होती हैं- गर्दन, आँखों के पास, गले में, छाती पर तथा पीठ और पेट पर। गुदवाना व्यक्तिगत सजावट का अंग है। वांचो जीवन में इसका बड़ा महत्व है। लड़कियों की उम्र बढ़ने के साथ-साथ उनके शरीर की गोदने वाली सजावट बढ़ती जाती है। मुखिया परिवार के सदस्यों के शरीर पर तो यह सजावट देखते ही बनती है। इसी सजावट से कई बार यह पता चलता है कि वह मुखिया परिवार से संबंधित है। गोदने-गुदवाने का काम हर समय नहीं चलता; यह शुभ अवसरों पर, शुभ मुहूर्त में ही संपन्न होता है। इसमें बड़ी हिम्मत की आवश्यकता होती है, क्योंकि गोदने-गुदवाने में पीड़ा भी बहुत उठानी पड़ती है, जो किसी ऑपरेशन के दर्द से कम नहीं होती। चूँकि वांचो जाति के लोग बहादुर होते हैं, अतः यह कष्ट सहन करना उनकी मान्यता और आस्था का प्रतीक बन गया है। गोदने वालों को बड़े सम्मान से देखा जाता है। दक्षिण में उन्हें चावल, बीयर और मांस दिया जाता है।"[76]

वांचू लोगों में भी सिर काटने की प्रथा पहले के समय में थी। उन्हें दुश्मनों के सिर काटने के लिए योजना बनानी पड़ती थी। नोक्टे जनजाति और वांचू जनजाति पड़ोसी होने के नाते दोनों जनजातियाँ सिर काटने और काटने का काम करते थे। अब तो यह केवल पुस्तकों में पढ़ने को मिलता है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक से उद्धृत- "अपने पड़ोसी नोक्टे जाति के लोगों की भांति ही वांचू जाति के लोगों में भी शत्रु के सिर काटने की प्रथा थी। शत्रु के सिर को काटने के लिए मुहिम पर जाने के पूर्व शुभ घड़ी और उसके परिणाम पर विचार करके जाया जाता था। इस प्रकार वंशानुगत शत्रु-गाँव के लोगों के सिर काटकर लाना इस अभियान का उद्देश्य होता था। अभियान योजनाबद्ध तरीके से रात को पूर्ण किए जाते थे। शत्रु के कटे सिर लाना इन्हें अलौकिक शक्ति देता था और यह माना जाता था कि इससे खेती में पैदावार बढ़ती है। सिर काटने के अभियान के समय शत्रु पक्ष के सभी लोगों के सिर काट लिए जाते थे। मुखिया का सिर एक साधारण आदमी नहीं काट सकता था। जिसकी रक्त में राजसी खून होता था, वही व्यक्ति मुखिया का सिर काट सकता था। इस नियम का कठोरता से पालन होता था। इस नियम का दोषी आदमी जीवन भर बकरे, गाय और मुर्गी के मांस से वंचित रहना पड़ता था। उनके समाज में मान्यता थी कि यदि ऐसा दोषी व्यक्ति चोरी-छिपे इन तीनों प्रकार के मांस को खाएगा तो कोढ़ी हो जाएगा। सिर काटने का काम भी विधिवत होता था। अगर एक ही दुश्मन पर कई बहादुर मारने को एक साथ टूट पड़ते थे तो पहले वार करने वाले को सिर मिल जाता था। जो दूसरे नम्बर पर हमला करता, उसे दुश्मन का हाथ काटने का अधिकार होता था। तीसरे नम्बर पर हमला करने वाले को दुश्मन का हाथ और एक पैर काटने का अधिकार होता था। इस प्रकार कटे सिर, हाथ एवं पैर जीतने वालों की वेशभूषा के अंग बन जाते थे। जो सिर काटता था, उसे गले में पीतल या लकड़ी का बना सिर पहनने का अधिकार होता था। जो आदमी पहले ही सिर काट चुका होता था, वह उतने ही पीतल या लकड़ी के सिरों की माला पहन सकता था। हाथ काटने वाला आदमी अपनी व्यक्तिगत सुंदरता बढ़ाने के लिए लकड़ी का हाथ पहनता था। इसी

प्रकार तीसरे नंबर के हमलावर को लकड़ी का एक पैर अपनी टोकरी पर लगाने का अधिकार होता था। असली सिर, हाथ और पैर तो मोरुंगघर में रख दिए जाते थे। कट कर लाए गए सिर मुखिया के घर के पास लंबे बांसों पर लटका दिए जाते थे। जब कटे सिरों का मांस सड़-गल जाता था, तब उन्हें ठीक से साफ करके मोरुंगघर में रख दिया जाता था। मुखिया की खोपड़ी का एक अलग निशान बना दिया जाता था। सिर काटकर लाने के पांच दिन बाद, सिर लाने वालों के शरीर के अलग-अलग भागों पर गोदने का काम किया जाता था। यह काम गाँव के विशेषज्ञों द्वारा किया जाता था। उनके शरीर पर गोदी गई कलाकृतियां ही उनके विशेष बहादुर होने का संकेत करती थी। गोदने-गुदवाने के पश्चात ये बहादुर अपने-अपने घरों में एक दिन के लिए बंद हो जाते हैं और किसी से बात नहीं करते। फसल काटने के पश्चात वांचू कटे सिरों को भोजन अर्पण करने का उत्सव मनाते थे। गाँव का पुरोहित गम्पा कटे सिरों को चावल से बनी बीयर और अदरक के टुकड़े चढ़ाता है।''[77]

वांचू लोगों का अंतिम संस्कार अलग तरह का होता है- न जलाते हैं और न दफनाते हैं। बांस की लकड़ियों से घर बनाकर उसमें लाश को सड़ने और गलने के लिए छोड़ दिया जाता है। यह प्रथा पहले प्रचलित थी; आज के जमाने में यह नहीं चलती। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश में दिया गया है कि - ''वांचू लोग किसी के मर जाने पर उसके पार्थिव शरीर को चौबीस घंटे अपने ही घर पर रखते हैं। इस बीच सभी रिश्तेदार आ जाते हैं। इस अवसर पर एक खास किस्म का कफन बनाया जाता है। वांचू नियम बड़े ही निराले होते हैं। वे पार्थिव शरीर को न तो जलाते हैं और न गाड़ते हैं। एक छोटा-सा प्लेटफ़ॉर्म बनाकर उस पर छाया कर देते हैं। बाद में कफन में लिपटे पार्थिव शरीर को उसी पर रख देते हैं। एक लकड़ी या बांस की आकृति बनाकर पास में रख दी जाती है; यह आकृति मृतक की ही आकृति मानी जाती है। पास में एक बांस गाड़ दिया जाता है जिस पर मृतक की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ टाँग दी जाती हैं। उसके हथियार भी वहीं टाँग दिए जाते हैं। उनका विचार है कि दूसरी

दुनिया में उसे इन सब वस्तुओं की आवश्यकता रहेगी। एक माह बाद जब मांस गल-गल कर गिर जाता है, तब पार्थिव शरीर से सिर काटकर अलग कर लिया जाता है। उसे धोकर साफ कर लिया जाता है और लाल कपड़े में लपेटकर एक बड़े पत्थर के नीचे गड्ढे में रख दिया जाता है ताकि मरने के बाद भी उसका सिर सुरक्षित रहे।"[78] इस जनजाति का त्योहार है- ऑरियाह और ओजिएले, जो 5 फरवरी से शुरू होता है।

शेरतुकपेन जनजातिः

शेरतुकपेन जनजाति मेंहनती, आत्मनिर्भर, अतिथि-सत्कार में निपुण और अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजातियों में से एक है। असल में इस जनजाति का नाम शेरतुकपेन है, लेकिन एल्विन की किताब 'Democracy in NEFA' में गलत डॉक्युमेंटेशन के कारण आज भी इसे शेरदुकपेन के नाम से पुकारा या लिखा जाता रहा है।

इस जनजाति की जानकारी स्थानीय शेरतुकपेन लोगों से प्राप्त हुई है। ये लोग रूपा, जिगाँव, शेरगाँव आदि क्षेत्र में, कामेंग जिले में निवास करते हैं। इस जनजाति के पड़ोसी जनजाति मोंपा और सरतंग हैं। शेरतुकपेन जनजाति को नृत्य कला और नृत्य प्रेमी के नाम से जाना जाता है। वे लोग हिरण नृत्य, अजिलामु नृत्य तथा चील नृत्य में निपुण होते हैं। इस नृत्य को करते समय बहुत सारी कामनाएँ की जाती हैं, जैसे सभी घरों में खुशियाँ आएँ, खेती की फसल अच्छी उगे, तन-मन स्वस्थ रहे, घरों में बीमारियाँ न आएँ, भगवान भी खुश रहें, घरों के पशु-पक्षी भी सही रहें आदि की प्रार्थना की जाती है। 'हमारा अरुणाचल प्रदेश' पुस्तक से उद्धृतः- "इनके हिरण-नृत्य (Dear Dance), अजिलामु नृत्य

तथा चील-नृत्य (Eagle Dance) बड़े ही निराले होते हैं। ये नृत्य मन को मोह लेते हैं। समय-समय पर आयोजित होने वाले ये नृत्य उनके जीवन में खुशियाँ भर देते हैं।"[79]

"The Sherdukpen are a very small tribe of only about 1,200 individuals, who are distributed in two main villages, Rupa and Shergaon, lying in a valley of entrancing beauty in the lower mountains of the Kameng Frontier Division. Their councils, which are reported to be working well, are called Jung. They consist of the thik akhao (the village headman), the jung me (the ordinary members of the council), a kachung or courier, and a chowkidar."[80]

इतिहास की किताब 'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' में शेरतुकपेन की कहानी बताई गई है कि वे लोग उत्तर-पश्चिम से आए थे और भूटान से संपर्क रखते थे। तिब्बत के राजकुमार ने असम की राजकुमारी से शादी की, जिससे तीन बेटे पैदा हुए- एक ल्हासा में रहा, दूसरा भूटान में और तीसरा शेरतुकपेन क्षेत्र में। 'अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास' पुस्तक से उद्धृत: - "शेरदुकपेन की प्रचलित मान्यताओं से हमें ज्ञात होता है कि इस जनजाति के लोग मूल रूप से उत्तर-पश्चिम से आए थे और उनके भूटान के साथ निकट संबंध थे। वे बताते हैं कि एक बार तिब्बत के एक राजकुमार ने असम की एक राजकुमारी से विवाह किया था। राजकुमारी से तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें से प्रथम ल्हासा में रह गया था, दूसरे पुत्र को भूटान का राज्य दिया गया और तीसरे पुत्र को वह क्षेत्र दिया गया था जिसमें आज शेरतुकपेन जनजाति निवास करती है। वर्तमान शेरतुकपेन उसी तीसरे पुत्र के वंशज माने जाते हैं। शेरदुकपेनों का कहना है कि तिब्बत के राजा ने अपने तीसरे पुत्र को, युद्धप्रिय आका जनजाति द्वारा किए जाने वाले उत्पात और लूट को रोकने के लिए इस क्षेत्र में भेजा था। यहाँ आकर उस तीसरे पुत्र ने निर्णय लिया कि यहाँ की पहाड़ी जनजातियों को संतुष्ट रखा जाए।

इसके लिए उसने प्रत्येक तीसरे वर्ष गायों का उपहार देने का प्रावधान किया। उपहार देने की परंपरा का निर्वाह उनके वंशजों द्वारा तब तक किया जाता रहा, जब तक ब्रिटिश सरकार द्वारा उस पर रोक नहीं लगा दी गई थी। आज भी तिब्बत के राजा के तीसरे पुत्र के वंशजों को, पड़ोसी वंशज और पड़ोसी जनजातियाँ 'राजा' कहकर पुकारती हैं। दिरांग के लोग उन्हें 'बापू' कहते हैं, आका और मिजी जनजाति उन्हें 'थोंगली' या 'थोंगचेंग'- अर्थात राजा कहते हैं।"[81]

सारतंग जनजाति:

यह जनजाति पश्चिमी कामेंग जिले में बसी है। यह जनजाति खोवा बोली बोलती है। इस जनजाति की आबादी, विकिपीडिया के अनुसार, लगभग 3000-4000 है। यह जनजाति तंग त्योहार मनाती है। यह जनजाति बौद्ध धर्म को मानती है। इसे मोनपा जनजाति की उप-जनजाति माना जाता है। इस जनजाति के बारे में सही जानकारी उपलब्ध नहीं है और यह समय-समय पर बदलती रहती है। इस जनजाति पर प्रमाण के साथ लिखा गया कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है। गूगल पर भी इसकी थोड़ी-सी ही जानकारी मिलती है।

सिंगफो जनजाति:

सिंगफो जनजाति का अपनी भाषा में पहला अर्थ होता है "मनुष्य" और दूसरा अर्थ होता है "मानव सिर का अवरोधक।" 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य' में लिखा है कि –"इनकी भाषा में 'सिंगफो' का अर्थ 'मनुष्य' है। सिंगफो परंपरा के अनुसार इनका मूल निवास स्थान 'हुकांग' घाटी था। 'हुकांग' स्वयं एक सिंगफो शब्द है, जिसका अर्थ है 'मानव सिर का अवरोधक'।"[82]

सिंगफो जनजाति का क्षेत्र है- खेरेम बीसा, इंशा, इननाओ, खारसंग सिंगफो आदि। ये अरुणाचल प्रदेश के चांगलांग, नमसाई, तिराप और लोहित जिलों में रहते हैं। इसके अलावा असम राज्य में भी ये लोग पाए जाते हैं, जैसे खामुक, लेवाङ और फूप क्षेत्र में। 'अरुणाचल प्रदेश लोक जीवन और संस्कृति' पुस्तक से उद्धृत: "ऐसा विश्वास है कि सिंगफो लोगों का संबंध ऊपरी बर्मा (अब म्यांमार) के कचिन से है। म्यांमार से देशांतरित होकर जब ये लोग ब्रह्मपुत्र घाटी में बस गए, उसके बाद से उन्हें सिंगफो कहा जाने लगा।"[83]

सिंगफो जनजाति की नदियाँ नोआ और दिहिंग हैं। यहाँ भी पितृसत्तात्मक समाज है। यह जनजाति पाँच वर्गों में बटी है- तेसन, मिरिप, लोफे, मेंरिंग और लुतौंग। सिंगफो जनजाति पानी/स्थायी खेती अपनाते हैं। जंगल को काटकर साफ करने के बाद भैंस और बैल की मदद से हल जोतकर बीज बोया जाता है, जिसमें धान लगाया जाता है। साथ ही सरसों, आलू, गोभी, भिंडी, टमाटर, मिर्च, मक्का, अदरक, लाई पत्ता, पालक, करेला, प्याज, लहसुन, बीन्स, लौकी, ककड़ी, बैगन आदि खेतों में उगाए जाते हैं। सिंगफो जनजाति लुहारी का काम भी करते हैं, जहाँ दाव बनाया जाता है। 'अरुणाचल प्रदेश लोक जीवन और संस्कृति' पुस्तक से उद्धृत: "इस समुदाय के पांच मुख्य वर्ग हैं- तेसन, मिरिप, लोफे, लुतौंग और मेंरिंग। उनका मुख्य पेशा कृषि है। यह समुदाय स्थायी खेती करता है। वे लोग अपने परंपरागत हल से खेतों की जुताई करते हैं। बैल और भैंसों से हल जोता जाता है। मानसून आरंभ होने से पहले ही खेतों की जुताई समाप्त हो जाती है। धान उनके मुख्य फसल है। मक्का, आलू, सरसों आदि उनके अन्य प्रमुख फसलें हैं। इनके पास धान की अनेक किस्में हैं। अन्य जातियों की अपेक्षा इनके कृषि औजार अधिक उन्नत हैं। वे लोग धान की आर्द्र और सुखी दोनों प्रकार की खेती करते हैं। सिंगफो लोग लुहारी के काम में अत्यंत दक्ष हैं। इनके द्वारा निर्मित दाव इस क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध है।"[84] चावल इस जनजाति का मुख्य भोजन है ,उबली मछली, जंगली

सब्जियां और कंद-मूल, बांस के कोपल की सब्जी, केले के फूल की सब्जी आदि भी उन्हें बहुत प्रिय है। ये लोग सूखे मांस में मिर्च, नमक और अदरक मिलाकर इस प्रकार संरक्षित करते हैं कि वह सात-आठ महीने तक खराब नहीं होता। चावल से निर्मित मदिरा इनकी प्रमुख पेय है। "सिंगफो भाषा में पिता को 'अवा' तथा माँ को 'अनु' अथवा 'अनी' कहा जाता है।"[85] सिंगफो भाषा और मिजो भाषा में थोड़ी समानताएँ देख भाषा में भी माँ को 'आनु' और पिता को 'आवा' पुकारते हैं। 12-15 फरवरी को सिंगफो जनजाति 'शापवंग यवंग मनौ पोई' त्यौहार मनाती है।

अंत में, नाह, सारतंग, योबीन और जाखरींग जनजातियों के संबंध में विद्यमान मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि ये उप-जनजातियाँ हैं, जबकि अन्य का मत है कि ये प्रमुख जनजातियों में सम्मिलित हो गई हैं। इन दावों के समर्थन में पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, और इस प्रकार, इन जनजातियों पर व्यवस्थित और विस्तृत शोध की आवश्यकता है। अरुणाचल प्रदेश में जनजातियों के निवास क्षेत्र कितना विस्तृत और पृथक हैं कि प्रत्यक्ष जानकारी एकत्रित करना कठिन है। जनजातियों का आकार और उनकी सीमाएँ समय-समय पर परिवर्तित होती रहती हैं। इस कारण यह निर्धारित करना कठिन है कि कौन सी जनजाति प्रमुख है और कौन सी उप-जनजाति। भाषाई विविधता भी इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण बाधा उत्पन्न करती है, क्योंकि विभिन्न जनजातियों के बीच संवाद करना चुनौतीपूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त, जब प्रत्यक्ष संपर्क भी स्थापित हो जाता है, तब भी जानकारी प्रदान करने में जनजातियाँ अक्सर झिझकती हैं।

सारांशतः, अरुणाचल प्रदेश एक बहु-जनजातीय और बहुभाषी क्षेत्र है। यहाँ विभिन्न बोलियाँ प्रचलित हैं, और सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता इतनी अधिक है कि कभी-कभी यह देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि क्षेत्र के निवासियों का उद्गम और उनके इतिहास पर विदेशी प्रभाव भी रहा होगा। क्षेत्र इतना बड़ा है कि कई बार किसी जनजाति का अपना परिचय देने पर भी ऐसा

प्रतीत होता है कि यह नाम पहली बार सुना जा रहा है। गांव और क्षेत्र का नाम बताने पर भी स्पष्ट जानकारी प्राप्त करना कठिन होता है। बाइस या छब्बीस प्रमुख जनजातियों की उप-जनजातियाँ सौ से भी अधिक हैं।

उप-जनजातियों के नाम इस प्रकार हैं:

- आदी से: बोरी, बोकार, पासी, पादाम, मिनयोंग, पंगगिस, शिमोंग्स, आशिङ्ग्स आदि।
- तागीन से: डुलोम, दुचोक, मोसिंग-मोसु, तामीन, लेयू, नतम-ज्ञादु, नाह, ज्ञामा आदि।
- अन्य उप-जनजातियाँ: चुंगपा, लुङ्ग्चांग, मुक्लोम, तिखाक, जुगली, मोस्सांग आदि। इन प्रमुख जनजातियों की उप-जनजातियों की संख्या सौ से अधिक है।

इस अध्याय का प्रथम कार्य अरुणाचल प्रदेश का परिचय देना और इसके बारे में विद्वानों की राय को प्रस्तुत करना है ताकि अरुणाचल प्रदेश की एक स्पष्ट समझ बन पाए। द्वितीय कार्य के अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों का परिचय दिया गया है। सबसे पहले, जनजातियों में निशि का नाम लिया गया है, जो आबादी में सबसे अधिक हैं। हिलस मिरी जनजाति भी अब निशि के अंतर्गत आती है और अपने आप को निशि ही मानती है। दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाली जनजाति आदी है, जिसके कई उप-जनजातियाँ हैं। इन्हीं उप-जनजातियों में से कोई एक भविष्य में मुख्य जनजाति के रूप में भी मानी जा सकती है। तीसरे स्थान पर तागिन, चौथे पर गालो, और पांचवें स्थान पर आपातानी जनजाति है। छठा स्थान पर पुरोईक है, ये छः जनजातियाँ आबो तानी की वंशज मानी जाती हैं। शेष जनजातियों को वर्णमाला के क्रम में प्रस्तुत किया गया है।

भाषा के विषय में हिंदी भाषी लोग कभी-कभी अरुणाचल प्रदेश की भाषाओं को चीन या तिब्बत की भाषाओं से जोड़कर देखते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि अरुणाचल प्रदेश की

जनजातियों की भाषाएँ चीनी या तिब्बती भाषाओं से मेंल नहीं खातीं। इसी विषय पर रमण जी ने भी विस्तार से 'अपरिचय का हिमालय और अरुणाचली भाषाएँ' में लिखा है। "अरुणाचल प्रदेश की भाषाओं और बोलियों को आज तक मंगोलॉयड श्रेणी में डालकर एक व्यापक असत्य प्रचारित किया गया है। अरुणाचल प्रदेश में वर्षों से निवास करने और यहाँ की भाषाओं एवं बोलियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि अरुणाचली भाषाओं और बोलियों का चीनी भाषा से कोई निकट संबंध नहीं है। डॉ. लोहिया ने इस विषय पर लोकसभा में प्रश्न उठाए थे। यहाँ चीनी भाषा और अरुणाचली भाषाओं के बीच समानता और भिन्नता को एक तालिका के माध्यम से स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। उदाहरण स्वरूप अंकों की गिनती:

हिंदी	चीनी	मोन्पा	न्यिशी	गालो
एक	इ	चिक	आकिङ	आकेन
दो	अल	ज्ञि	आन्यि	आन्यि
तीन	सान	शुभ	अओम	आउम
चार	स्य	शी	आपि	आप्पी

इसके अतिरिक्त, अरुणाचल प्रदेश की गालो और न्यिशी भाषाओं के कुछ शब्द संस्कृत से इतने समान हैं कि उनके शब्द संरचना और ध्वनि को देखकर अत्यंत आश्चर्य होता है।"[86]

निष्कर्ष:

अरुणाचल प्रदेश, जिसे प्राचीन रूप से उत्तर-पूर्व सीमांत एजेंसी (NEFA) और इसके पूर्ववर्ती नामों- नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर एरिया, नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर ट्रैक्ट्स तथा नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी-से जाना जाता था, भारत का 24वाँ राज्य है। 20 फरवरी 1987 को इसे पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ।

यह राज्य उत्तर-पूर्व भारत के भौगोलिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में अत्यंत विशिष्ट स्थान रखता है, जिसकी पहचान कई तत्वों के सम्मिलन से बनी है।

भौगोलिक दृष्टि से, अरुणाचल प्रदेश उत्तरी हिमालय और पटकाई पर्वतमाला पर स्थित है, और इसकी सीमाएँ भूटान (पश्चिम), म्यांमार (पूर्व), तिब्बत (उत्तर) और असम (दक्षिण) से मिलती है। इसकी दुर्गम स्थलाकृति और प्राकृतिक सीमाओं के कारण यह क्षेत्र ऐतिहासिक रूप से बाहरी लोगों से अपरिचित रहा, जिसे सन् 1826 तक केवल असम के मैदानी लोग ही जानते थे। राज्य का कुल क्षेत्रफल 83,743 वर्ग किलोमीटर है और इसमें वर्तमान में 28 जिले हैं।

अरुणाचल प्रदेश का सामाजिक-भौगोलिक स्वरूप बहुजातीय और बहुभाषीय है। यहाँ 26 से अधिक जनजातियां निवास करती हैं, जैसे मोनपा, आदी, गालो, निशी, तागिन, आपातानी, शेरतुकपेन , मीजि, आका, वाङचो, नोक्टे, खामति, तंग्सा, इदु मिश्मी, मिजू मिश्मी, दिगारू मिश्मी, मेंम्बा, खम्बा आदि। इन जनजातियों की सांस्कृतिक विविधता राज्य की पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा है। “अनेकता में एकता” और “उगते सूरज की भूमि” की अवधारणा अरुणाचल प्रदेश की विशिष्ट पहचान को परिभाषित करती है।

इतिहास और प्रशासनिक विकास के दृष्टिकोण से, अरुणाचल प्रदेश ने 1873 से अंग्रेजी शासन के दौरान अलग-थलग स्थिति में रहते हुए मुक्त आवाजाही का अनुभव किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह NEFA का हिस्सा रहा। 1962 में चीन के आक्रमण और उसके पश्चात भारतीय सरकार द्वारा प्रशासनिक पुनर्गठन ने राज्य की नीतिगत और सामरिक महत्व को उभारा। इस ऐतिहासिक और प्रशासनिक विकास ने राज्य को भौगोलिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बना दिया।

साहित्य और भाषा की दृष्टि से भी अरुणाचल प्रदेश विविधता का प्रतीक है। यहाँ के साहित्यिक अभिलेख असमिया, अंग्रेजी और हिंदी में उपलब्ध हैं, जो राज्य की बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक पहचान को दर्शाते हैं। स्थानीय लेखकों ने अपनी सांस्कृतिक कहानियों और जनजातीय जीवन को विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त किया, जिससे राज्य के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की व्यापक समझ प्राप्त होती है।

पर्यटन और प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश अत्यंत समृद्ध है। तवांग, बोमदिला, नमसाई, तेज़ू, जीरो, सेपा, ईटानगर आदि स्थल राज्य की प्राकृतिक सुंदरता और सांस्कृतिक विविधता के प्रमुख उदाहरण हैं। यहाँ के सदाबहार पर्वत, वनाच्छादित क्षेत्र, विविध वन्य जीव, और बहुरंगी जनजातीय संस्कृति राज्य को देश और विश्व स्तर पर विशिष्ट बनाती है।

अरुणाचल प्रदेश की पहचान एक सीमांत-भूभाग के रूप में भौगोलिक दुर्गमता, ऐतिहासिक-प्रशासनिक परिवर्तनों और बहुजातीय/बहुभाषीय सामाजिक संरचना के सम्मिलन से निर्मित हुई है। राज्य का साहित्य, भाषाई विकल्प और सांस्कृतिक विविधता इस निर्माण की अभिव्यक्ति हैं। प्राकृतिक सौंदर्य, जनजातीय विविधता, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और रणनीतिक महत्व- इन सभी का समग्र विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि अरुणाचल प्रदेश न केवल भारत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र में महत्वपूर्ण है, बल्कि यह बहुस्तरीय अध्ययन के लिए एक आदर्श क्षेत्र भी है।

संदर्भ सूची:

---

[1] Yeshe Dorjee Thongchi, Lummer Dai, p. 7

[2] दिनकर कुमार, एक दृष्टि में अरुणाचल प्रदेश, पृ. 4

[3] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 9

[4] वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश: लोकजीवन और संस्कृति, पृ. 1

[5] वीरेंद्र परमार, पूर्वोत्तर भारत के पर्व-त्योहार, पृ-34

[6] सं. नंदकिशोर पांडेय और हरीश कुमार शर्मा, अरुणाचल प्रदेश की लोक कथाएँ, पृ. 9-10

[7] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. IX

[8] जुमसी सिराम 'निनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 5

[9] डॉ. संजीव मंडल, हिंदी कथा-साहित्य में पूर्वोत्तर भारत, पृ. 7

[10] Dr. Verrier Elwin, A Philosophy for North East Frontier Agency, p. 18

[11] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ. 27

[12] वही, पृ. 28-29

[13] वही, पृ. 28

[14] एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवाद: सच्चिदानंद चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, पृ. 36

[15] वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश: लोकजीवन और संस्कृति, पृ. 99

[16] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ. 37-40

[17] वही, पृ. 37

[18] एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवादक: सच्चिदानंद चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, पृ. 31

[19] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ. 37-38

[20] वही, पृ. 38

[21] वही, पृ- 40-41

[22] वही, पृ- 41

[23] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ-14

[24] वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश: लोकजीवन और संस्कृति, पृ. 100

[25] Verrier Elwin, DEMOCRACY IN NEFA, p.-81-82

[26] एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवादक: सच्चिदानंद चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, पृ. 28-29

[27] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ-60-61

[28] डॉ. जमुना बीनी, अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ, पृ-114

[29] वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश लोकजीवन और संस्कृति, पृ. 139-140

[30] वही, पृ. 170-171

[31] एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवादक: सच्चिदानंद चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, पृ-9

[32] Dr. Verrier Elwin, A Philosophy for North East Frontier Agency, p-40

[33] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ-22

[34] Verrier Elwin, DEMOCRACY IN NEFA, p. 135

[35] वही, p. 159

[36] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ-23

[37] वही, पृ-23

[38] वही, पृ-23

[39] https://en.wikipedia.org/wiki/Khamba_people 12-10-2024, time -2:30 pm को देखा गया।

[40] Ed. Bibhas Dhar & Palash Chandra Coomar, TRIBES OF ARUNACHAL PRADESH HISOTRY AND CULTURE, p. 8

[41] अरुणाचल प्रदेश राज्य संग्रहालय में प्रदर्शित सूचना पट्टिका से उद्धृत

[42] वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश: लोकजीवन और संस्कृति, पृ.146

[43] डॉ. वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, पृ. 109

[44] वही, पृ.112

[45] वही, पृ-131

[46] एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवादक: सच्चिदानंद चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, पृ-16-17

[47] Mridul Kumar Chakraborty, Space and Culture, India, 2015, Date - 15-10-2024, Time - 3:02 PM को देखा गया।

[48] अरुणाचल प्रदेश राज्य संग्रहालय में प्रदर्शित सूचना पट्टिका से उद्धृत

[49] वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश: लोकजीवन और संस्कृति, पृ-166

[50] वही, पृ-166-167

[51] वही, पृ-168-169

[52] एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवादक: सच्चिदानंद चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, पृ-55

[53] वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश: लोकजीवन और संस्कृति, पृ-171

[54] वही, पृ-172

[55] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ-58-59

[56] डॉ. वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, पृ-124

[57] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ-8-10

[58] वही, पृ-8-10

[59] वही, पृ-8

[60] वही, पृ-10

[61] वही, पृ-11-12

[62] Varrier Elwin, DEMOCRACY IN NEFA, p.170-171

[63] वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश: लोकजीवन और संस्कृति, पृ-161

[64] Arunachal Living Heritage.com, 10-10-2024, Time - 2:12 PM को देखा गया।

[65] Ed. Bibhas Dhar, Palash Chandra Coomar, TRIBES OF ARUNACHAL PRADESH HISOTRY AND CULTURE, p. 8

[66] दीन दयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ-47

[67] Varrier Elwin, DEMOCRACY IN NEFA, p.56

[68] दीन दयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ-49

[69] वही, पृ-49-51

[70] वही, पृ-51

[71] वही, पृ-52 -53

[72] एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवाद: सच्चिदानंद चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, पृ-25

[73] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ-52

[74] अरुणाचल प्रदेश राज्य संग्रहालय में प्रदर्शित सूचना पट्टिका से उद्धृत

[75] दीनदयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल प्रदेश, पृ-13

[76] वही, पृ-15

[77] वही, पृ-15-16

[78] वही, पृ-19

[79] वही, पृ-46

[80] Varrier Elwin, DEMOCRACY IN NEFA, p-67

[81] एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवाद: सच्चिदानंद चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, पृ-5-6

[82] डॉ. वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, पृ-118

[83] वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश: लोकजीवन और संस्कृति, पृ-155

[84] वही, पृ-156

[85] वही, पृ-157

[86] सं. डॉ. रमण शांडिल्य, डॉ. वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश: अतीत से वर्तमान तक, पृ- 56

द्वितीय अध्याय

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा

(क) अरुणाचल प्रदेश के हिन्दी उपन्यासकार: सामान्य परिचय

(ख) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास: सामान्य परिचय

द्वितीय अध्याय

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा

हिन्दी उपन्यास को हम एक गद्य साहित्य की प्रमुख विधा के रूप में समझ सकते हैं। यह विधा कहानी से लंबी एक कथा होती है, जिसमें पात्रों का जीवन, उनका चरित्र-चित्रण, समाज की घटनाएं, इतिहास, संस्कृति और राजनीति आदि का समावेश होता है। 'हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1)' के अनुसार उपन्यास शब्द का शाब्दिक अर्थ है- 'उप' अर्थात पास और 'न्याय' अर्थात रखना। अर्थात् उपन्यास वह साहित्यिक रूप है जो पाठक के जीवन और समाज की सच्चाइयों को उसके निकट लाकर प्रस्तुत करता है। उपन्यास की विशेषता यह है कि इसमें जीवन के विविध पक्षों का समावेश होता है- पात्रों से लेकर उनके चरित्र, परिस्थितियों और अनेक घटनाक्रमों तक सब कुछ एक सूत्र में बंधा हुआ दिखाई देता है। नीचे कुछ विद्वानों द्वारा दी गई उपन्यास की परिभाषाएँ प्रस्तुत हैं-

प्रो. गोपाल राय ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखा है- "उपन्यास पर्याप्त आकार की वह मौलिक गद्य कथा है जो पाठक को एक काल्पनिक, परन्तु यथार्थ संसार में ले जाती है, जो लेखक द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुभूत और सर्जित होने के कारण नवीन होता है।"[1]

उपन्यास के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए प्रो. गोपाल राय ने 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' में आगे लिखा है- "उपन्यास किसी समस्या को लेखकीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का माध्यम मात्र

नहीं है, बल्कि यह एक जटिल रचना-संसार है जहाँ ज़िन्दगी अपने संश्लिष्ट और गहन रूप में रूपायित होती है।"[2]

डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1)' में उपन्यास के शाब्दिक अर्थ की व्याख्या करते हुए लिखा है- "उपन्यास शब्द 'उप' (समीप) और 'न्याय' (थाती) के योग से बना है, जिसका अर्थ हुआ- मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु। अर्थात वह कृति जिसे पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे जीवन का प्रतिबिंब है, हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है।"[3]

हिन्दी साहित्य के यथार्थवादी उपन्यासकार प्रेमचंद ने उपन्यास को परिभाषित करते हुए कहा है- "मैं उपन्यास को मानव-जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[4]

हिन्दी उपन्यास की परंपरा मूल रूप से उसके विकास की यात्रा है- यह समझने की प्रक्रिया कि उपन्यास का आरंभ कब और कैसे हुआ, वह किन-किन चरणों से गुज़रता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुँचा। इसी प्रकार अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा की भी एक विशिष्ट विकास यात्रा रही है।

अरुणाचल प्रदेश के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि यह भारत का सातवां राज्य है। यहाँ अनेक जनजातियां निवास करती हैं, और इनकी संपर्क भाषा हिन्दी है। हिन्दी भाषा यहाँ के विभिन्न जनजातीय समुदायों के बीच संवाद का माध्यम है। यही कारण है कि अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी साहित्य को लेकर लोगों में पढ़ने और लिखने की गहरी रुचि पाई जाती है। यदि अरुणाचल प्रदेश की हिन्दी उपन्यास परंपरा की बात की जाए, तो जुमसी सिराम 'निनो' को पहला हिन्दी उपन्यासकार

माना जाता है, जिन्होंने हिन्दी में सृजनात्मक लेखन का कार्य प्रारंभ किया। हालांकि, उनसे पहले दो महान साहित्यकार- स्वर्गीय लुम्मेर दाई और येसे दोरजे थोंगछी- असमिया भाषा में उपन्यास लेखन करते थे।

स्वर्गीय लुम्मेर दाई को अरुणाचल प्रदेश का पहला उपन्यासकार माना जाता है। उन्होंने असमिया भाषा में कई प्रसिद्ध उपन्यास लिखे, जैसे —

- पहारोंर हिले हिले (1960)
- पृथ्वीर हाँही (1963)
- मौन अरु मौन (1968)
- कन्या मूल्य (1978)
- ऊपर महल (2002)

येसे दोरजे थोंगछी अरुणाचल प्रदेश के एक और वरिष्ठ एवं सम्मानित उपन्यासकार हैं, जो अंग्रेजी और असमिया दोनों भाषाओं में लेखन करते हैं। उन्होंने स्वर्गीय लुम्मेर दाई के उपन्यास 'मौन अरु मौन' उपन्यास का अंग्रेज़ी अनुवाद 'Heart to Heart' शीर्षक से किया।

साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख साहित्यकारों में क्रमशः -

1. स्वर्गीय लुम्मेर दाई
2. येसे दोरजे थोंगछी
3. मामंग दाई
4. जुमसी सिराम 'निनो' का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

हिन्दी उपन्यास लेखन की परंपरा अरुणाचल प्रदेश में जुमसी सिराम 'निनो' से आरंभ होकर आगे डॉ. जोराम यालाम नाबाम, डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', डॉ. मोर्जुम लोयी जैसे लेखकों तक विस्तारित हुई है। इनके अतिरिक्त डॉ. जमुना बीनी, डॉ. जोराम अनिया, ताई तुगुंग, तारों सिंदे आदि साहित्यकार हिन्दी में कहानी, नाटक, लोककथा, संस्मरण, आत्मकथा और कविता जैसी विधाओं में सक्रिय हैं तथा अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी लेखन और पठन को निरंतर बढ़ावा दे रहे हैं।

क . अरुणाचल प्रदेश के हिन्दी उपन्यासकार: सामान्य परिचय

अरुणाचल प्रदेश के प्राचीन काल में वहाँ की जनजातियों के पास कोई लिखित साहित्यिक परंपरा नहीं थी। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशिष्ट भाषा और बोली थी, जिसके कारण वे अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को मौखिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित रखते थे। लोकगीत, लोक कथाएँ, मिथक और जनश्रुतियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में ही प्रचलित रहीं।

अरुणाचल प्रदेश में उपन्यास लेखन का आरंभ स्वर्गीय लुम्मेर दाई के उपन्यास 'पहारोंर हिले हिले' (1960) से माना जाता है। सन् 1960 के दशक में अरुणाचल प्रदेश में पड़ोसी राज्य असमिया साहित्य का गहरा प्रभाव देखने को मिला। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय अरुणाचल प्रदेश को नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी (NEFA) के नाम से जाना जाता था और वहाँ की शिक्षा प्रणाली असमिया भाषा के अधीन थी। बाद में सन् 1972 के बाद अरुणाचल प्रदेश में अंग्रेजी और हिन्दी माध्यम में शिक्षा का आरंभ हुआ। इसके साथ ही हिन्दी और अँग्रेज़ी भाषा में विभिन्न साहित्यिक विधाओं - जैसे कहानी, कविता, नाटक, संस्मरण और उपन्यास- में लेखन का विकास शुरू हुआ। इससे पहले तक स्वर्गीय लुम्मेर दाई और येसे दोरजे थोंगछी जैसे लेखक असमिया भाषा में सृजनात्मक लेखन करते थे। परंतु जब हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ा, तब अरुणाचल प्रदेश के हिन्दी उपन्यास लेखन की परंपरा का आरंभ जुमसी सिराम 'निनो' से माना गया।

नीचे अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख हिन्दी उपन्यासकारों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है-

स्वर्गीय लुम्मेर दाई : 1 जून 1940 को अरुणाचल प्रदेश के पूर्व सियांग जिले के सिलुक गाँव में स्वर्गीय लुम्मेर दाई का जन्म हुआ। उनकी माता का नाम कोमसक दाई और पिता का नाम जोबु दाई था। उनके दो भाई और एक बहन थी, और वे घर की सबसे छोटी संतान थे। स्वर्गीय लुम्मेर दाई की जन्मतिथि को लेकर येसे दोरजे थोंगछी जी ने अपनी पुस्तक 'लुम्मेर दाई' में लिखा है-

"स्कूल रिकॉर्ड के अनुसार लुम्मेर दाई का जन्म 1 जून 1940 को सिलुक गाँव में हुआ था, हालांकि उनकी सही जन्मतिथि ज्ञात नहीं थी- यहाँ तक कि उन्हें भी नहीं, क्योंकि नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी के आदिवासियों के पास जन्म और मृत्यु का रिकॉर्ड रखने की कोई व्यवस्था नहीं थी।"[5]

लुम्मेर दाई के बारे में थोंगछी जी ने यह भी लिखा है कि उनका असली नाम लुम्मेर नहीं था। उनके माता-पिता द्वारा रखा गया वास्तविक नाम न्गोमसोम था। घर में पिता उन्हें प्यार से सोम पुकारते थे, जबकि माता प्रेम से बदाँग कहती थी। लुम्मेर का चाचा स्कूल में उनका नाम न्गोमसन के रूप में दर्ज कराना चाहता था, लेकिन शिक्षक ने गलती से न्गोमसन के बजाय लुम्मेर लिख दिया। इसके बाद वे अपने मित्रों के बीच लुम्मेर नाम से ही जाने जाने लगे। आदी जनजाति की भाषा में लुम्मेर का अर्थ होता है- पंख, जो आदी जनजाति के योद्धाओं के सिर की सजावट का एक टुकड़ा होता है।

लुम्मेर दाई की पहली रचना थी- 'अबोरार रोग नुगुसे कियो (अबोरों के बीच बीमारी से कोई राहत क्यों नहीं है)'। यह रचना पहली बार साठ के दशक के अंत में पासीघाट सरकारी हाई स्कूल की हस्तलिखित स्कूल पत्रिका 'गिरीबानी' में प्रकाशित हुई।

उन्होंने अप्रैल 1948 में सीलुक ग्राम स्कूल में पहली बार प्रवेश लिया। इसके बाद सन् 1959 में पासीघाट सरकारी हाई स्कूल से मैट्रिक पास किया। मैट्रिक के बाद उन्होंने सेंट एडमंड्स कॉलेज, शिलांग में बी.ए. में दाखिला लिया। स्नातक होने के बाद उन्होंने गुवाहाटी विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विषय से स्नातकोत्तर कक्षा में प्रवेश लिया, किंतु अपनी पढ़ाई पूरी किए बिना एक वर्ष बाद विश्वविद्यालय छोड़ दिया।

सन् 1969 में वे ऑल इंडिया रेडियो स्टेशन, डिब्रूगढ़ में आदी कार्यक्रम के अनुवादक सह उद्घोषक के रूप में कार्यरत हुए। सन् 1972 में उन्होंने राजस्थान के वनस्थली कन्या विद्यापीठ से शिक्षा प्राप्त कुमारी नानी पनयांग से विवाह किया, जो नेफ़ा की प्रथम शिक्षित लड़कियों में से एक थीं। सन् 1973 में लुम्मेर जी बोमडिला (कामेंग जिला) में जनसंपर्क एवं सूचना अधिकारी के रूप में नियुक्त हुए। तीन वर्ष का कार्यकाल पूरा होने के बाद उन्हें सियांग जिले में पदस्थापित किया गया। वहीं सेवा करते हुए उन्होंने अपना सर्वाधिक विवादास्पद उपन्यास 'कन्या मूल्य' लिखा। इस उपन्यास के लिए उन्हें प्रशंसा के साथ-साथ प्रतिकूल आलोचना भी मिली, क्योंकि इसमें क्षेत्र के कई जनजातियों में प्रचलित दुल्हन की कीमत से संबंधित एक संवेदनशील सामाजिक मुद्दे को उठाया गया था। इसके पश्चात सन् 1979 में उन्हें सहायक निदेशक, सन् 1981 में उप-निदेशक, और अंततः दो वर्ष बाद सन् 1983 में उसी विभाग में निदेशक के पद पर पदोन्नत किया गया, जहाँ उन्होंने सन् 1998 में अपनी सेवानिवृत्ति तक समर्पित भाव से कार्य किया।

लुम्मेर दाई ने अपने अंतिम उपन्यास 'ओपोर महल (उच्च स्थान)' को लिखने के लिए कलम और कागज़ उठाया, किंतु दुर्भाग्य से वे इस उपन्यास को पुस्तक के रूप में देख नहीं पाए और 5 अप्रैल 2004 को गुवाहाटी में संक्षिप्त बीमारी के बाद उनका निधन हो गया। यह उपन्यास उनकी मृत्यु के दो दिन बाद प्रकाशित हुआ।

थोंगछी जी ने अपनी पुस्तक 'लुम्मेर दाई' में लिखा है - "लुम्मेर दाई इस अर्थ में एक विपुल लेखक नहीं थे कि उन्होंने बहुत अधिक पुस्तकें नहीं लिखी, और वास्तव में उन्होंने 1975-76 में अपना चौथा उपन्यास लिखने के बाद से लेकर 2002 में अपने अंतिम सांस लेने से पहले तक लिखना बंद कर दिया था, जब उन्होंने अपना अंतिम उपन्यास 'ऊपर महल' लिखा था। लेकिन इतना लिखकर उन्होंने असमिया साहित्य के इतिहास में एक नया अध्याय रच दिया, क्योंकि वे अरुणाचल प्रदेश राज्य के पहले लेखक थे जिन्होंने अपने अत्यंत पिछड़े राज्य में लेखन का बीड़ा उठाया- जहाँ साहित्य लोगों के लिए पूरी तरह से अज्ञात था। वे आदिवासी समुदाय से कथा-लेखन करने वाले पहले लेखक भी थे, क्योंकि उनसे पहले किसी भी आदिवासी लेखक ने कविताओं, लोककथाओं और लेखों के अतिरिक्त उपन्यास या लघुकथाएँ नहीं लिखी थीं। वे अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में लिखने वाले पहले लेखक भी थे।"[6]

लुम्मेर दाई को अरुणाचल प्रदेश का समाज सुधारक भी माना जाता है। भले ही उन्होंने लेखन कार्य असमिया भाषा में किया हो, परंतु उन्हीं से अरुणाचल प्रदेश में सृजनात्मक लेखन और साहित्यिक परंपरा की शुरुआत हुई। उनके समय में अरुणाचल प्रदेश में हिंदी अध्ययन-अध्यापन का विशेष विकास नहीं हुआ था, जिसके कारण उन्होंने असमिया भाषा में पढ़ना-लिखना आरंभ किया।

उन्होंने कुल पाँच उपन्यास लिखे हैं- 1.'पहारोंर हिले हिले' (1960) - यह उनका प्रथम उपन्यास है, जिसका अभी तक हिंदी में अनुवाद नहीं हुआ है 2.'पृथ्वी अरु हाँही' (1963)- इसका भी हिंदी अनुवाद उपलब्ध नहीं है 3.'मौन अरु मौन' (1968)- यह उपन्यास हिंदी में अनूदित नहीं हुआ, किंतु अंग्रेज़ी में इसका अनुवाद वर्ष 2021 में किया गया। 4.'कन्या मूल्य' (1973)- इस उपन्यास का हिंदी अनुवाद वर्ष 2009 में प्रकाशित हुआ। 5.'ऊपर महल' (2003)- इसका हिंदी में अभी तक अनुवाद नहीं हुआ है। लुम्मेर दाई के इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के समाज, संस्कृति

और जीवन के विविध पहलुओं का सजीव चित्रण मिलता है। वे केवल कथाकार ही नहीं, बल्कि समाज के भीतर परिवर्तन की चेतना जगाने वाले लेखक भी थे।

येसे दरजे थोंगछी: येसे दोरजे थोंगछी का जन्म 13 जून 1952 को जीगांव, पश्चिमी कामेंग जिला (अरुणाचल प्रदेश) में हुआ। वे शेरतुकपेन जनजाति से संबंध रखते हैं। थोंगछी जी असमिया और अंग्रेजी — दोनों भाषाओं में लेखन कार्य करते हैं। उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत बचपन में ही असमिया भाषा में कविता और नाटक लिखने से की। धीरे-धीरे वे कहानी और उपन्यास लेखन की ओर अग्रसर हुए और अपनी रचनात्मक प्रतिभा से लोक में विशेष प्रियता प्राप्त की।

उनकी शिक्षा के संबंध में उनकी आधिकारिक वेबसाइट पर उल्लेख है कि- "थोंगछी जी ने कॉटन कॉलेज से स्नातक की पढ़ाई पूरी की और गुवाहाटी विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। उनकी पहली साहित्यिक रचना 'जुनबाई' नामक एक कविता है।"[7]

साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान को देखते हुए भारत सरकार ने उन्हें वर्ष 2020 में 'पद्मश्री पुरस्कार' से सम्मानित किया। थोंगछी जी की रचनाओं में अरुणाचल प्रदेश की जनजातीय संस्कृति, लोक जीवन, मान्यताओं और सामाजिक यथार्थ का गहरा चित्रण देखने को मिलता है। वे न केवल अरुणाचल प्रदेश बल्कि पूर्वोत्तर भारत के एक सशक्त और संवेदनशील रचनाकार माने जाते हैं।

थोंगछी जी के साहित्यिक योगदान पर दिनकर कुमार द्वारा किए गए अनुवाद में, जो उनकी पुस्तक 'शव काटने वाला आदमी' में संकलित है, उल्लेख मिलता है। "उनकी कृतियों में शामिल हैं 'सोनाम,' 'लिंगझिक,' 'मौन होंठ मुखर हृदय,' 'विष कन्यार देशत,' 'मई आकोउ जनम लम,'

‘शव कटा मनुह’ आदि। इसके अतिरिक्त उनके प्रमुख कहानी संग्रह है- ‘पापोर पुखुरी,’ ‘बांह फुलर गोन्ध,’ ‘अन्य एखन प्रतियोगिता’ आदि

थोंगछी जी को उनके उत्कृष्ट साहित्यिक योगदान के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं-

- असम साहित्य सभा का ‘कालागुरु विष्णु प्रसाद पुरस्कार’
- केंद्रीय भाषा अनुसंधान, मैसूर का ‘भाषा भारती पुरस्कार’
- अरुणाचल प्रदेश बौद्ध संस्कृति संघ का ‘स्पेशल अचीवमेंट पुरस्कार’
- और अन्य कई क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय सम्मान।

साल 2005 में उनके उपन्यास ‘मौन होंठ मुखर हृदय’ के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया, जो उनके साहित्यिक जीवन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही। भारतीय प्रशासनिक सेवा से सेवानिवृत्ति के बाद, वे वर्तमान में तथ्य अधिकार अधिनियम (Right to information Act) के अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश के मुख्य सूचना आयुक्त के पद पर कार्यरत हैं।”[8]

थोंगछी जी के साहित्य में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज की संवेदनाएँ, प्रकृति, परंपराएँ, संघर्ष और आधुनिकता के टकराव का जीवंत चित्रण देखने को मिलता है। वे अपने लेखन के माध्यम से समाज, संस्कृति और मानवीय मूल्यों की गहराइयों को उजागर करते हैं। थोंगछी जी का साहित्यकार और बहुभाषाविद् के रूप में परिचय देते हुए ‘सोनाम’ उपन्यास में लिखा गया है कि - “साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित और अरुणाचल प्रदेश के शेरतुकपेन कबीले से सम्बद्ध साहित्यकार येसे दोरजे थोंगछी एक बहुभाषाविद् हैं- हिंदी, अंग्रेजी, नेपाली, बंगाली, असमिया और

अरुणाचली भाषाओं में निष्णात। किंतु उन्होंने अभिव्यक्ति के लिए असमिया भाषा का ही चयन किया। श्री थोंगछी, ज्योति प्रसाद अग्रवाल और लुम्मेर दाई जैसे उन साहित्यकारों की परंपरा में आते हैं, जिन्होंने गैर-असमिया भाषी होते हुए भी असमिया साहित्य जगत में अत्यधिक ख्याति अर्जित की है।"[9]

थोंगछी जी के कुछ उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद भी किया गया है-

1. 'सोनाम' (1982) — हिन्दी अनुवाद : डॉ. महेन्द्र नाथ दुबे (2009)
2. 'मौन होंठ मुखर हृदय' (2005) — हिन्दी अनुवाद : दिनकर कुमार
3. 'शव काटने वाला आदमी' (2014) — हिन्दी अनुवाद : दिनकर कुमार

जुमसी सिराम नीनो: जुमसी सिराम नीनो का जन्म 23 मार्च 1968 को तादिन गांव, पश्चिमी सियांग जिला, अरुणाचल प्रदेश में हुआ। जुमसी सिराम नीनो जी अरुणाचल प्रदेश के पहले हिंदी लेखक, साहित्यकार और उपन्यासकार हैं। वे आदी जनजाति से हैं। अरुणाचल के पहले हिंदी लेखक होने के बावजूद उनकी रचनाएँ बेजोड़ हैं।

जुमसी जी को पहला हिंदी उपन्यासकार माना जाता है। 'मेरी आवाज़ सुनो' उपन्यास में लिखा है- "जुमसी सिराम अरुणाचल प्रदेश के पहले अरुणाचली हिंदी लेखक हैं। सन् 1983 से शुरू हुआ उनका लेखकीय सफर आज भी जारी है। उनका जन्म 23 मार्च 1968 को अरुणाचल प्रदेश (तत्कालीन नेफ़ा) के आलो कस्बे से थोड़ी दूर तादिन गाँव में हुआ। जब वे अपने गाँव से दूर एक सरकारी विद्यालय में दसवीं कक्षा में पढ़ रहे थे, तभी उनकी मां का देहांत हो गया। इसके बाद उनकी पढ़ाई छूट गई। जुमसी जी अपनी माँ की इकलौती संतान हैं। पिता ने दूसरी शादी कर ली, तो किशोर जुमसी बिल्कुल अकेले हो गए।"[10]

उन्हीं दिनों उनकी मुलाकात डॉ. रमण शांडिल्य से हुई। शांडिल्य जी उन दिनों पेसिंग के सरकारी स्कूल में अध्यापक थे। कुछ समय तक उन्होंने जुमसी जी को अपने पास रखा। उसी दौरान किशोर जुमसी को हिंदी के प्रति लगाव पैदा हुआ, जो साहित्य लेखन के रूप में सामने आया।

जीवन की तमाम विसंगतियों और प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ते हुए उन्होंने अपना लेखन कार्य जारी रखा। उनके लेखन से प्रभावित होकर कई संस्थाओं — अरुण नागरी संस्था, अरुणाचल हिंदी समिति, गालो विकास संगठन, अरुणाचल प्रदेश लिटरेरी सोसाइटी, हिंदी साहित्य सम्मेलन आदि ने उन्हें सम्मानित किया है। सिराम जी की अब तक प्रकाशित पुस्तकें हैं —

- ‘शिला का रहस्य’
- ‘जायीबोने’
- ‘गालो लोग जीवन’
- ‘मातमुर जामोह’
- ‘मेहनत से मुकाम तक’
- ‘तोदक बासार के ऐतिहासिक पत्र’

इसके अतिरिक्त उनके कई लेख देश की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में वे अपने गाँव तादिन में परिवार के साथ रहते हैं और खेती करते हैं।

जुमसी सिराम नीनो जी के बारे मे प्रो. वीर भारत तलवार जी ने जुमसी जी की परिचय देते हुए ‘मेरी आवाज़ सुनो’ उपन्यास में लिखा है कि- “जुमसी सिराम अरुणाचल प्रदेश की आदी जनजाति से आये लेखक हैं । अरुणाचल की 26 जनजातियों में गालो एक बड़ा समुदाय है जो

अरुणाचल प्रदेश के ईस्ट और वेस्ट सियांग जिलों में और सुबनसिरी जिले के ऊपरी हिस्सों में रहता है।”[11]

डॉ. श्याम शंकर सिंह ने जुमसी जी द्वारा रचित कृति का उल्लेख करते हुए अपनी पुस्तक ‘अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी अध्ययन के नये आयाम’ में लिखा है - “रचनात्मक उपलब्धि की दृष्टि से, अरुणाचल प्रदेश के निवासी के रूप में पहले हिंदी लेखक के रूप में विश्रुत श्री जुमसी सिराम द्वारा लिखित लघु उपन्यास ‘तिंगी-आलुक’ उल्लेखनीय है। यह उपन्यास श्री विजय अमरेश द्वारा संपादित ‘कोशा’ पत्रिका (पटना से प्रकाशित) के सन् 1986 ई. के जुलाई–अगस्त वाले अंक में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। वे सच्चे अर्थों में अरुणाचल प्रदेश के हिंदी लेखकों का प्रतिनिधित्व करते हैं।”[12]

प्रमुख रचनाएँ:

1.‘मेरा पागल मन का प्यासा पक्षी’ (कविता) – 1981

2.‘गगन तले शाम ढले’ (कविता) – 1981

3.‘पुस्त का कार्टून में एक शिला का रहस्य’ (कविता) – 1981

4.‘आयि आलुक’ (कविता) – 1992

5.‘दूर क्यों हो पास तो आओ’

6.‘शिला का रहस्य’

7.‘मेरी आवाज़ सुनो’ (उपन्यास) – 2021

8.‘जायीबोने’ – 2002

9.‘गालो लोक जीवन एवं संस्कृति’

10.‘मातमुर जामोह’ – 2015

जुमसी जी के पुरस्कार और सम्मान: जुमसी जी को उनके साहित्यिक योगदान के लिए गालो विकास संगठन, ईटानगर, अरुणाचल हिंदी समिति, नाहरलगुन, और अरुण नागरी संस्था, ईटानगर द्वारा सम्मानित किया गया है।

डॉ. जोराम यालाम नाबाम- पाँच मार्च को अरुणाचल प्रदेश के लोअर सुबनसिरी जिले के जोराम गांव में डॉ. जोराम यालाम का जन्म हुआ। डॉ. जोराम यालाम निशि जनजाति से हैं। वर्तमान में वे राजीव गांधी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।

डॉ. जोराम यालाम के उपन्यास ‘जंगली फूल’ में लिखा है- “अरुणाचल प्रदेश के लोअर सुबनसिरी जिले के जोराम गाँव में पाँच मार्च को जन्मी 2012 में ‘साक्षी है पीपल’ नामक कहानी संग्रह आया, जिसमें नौ लम्बी कहानियाँ हैं। 2014 में एक और कहानी संग्रह ‘तानी मोमेन’ (लोक कथाएँ) आया। अब पहली बार उपन्यास लेखन में उतरी हैं। ‘जंगली फूल’ यालाम का पहला उपन्यास है। ‘जंगली’ होने का अर्थ मेरे लिए इस प्रकार है- प्रकृति से जुड़ना, उसके साथ स्वयं को अभिन्न अंग जानकर चलना; फूलों के साथ मुस्कुराना, नदी की बहती लहरों का गान सुनना, हृदय के अंतरतम सागर से जो सूक्ष्म पुकार आती है- उसे सुन पाना।”[13]

उनकी प्रमुख रचनाएं हैं:

1.‘साक्षी है पीपल’ (कहानी संग्रह) - 2012

2.‘तानी मोमेन’ (लोक कथाएँ) - 2014

3.‘जंगली फूल’ (उपन्यास) - 2019

4.‘गाय-गेको की औरतें’ (संस्मरण) - 2021

डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली': डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' अरुणाचल प्रदेश के सियांग जिले के बासर गाँव की निवासी हैं। वे गालो जनजाति से संबंध रखती हैं। वर्तमान में वे देरा नातुंग शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर के हिन्दी विभाग में सहायक प्राध्यापिका के रूप में सेवा कर रही हैं। ईटानगर में वे 'बुलेट राइडर रानी' के नाम से भी प्रसिद्ध है। हिन्दी साहित्य में गहरी रुचि रखते हुए वे लेखन कार्य को निरंतर आगे बढ़ा रही हैं।

डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' के उपन्यास 'उस रात की सुबह' में लिखा है- "भारत के पूर्वोत्तर में बसा राज्य अरुणाचल प्रदेश, जहाँ सूर्य सर्वप्रथम अपनी स्वर्णिम रोशनी की छटा बिखेरता है। यहीं, प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर घाटी पश्चिम सियांग जिले के बसार के पागी ग्राम में जन्मी तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' समाज में एक सकारात्मक बदलाव की आकांक्षी हैं और पेशे से शिक्षिका होने के साथ अपने फ़ौज से सेवा-निवृत्त पिता को अपनी प्रेरणा मानती हैं। उन्हीं के नक्शेकदम पर चलकर वे समाज सेवा में अपना योगदान देने में विश्वास रखती हैं। लेखन कार्य में रुचि लेने के पीछे भी उनका यही उद्देश्य है। अपनी कविताओं में वे अपने विचारों की अभिव्यक्ति करती रही हैं, और उपन्यास लेखन में यह उनकी प्रथम पहल एवं प्रयास है।"[14]

उनकी प्रमुख रचनाएं हैं:

1.'उस रात की सुबह' (उपन्यास) - 2018

2. 'काताम' (लोककथा) - 2021

3.अरुणाचल प्रदेश के गालों लोक साहित्य में स्त्री -जीवन के विविध आयाम: एक अध्ययन-2025

मोर्जुम लोयी: मोर्जुम लोयी का जन्म काबू गाँव, पश्चिम सियांग जिला, अरुणाचल प्रदेश में हुआ। वे गालो जनजाति से संबंध रखती हैं। वर्तमान में मोर्जुम लोयी बिनी याङा गवर्नमेंट विमेंस कॉलेज, लेखी, ईटानगर के हिन्दी विभाग में सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।

मोर्जुम लोयी के 'मिनाम' उपन्यास में लिखा है- "जन्म अरुणाचल प्रदेश के काबू ग्राम में एक गालो आदिवासी परिवार में हुआ। स्नातकोत्तर तक की पढ़ाई राजीव गांधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स, अरुणाचल प्रदेश से करने के बाद वर्तमान में बिनी याङा गवर्नमेंट विमेंस कॉलेज, लेखी, ईटानगर में हिन्दी साहित्य की सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हूँ।"[15]

उनकी प्रमुख रचनाएं हैं:

1'मिनाम' -2020

2.'काबू' (गालों जनजाति की लोक कथाएं एवं अन्य कहानियां)-2025

3.'ननम पोनू' (गालो लोकगीत)-2021

4.'काबू (लोककथा एवं अन्य कहानियां)-2025

दयाराम वर्मा: दयाराम वर्मा अरुणाचल प्रदेश के मूल निवासी नहीं हैं। वे मूलतः राजस्थान के रहने वाले हैं। उनका जन्म राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले की भादरा तहसील के एक छोटे से गांव महराणा में 17 जुलाई, 1966 को हुआ।

उनकी प्राथमिक शिक्षा गृह जिले के रावतसर नामक ऐतिहासिक कस्बे में हुई। तत्पश्चात इन्होंने जिला हनुमानगढ़ के नेहरू मेमोरियल महाविद्यालय से विज्ञान विषय में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। इसके उपरांत मई 1985 में वे भारतीय वायुसेना में भर्ती हुए। बेंगलुरु में प्रारंभिक प्रशिक्षण

पूरा करने के बाद उनकी प्रथम तैनाती असम के जोरहाट वायुसेना स्टेशन पर हुई। इसी स्टेशन से वर्ष 1988–89 में वे अरुणाचल प्रदेश की कुछ अस्थायी हवाई पट्टियों पर प्रतिनियुक्त हुए। असम और अरुणाचल प्रदेश में सेवा के दौरान प्राप्त अनुभव ही उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'सियांग के उस पार' का आधार बने।

"दस वर्षों तक वायु सेना में सेवा देने के बाद वर्ष 1995 में उन्होंने ओरिएंटल बैंक ऑफ कॉमर्स में परिवीक्षाधीन अधिकारी के रूप में कार्यभार ग्रहण किया। इसके बाद उन्होंने विभिन्न विभागों और शाखाओं में शाखा प्रबंधक के रूप में कार्य किया। वर्तमान में वे बैंक के मानव संसाधन विकास संस्थान, भोपाल में संकाय सदस्य (मुख्य प्रबंधक) के रूप में सेवाएं दे रहे हैं। साहित्यिक लेखन के अतिरिक्त, बैंकिंग विषयों एवं समसामयिक मुद्दों पर लेखन भी उनकी अभिरुचि का क्षेत्र रहा है।"[16]

'सियांग के उस पार' उनकी एक प्रसिद्ध और प्रमुख रचना है। हिंदी सहित्य में उनका योगदान उल्लेखनीय है।

ख. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास: सामान्य परिचय:

अरुणाचल प्रदेश को केंद्र बनाकर हिन्दी में लगभग दस उपन्यास लिखे गए हैं। इनमें से चार उपन्यास ऐसे हैं जो मूल रूप से असमिया भाषा में रचे गए थे और बाद में उनका हिन्दी अनुवाद कर प्रकाशन किया गया। मूल रूप से हिन्दी में सृजित उपन्यासों की संख्या छह है।

कन्या का मूल्य (2009): हिन्दी में अनूदित उपन्यासों में एक प्रमुख स्थान रखता है। 'कन्या का मूल्य' लुम्मेर दाई द्वारा असमिया भाषा में लिखा गया उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 1973 में हुआ था। इसका हिन्दी में अनुवाद मुनीन्द्र मिश्र ने किया, जिसका प्रकाशन 2009 में हुआ। अनुवादक मुनीन्द्र मिश्र ने इस उपन्यास के बारे बताया है कि यह एक क्रान्तिकारी उपन्यास है। उस समय लुम्मेर दाई समाज सुधारक और क्रांतिकारी नेता के रूप में देखे जाते थे। उनके साथ कई समाज सुधारक जुड़े हुए थे, जैसे—तालुम रूक्बो, दायेंग एरिंग, तादार तांग, नाबाम आतुम आदि। यह उपन्यास कन्या मूल्य को देने और लेने की दुष्परिणाम कारी प्रथा पर आधारित है। उपन्यास में स्त्री पात्र द्वारा 'कन्या मूल्य' जैसी कुप्रथा का विरोध करते हुए सभा में आवाज़ उठाई गई है।

अनुवादक मुनीन्द्र मिश्र ने 'कन्या मूल्य' उपन्यास में लिखा है- "लुम्मेर दाई का नाम अरुणाचल के समाज में सुधार क्रांति लाने वाले प्रमुख लोगों में है। तालुम रूक्बो, दायेंग एरिंग, तादार तांग जैसे गिने-चुने अरुणाचल के समाज सुधारकों में से वे एक हैं। यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश में बेटी की कीमत लेने की प्रथा के दुष्परिणामों का चित्रण है। इस प्रथा के खिलाफ आवाज उठाने वाली लड़की की अत्यंत मार्मिक कथा है। सामाजिक संस्कारों में जकड़े एक बाप द्वारा समाज और स्नेह के मध्य द्वंद की ऐसी अद्भुत कल्पना प्रस्तुत की गई है, जो बहुत कम देखने को मिलती है।

बीस दिन तक अनाहार रहकर अपने ससुराल वालों के अत्याचारों से संघर्ष करती बहू की कथा निश्चित रूप से हर एक को उद्वेलित करती है। यह उपन्यास नींद से जागते अरुणाचल की एक जीवंत प्रस्तुति है। उसमें यथार्थ से थोड़ा-बहुत विचलन संभव है, पर प्रयास यह होना चाहिए कि वह विचलन विकृति को जन्म न दे। प्रस्तुत उपन्यास निश्चित रूप से गालो समाज में विशेष स्थान रखता है।"[17]

थोंगछी जी ने 'कन्या मूल्य' उपन्यास पर लिखा है कि- "कन्या मूल्य, लुम्मेर दाई की सबसे विवादास्पद रचना थी, जो तानी जनजाति के समूह में प्रचलित प्रथाओं पर आधारित थी। यह उपन्यास बेटियों का विवाह करते समय उनके माता-पिता द्वारा वधू मूल्य लेने की घृणित प्रथा पर केंद्रित है।"[18]

यह उपन्यास गालो जनजाति पर आधारित है। इसमें गालो समाज की रीति-रिवाजों और कम उम्र में बेटियों को बेचकर जबरन विवाह कराने की प्रथा का यथार्थपूर्ण चित्रण किया गया है। उपन्यास में समाज में शिक्षा की कमी को भी गहराई से दर्शाया गया है। लेखक बताते हैं कि पहले के समय में गाँव के लोग वर्ष का हिसाब उँगलियों पर गिन कर करते थे। किसी पेड़ या पौधे की वृद्धि या फल आने से मौसम और वर्ष का अनुमान लगाया जाता था। उस समय पढ़े-लिखे लोग बहुत कम थे और लिखित रूप से कोई अभिलेख या गणना नहीं की जाती थी।

इसी का उदाहरण देते हुए लुम्मेर दाई ने अपने उपन्यास 'कन्या मूल्य' में लिखा है - "एक, दो, तीन, चार... आदत के मुताबिक उँगलियाँ गिनता कारगुम सोच रहा था मुझे अपनी बेटी को बेचे कई वर्ष हो गए। फिर गिनती के लिए अपनी बाएं हाथ की उँगलियों के पोरों पर दाएँ हाथ की तर्जनी फिराने लगा। जब वह पैदा हुई थी तब मैंने एक बार फिर फसल लगाई थी... शायद तीन साल हो गए... हाँ, तीन साल पहले ही मैंने वहाँ खेती की थी।"[19]

इस उपन्यास में शिक्षा की उपेक्षा को लेकर भी लेखक ने गहरी बात कही है। उपन्यासकार बताते हैं कि पहले के लोग अपनी बेटियों को शिक्षा नहीं देना चाहते थे। बेटियाँ अफसर बनें, यह सोच-विचार समाज में नहीं था। बचपन से ही लड़कियों को घर के काम जैसे- बर्तन धोना, कपड़े धोना, खाना पकाना, सब्जी बनाना, खेती करना आदि - सिखाया जाता था।

इसका मुख्य कारण यह था कि लोगों में शिक्षा का ज्ञान और उसकी उपयोगिता की समझ नहीं थी। उन्हें यह विश्वास नहीं था कि लड़कियां भी पढ़-लिखकर कुछ कर सकती हैं। दूसरा कारण यह था कि बेटियाँ विवाह के बाद ससुराल चली जाती हैं, इसलिए उन्हें पढ़ाने में कोई लाभ नहीं समझा जाता था। विवाह के बाद वे पति की देखरेख में आ जाती हैं, इसलिए बेटों को ही अधिक महत्व दिया जाता था।

तीसरा कारण एक सामाजिक भय था- माता-पिता के मन में यह डर बैठा रहता था कि यदि बेटियाँ पढ़-लिख जाएँगी, तो कहीं वे किसी दूसरे (गैर-आदिवासी) व्यक्ति के साथ भाग न जाए। इसी कारण उपन्यास में कारगुम बार-बार चिंतित होती दिखाई देती है कि "गुम्बा को ससुराल भेज देना है, अब भेजने का समय आ गया है।"

वह मन ही मन सोचती और कहती है- "गुम्बा को पढ़ाई करके क्या मिलेगा? उसकी पढ़ाई का क्या फायदा? न वह अफसर बनेगी, न ही क्लर्क बन पाएगी। मान लो कुछ बन भी गई, तो क्या उसका पति उसे नौकरी करने देगा?"[20]

लेखक इस उपन्यास में बताते हैं कि उस समाज में लड़की होना मतलब था — कोई पढ़ाई नहीं, कोई नौकरी नहीं, बस घर की ज़िम्मेदारी निभाना। साथ ही खेती-बाड़ी, सुअरों और चिड़ियों की देखभाल, सास-ससुर और बच्चों की सेवा- यही सब उसका जीवन माना जाता था।

इसी कारण उस समय बेटियों की कीमत ली या दी जाती थी- जो समाज में स्त्रियों की स्थिति पर गहरी चोट करता है। उदाहरण 'कन्या मूल्य' उपन्यास से- "बिल्कुल! उसे उसके पति के घर भेजने का समय शायद बीत रहा है। हाँ, अब मुझे उसे उसके ससुराल भेजना चाहिए। स्कूल में पढ़ाई करके उसे क्या मिलेगा? उसकी पढ़ाई का क्या लाभ? न तो वह अफसर बनेगी और न ही कोई क्लर्क बन पाएगी... मान लो वह क्लर्क बन भी गई, तो क्या उसका पति उसे नौकरी करने देगा? क्या उसे यहाँ-वहाँ जाने देगा? निश्चित ही नहीं। उसकी सबसे जरूरी जिम्मेदारी अपना घर संभालना है। नहीं तो कौन उसके खेतों, सुअरों और चिड़ियों की देखभाल करेगा? वही कर सकती है। उसके बच्चों की देखभाल और सास-ससुर की सेवा भी तो उसकी जिम्मेदारी है। यदि ये सब बातें न जुड़ी होती, तो कौन एक बच्ची की इतनी कीमत देता?... "कैसे?" "देखो, वह जवान हो रही है, कोई नहीं जानता कि क्या हो जाएगा। एक विवाहित लड़की क्लर्क और अफसर बनने की तमन्ना करे- नहीं... उसकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी बच्चे पैदा करना और ससुराल के परिवार की देखभाल करना है।"[21]

उस समय तानी समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। उन लड़कियों को शिक्षा के स्तर पर पढ़ने-लिखने की अनुमति भी नहीं दी जाती थी। साथ ही, शारीरिक और मानसिक स्तर से लड़कियों का शोषण होता था। लड़कियाँ कहीं भी सुरक्षित नहीं थीं- न अपने घर में और न ससुराल में। इसी उपन्यास में गुम्बा पात्र के सहेली योमे के साथ भी शोषण होता है। गुम्बा द्वारा सहेलियों से बातचीत के दौरान पता चलता है कि सहेलियों को बाल अवस्था में ही ससुराल भेज दिया गया था, और अब सबके साथ बच्चे हो चुके हैं।

गुम्बा की सहेली योमे कहती है- "मैं भी आज स्कूल में पढ़ रही होती, अगर मुझे मेरे पिता ने बचपन में ही न बेचा होता। जब मैं कक्षा आठ में थी, तभी मेरे मां-बाप ने मुझे अपने पति के घर जाने को कहा। मैंने विरोध किया, तो मेरे मां-बाप ने यह सब मेरे ससुराल वालों से बताया। मेरे ससुराल

वालों ने इसकी शिकायत केबांग में की। केबांग ने मेरे ससुराल वालों के पक्ष में निर्णय दिया। वे लोग मुझे घसीट ले गए तथा मुझे जबरदस्ती अपने पति के साथ सोने को मजबूर किया।"[22]

इस प्रथा और शोषण से लड़कियां मुक्ति पाना चाहती थीं। वे इस प्रथा को नष्ट और समाप्त करने का रास्ता खोजते हुए गुम्बा कहता है- "सचमुच, मर्द लड़कियों को अपनी निर्जीव सम्पत्ति मानता है। जब एक लड़की पैदा होती है, तो वे खुश होते हैं जैसे नई संपत्ति घर में आ गई हो। हमें इस प्रथा को हटाने का कोई रास्ता ढूंढना चाहिए।"[23]

लेकिन इस उपन्यास में शोषण को हटाने के बजाय, गुम्बा के साथ शोषण पर शोषण ही होता दिखाया गया है। केबांग में एक पुरुष कहता है- "स्कूल जाकर ये लड़कियां आजकल विवाह की परंपरा को तोड़ रही हैं। ऐसी लड़की को तो घसीट कर उसके पति के बिस्तर में डाल देना चाहिए।"[24]

गुम्बा जब अपनी सुरक्षा के लिए होने वाले पति-दकतों से लड़ता है, तो शास बीच में आकार गुम्बा से गालियाँ देते हुए कहता है- "अरे डायन, तू यहाँ हमारी बहू बनकर आई है या अपने पति को खाने।"[25]

इन तमाम उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि उस समाज में लड़कियों की दशा बहुत बुरी थी। इसी के साथ, उपन्यास में पितृसत्तात्मक समाज, प्राकृतिक चित्रण, प्रेम वर्णन, गाँव में विकास लाने की चिंता आदि पर भी कलम चली है।

अंत में उपन्यास का कथा गुम्बा के रिश्तेदार, गुम्बा का परिवार और ससुराल के आस-पास घूमते रहते हैं। गुम्बा को बेच देने के कारण, उसके ससुराल वाले उसे स्कूल से घसीट कर ले जाते हैं और बांध देते हैं। गुम्बा ससुराल में इक्कीस दिन तक उपवास रखती है। जब वह मरणावस्था में

पहुँचती है, तो मिन्दाक के परिवार उसे उसके घर लौटा देते हैं। उसके बाद गुम्बा अपने परिवार में ठीक हो जाती है। ठीक होने के बाद वह और उसके पिता (कारगुम) मिलकर, जो मिन्दाक के परिवार से कन्या मूल्य दिया गया था, उसे लौटाने के लिए केबांग वालों को बुलाते हैं। उपन्यास के अंत में हृदय परिवर्तन हो जाता है और केबांग वालों के भी हृदय परिवर्तन हो जाता है।

लेकिन उपन्यास में जिस तरह से कन्या का मूल्य लौटाना दिखाया गया है, वैसा यथार्थ में कम ही होता था। न्यिशी समाज में कन्या मूल्य लेने के बाद लड़की को जबरदस्ती ससुराल ले जाया जाता था। कुछ लड़कियाँ वहीं आत्महत्या कर लेती थीं, तो कुछ रातों-रात भागकर बच जाती थीं। जिनकी बड़ी बहन शादी से इंकार कर भाग जाती थी, तो उसकी छोटी बहन को घसीटकर ले जाया जाता था। कुछ जानवरों का शिकार भी हो जाते थे। यह प्रथा आज के समाज में देखने को नहीं मिलती, लेकिन गाँव के सू दूर-दराज़ जगहों पर आज भी यह प्रथा चलती है, ऐसा सुनने को मिलता है।

सोनाम उपन्यास (1975) : 'सोनाम' उपन्यास येसे दरजे थोंगछी द्वारा असमिया भाषा में लिखा गया उपन्यास है । जिसका प्रकाशन 1975 में हुआ था । इसका हिंदी में अनुवाद डॉ. महेंद्र नाथ दुबे ने किया है । जिसका प्रकाशन 2008 में हुआ है । इस उपन्यास को त्रिकोणीय प्रेम कथा के रूप में देख सकते हैं ।

'सोनाम' उपन्यास में ब्रोकपा समुदाय के एक से अधिक पति रखने वाले प्रथा पर लिखा गया है, यह ब्रोकपा समुदाय, मोंपा जनजाति के उप जनजातियाँ है, ये लोग तवांग और पश्चिमी कमेंग जिला, अरुणाचल प्रदेश में रहते है ।

इसी 'सोनाम' उपन्यास में अनुवादक महेंद्र नाथ दुबे ने लिखा है कि- "'सोनाम' भूटान के साकतेंग -मिरोक इलाकों में तथा अरुणाचल प्रदेश के पश्चिमी कमेंग और तवांग इलाकों में बसने वाले छोटे- से पशुपालक ब्रोकपा कबीले का अनूठा चित्रण करता है। उपन्यास की थीम याक चराने वाले समुदाय के सांस्कृतिक-सामाजिक परिवेश का मार्मिक लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है और इस समाज में प्रचलित बहुपतित्व की प्रथा के इर्द-गिर्द घूमती है।"[26]

"सोनाम उपन्यास की नायिका सोनाम है और उसके दो पति लबजाँग और पेमा वांगछू हैं। सोनाम अपने पति लबजाँग से प्रेम करती है। दोनों अपने परिवार को चलाने के लिए भेड़, बकरी, बैल, याक आदि का पशुपालन करते हैं। लबजाँग अपने परिवार का एकमात्र लड़का है। इसलिए घर और परिवार चलाने की पूरी ज़िम्मेदारी केवल उसकी है। अकेला पुरुष होने के कारण पशुपालन में उसे दिक्कत आती है। तभी सोनाम पेमा वांगछू को अपने दूसरे पति के रूप में स्वीकार करने का प्रस्ताव देती है। सोनाम और लबजाँग दोनों को लगता है कि अगर पेमा वांगछूक को भी अपना लिया जाए तो घर परिवार चलाने में आसानी होगी। लाबजाँग को भी सहारा मिलेगा। यह सोचकर दोनों गाँव वालों को बुलाकर निर्णय लेते हैं कि सोनाम के दोनों पति एक एक कर पन्द्रह पन्द्रह दिन के लिए लाबजाँग के भेड़, बकरी, बैल, याक आदि को पहाड़ पर चराने ले जाएंगे। पहले की अनुपस्थिति में दूसरा घर की देख भाल करेगा। जब पहला लौट आयेगा तो दूसरा पशुओं को लेकर चराने जाएगा। पहले पेमा वांगछू को पन्द्रह दिन तक पशुओं को लेकर पहाड़ पर चराने भेजा जाता है और लबजाँग घर का कामकाज सम्भालता है। लेकिन पेमा वाँगछू अन्दर ही अन्दर लाबजाँग से जलने लगता है और ठीक से पशुओं की देख-रेख नहीं करता है। दूसरी तरफ लबजाँग और सोनाम घर का कार्य ठीक से करते हैं। इसी बीच सोनाम को दो बच्चा हो जाता है। एक लड़की जिसका नाम रिचिन और दूसरा लड़का जिसका नाम तासी रखा जाता है। पेमा वांगछू के जानवरों की ठीक

से देखभाल नहीं करने से जंगल का बाघ पशुओं को एक एक कर खाने लगता है। जब लबजाँग को पता चलता है तो रातों रात वह चढ़ाई कर वहाँ पहुँचता है और पशुओं की देखभाल स्वयं करने लगता है। इस बात को लेकर लाबजाँग और पेमा वांगछू में लड़ाई भी हो जाती है। लाबजाँग अकेला ही जाकर बर्फ के पहाड़ पर अपना छोटा सा बसेरा बना लेता है और रात दिन मेहनत कर उस बाघ को मार डालता है। इस बीच पेमा वांगछू सोनाम के साथ घर में बैठ कर लबजाँग की बुराई करने लगता है और पूरे गांव में घूम घूम कर लाबजाँग को बदनाम करने लगता है। सोनाम अकेले घर का काम और बच्चों की देखभाल करते करते कमजोर हो जाती है। घर में खाने को भी कुछ नहीं होता है। वह बहुत गरीबी की स्थित में पहुंच जाती है। वह किसी प्रकार आस पड़ोस से मदद लेकर अपने बच्चों की देखभाल करती है। धीरे-धीरे सोनाम को चिंता और कमजोरी के कारण रोग पकड़ लेता है। इस बीच उसकी देखभाल करने वाला भी कोई नहीं होता है। उसका पहला पति लांबजाग गुस्से से पहाड़ से घर नहीं आता है। और दूसरा पति पेमा भी उसका ध्यान नहीं रखता है। घर धूल गंदगी से पट जाता है। सोनाम की छोटी बहन छिरिंग दैमा कभी कभी आकर घर की साफ सफाई कर देती है। तभी एक दिन सोनाम अपनी बहन छीरिंग से कहती है कि- "हालत ऐसी हो गयी है कि मेरी जो मौत सुनिश्चित हो चुकी है, वह मौत भी मैं शांति से नहीं मर पाऊँगी। मुझे पूरा विश्वास है कि मुझे इस यन्त्रणा से मुक्ति दिलाने में एकमात्र तुम ही समर्थ हो। मेरी मृत्यु के बाद मेरे घर संसार, मेरे बच्चों यहां तक कि मेरे उस भोले-भाले पति को भी केवल तू ही संभाल सकोगी। अतएव तुम्हारी कर्तव्य -निष्ठा पर पूरा विश्वास रखते हुए मैं अपने बड़े पतिदेव लबजाँग, बेटी रनचिन और बेटे तासी को तुम्हारे हाथों में सौंपती हूँ।"[27]

सोनाम अपनी बहन छीरिंग से कहता है की जीजा जी(लबजाँग) को जल्दी बुलाओ। अंत में सोनाम लाबजाँग के हाथों से ही पानी की एक घूंट पीकर दम तोड़ देती है। सोनाम की जिंदगी भी

क्या जिंदगी है, जो पतियों के बीच पीसकर रह जाती है। इस तरह देखा जाए तो सोनाम स्त्री अस्मिता के प्रश्न को गति देने वाला उपन्यास है। अरुणाचल प्रदेश के पश्चिमी कामेंग, तवांग, भूटान, तिब्बत, हिमालय के किन्नौर, लाहौर, स्पीति, लद्दाख आदि क्षेत्रों में आज भी 'खोरदेकपा' परंपरा को अपनाया जाता है। सोनाम उपन्यास भी इसी परंपरा पर टिका है।

तवांग जिला के ब्रोकपा समाज में यह प्रथा प्रचलित है। इस उपन्यास के अनुसार हमे पता चलती हैं कि ब्रोकपा समाज में एक स्त्री दो पति रख सकते है। दो पति एक ही जाति की भाई भाई होना चाहिए। ब्रोकपा समाज में पशुपालन का प्रथा था। एक दिन लबजांग पशुओं को चढ़ाने पहाड़ियों पर चला जाता है। लबजांग का परिवार में वे अकेला पुत्र थे।

लबजांग के चले जाने के बाद सोनाम घर पर अकेला रहती थी। इसका फायदा गांव के लड़का पेमा बांगछू उठा लेता है। पेमा बांगछू सोनाम का आगे पीछे घूमता रहता था। जब लबजांग पहाड़ों से लौटकर आता है तो पता चल जाता है दोनों की संबंध को फिर तीनों खोरदेपा का सम्बन्ध बना लेने का तय करता है।

लाबजांग चाहकर भी अपनी पत्नी सोनाम को अपने साथ पहाड़ों पर नहीं ले जा सकते। इसका कारण उपन्यास में बताया गया है कि उनके वंश का गोत्र ऐसा है जिसमें किसी भी लड़की को अपने ही खुटी (छावनी) में जाने की अनुमति नहीं होती। दूसरे वंश या गोत्र के लोग अपनी धर्मपत्नी को खुटी में ले जाकर साथ रह सकते हैं, परंतु लाबजांग का वंशज ऐसा नहीं कर सकता। ऐसा करना अपशकुन और अमंगल माना जाता है। उनके कुल देवता "सुमा" इससे नाराज होकर पूरे परिवार को नष्ट कर देते हैं। उपन्यास में बताया गया है कि एक बार लाबजांग की माँ अपने पहले पति के साथ खुटी में जाकर रहने लगी थी। जैसे ही उन्होंने ऐसा किया, उनके परिवार में महाकाल छा गया- दोनों पति, एक बेटा और एक बेटी की मृत्यु हो गई। केवल लाबजांग ही जैसे-तैसे बच पाए।

उपन्यासकार इस प्रसंग पर लिखते हैं- "कोई दूसरा घर अथवा कोई दूसरा वंश-गोत्र होता, तो उस घर का सदस्य पुरुष अपनी प्रियतमा पत्नी सोनाम को खुटी (छावनी) पर ले जाकर रखने में कोई कठिनाई नहीं होती। बल्कि जरूरत की बेला में ऐसे पुरुषों की पत्नियां उनकी छावनी खुटी में आकर अपने पतियों के साथ रहकर उनकी सहायता करने का ही प्रचलन है। परंतु लाबजांग के कुल-खानदान में यह परंपरा नहीं है। उनके वंश के सुमा अर्थात कुल देवता, उनकी छावनी खुटी पर स्त्री जाति के जाने या स्त्री के साथ संसर्ग को सहन नहीं करते। यदि सोनाम खुटी पर चली गई तो खुटी की पवित्रता नष्ट हो जाएगी। इससे सुमा क्रोधित हो जाएंगे। फिर घर के सभी याक, चवरी गायें, भेड़ें, और बकरियाँ महामारी से ग्रस्त हो जाएँगी। न केवल पशु मरेंगे, बल्कि परिवार के स्त्री-पुरुषों पर भी भारी अमंगल आएगा।"[28]

उपन्यास में आगे बताया गया है कि- "परिस्थितियों के दबाव में एक बार लाबजांग की माँ अपने ज्येष्ठ पति के साथ खुटी में रही थी। उसी का दंड यह हुआ कि पूरे खानदान पर महाविपत्ति छा गई। उनके बड़े और छोटे दोनों पति मर गए, एक बेटा और एक बेटी भी काल कवलित हो गए। केवल लाबजांग ही किसी तरह जीवित बच पाया।"[29]

अपनी ज़िंदगी में ऐसी भीषण चोट खाने के बाद लाबजांग की माँ ने अपनी बहू सोनाम को मरने से पहले सख्त चेतावनी दी थी कि- "कभी भूलकर भी खुटी मत जाना, नहीं तो वही विपत्ति दोबारा आ जाएगी। इसी कारण लाबजांग चाहकर भी अपनी पहाड़ी छावनी की खुटी पर अपनी पत्नी सोनाम को ले जाकर रख नहीं सकते।"[30]

उपन्यास में लाबजांग के अलावा उनके दो मित्रों की भी एक ही पत्नी है। लाबजांग के मित्र टीका और दावा दोनों की एक ही पत्नी होने की प्रथा का भी उपन्यास में उल्लेख किया गया है। टीका और उसका भाई दावा- दोनों की एक ही पत्नी है। उसी एक पत्नी से दोनों भाइयों का घर-

परिवार चलता है। जब टीका एक सप्ताह के लिए खुटी (छावनी) पर चला जाता है, तो दावा अपनी पत्नी के साथ घर पर रहता है। फिर जब टीका खुटी से लौट आता है, तो दावा एक सप्ताह के लिए खुटी पर चला जाता है, और इस दौरान टीका पत्नी के साथ घर पर रहता है। दोनों भाई बारी-बारी से पत्नी को खुटी पर भी ले जाते हैं।

इसी 'सोनाम' उपन्यास में लिखा गया है कि- "टीका कुल दो भाई हैं - एक टीका और दूसरा दावा। दोनों भाई पत्नी के लिए खारदेपका संबंध वाले हैं, अर्थात एक ही धर्मपत्नी के समान अधिकार संपन्न पति हैं। एक ही पत्नी से दोनों अपनी घर-गृहस्थी संभाल रहे हैं। इसी कारण वे परस्पर बारी-बारी से खुटी पर जाकर रहते हैं। जब एक खुटी पर होता है, तो दूसरा पत्नी के साथ घर पर रहता है। वाणिज्यिक कार्यों, घर की चीजें बेचने और खरीदने के लिए भी वे बारी-बारी से पत्नी को अपने साथ ले जाते हैं। इस प्रकार, दोनों ओर से समान अधिकार वाले पति होने के कारण उनके लिए यह बड़ी सुविधा है कि पत्नी कभी अकेली नहीं रहती, और घर-गृहस्थी तथा खुटी - दोनों जगह का काम बिना किसी विघ्न-बाधा के चलता रहता है। भोर के तड़के ही टीका अपने घर से निकलकर खुटी पर पहुँच गया था। खुटी पर टीका के पहुंचते ही दावा घर जाने के लिए निकल पड़ा था।"[31]

इस तरह की प्रथा पहले हमारे गालो भाई-बहनों में भी देखने को मिलती थी। हालांकि अब यह परंपरा धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है, लेकिन उपन्यासकार ने उल्लेख किया है कि यह प्रथा पूरी तरह खत्म नहीं हुई है। आज भी यह परंपरा भारत, तिब्बत, भूटान और मंगोलिया जैसे देशों में कुछ स्थानों पर देखने को मिलती है।

शव काटने वाला आदमी (2015): 'शव काटने वाला आदमी' येसे दरजे थोंगछी द्वारा असमिया भाषा में लिखा गया उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1990 में हुआ था। इसका हिंदी में अनुवाद दिनकर कुमार ने किया है, जिसका प्रकाशन 2015 में हुआ है। इस उपन्यास में मोनपा जनजाति के शवों को काटने की प्रथा का वर्णन किया गया है।

यह प्रथा अरुणाचल प्रदेश में बसे मोनपा जनजाति की है, जो बौद्ध धर्म की महायान शाखा को मानते हैं। ये लोग अपने मृत शरीर को 108 टुकड़ों में काटकर नदी के मछलियों और अन्य जल-जीवों को खिलाते हैं। 108 टुकड़े इसलिए काटे जाते हैं क्योंकि बौद्ध प्रार्थना माला की संख्या भी 108 होती है। वे यह भी मानते हैं कि:- "इन दो तिथियों के बीच कुल 108 बार प्रकाश अंधकार में परिवर्तित हुआ तथा उतनी ही बार विपरीत भी हुआ, साथ ही आत्मा की मुक्ति भी होती है। माना जाता है कि 108 टुकड़ों में काटने से आत्मा को शरीर से पूरी तरह अलग होने और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति पाने में मदद मिलती है।"[32]

उपन्यास का नायक का असली नाम 'दारगे नरबू' है, लेकिन दिरांगजंग गाँव में उसे आउ थांपा, आपा थांपा, आजांग थांपा के नाम से जाना जाता है। मोनपा भाषा में 'आऊ' का अर्थ है बड़ा भैया, 'आपा' का अर्थ दादाजी या पिता, 'आजांग' का अर्थ मामा और 'थांपा' का अर्थ है शव काटने वाला आदमी। उसी थांपा की जीवन कथा पर आधारित उपन्यास है।

दारगे नरबू लगातार कई वर्षों तक लाशों को काटने के कारण अपना मानसिक संतुलन खो देता है। इसी मानसिक स्थिति के कारण वह अपनी जीवित माँ को भी मरा हुआ समझकर काट देता है, पर उसे कुछ भी अहसास नहीं होता।

इस उपन्यास को पढ़कर चार्ली चैप्लिन की फिल्म 'मॉडर्न टाइम्स' (Modern Times) की याद आती है, जिसमें मशीन पर काम करते हुए चार्ली चैपलिन खुद को भूलकर एक मशीन बन जाता है और हमेशा नट टाइट करने का काम करता रहता है। यहाँ तक कि काम बंद हो जाने पर वह अपने साथियों के नाक-कान पर भी कसने लगता है। वैसा ही दारगे नरबू भी कई लाशों को काट-काटकर अपना मानसिक संतुलन खो देता है।

इस उपन्यास में एक प्रेम कथा भी है, जिसका अंत त्रासदी में होता है। 'दारगे नरबू' जिस लड़की (रिजोम्बा) को बचपन से चाहता है, उसे पा नहीं सका और न ही उसे भुला पाया। अंत में वह लड़की उसे मिलती है, लेकिन वह घायल अवस्था में होती है। जब वह मर जाती है, तो उसकी इच्छा के अनुसार नायक उसे नदी में प्रवाहित कर देता है। उसी समय नदी का बहाव बहुत तेज हो जाता है और नायक को भी साथ में बहा ले जाता है।

लेखक ने भूमिका में ही बताया है कि उपन्यास की मुख्य घटनाओं का कारण दो मुख्य ऐतिहासिक घटनाएँ हैं: प्रथम घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है- "1950 में भूकंप की वजह से काफी मोनपा लोगों की मौत हुई।"[33]

दूसरी घटना के बारे में लेखक बताते हैं कि-"1962 में तवांग का प्रशासन और तिब्बत-चीन घटनाएँ: तवांग का प्रशासन तिब्बत सरकार से भारत सरकार को हस्तांतरित किया जाना, तिब्बत पर चीन का कब्जा और दलाई लामा द्वारा कालचक्र पूजा इत्यादि घटनाएँ सत्य है।"[34]

यह उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली और जीवनी शैली में लिखा गया है। दारगे नरबू अपनी जीवन कथा में कई शवों को काटकर तवांछु नदी में बहा देता है और अंत में वह स्वयं भी नदी के प्रलय में बह जाता है। उपन्यास में लेखक यह भी बताते हैं कि चीन और तिब्बत की लड़ाई में कई

गांव वाले और दारगे नरबू के साथी- जैसे गम्बु, नावांग, जिगमे - मारे गए थे। उसकी प्रेमिका रिजोम्बा को भी गोली लगती है, लेकिन वह बच जाती है। गांव के कई लोगों को चीनी सेना ने मार दिया। कभी सड़क दुर्घटना में मरे शव, कभी भूकंप में मरे शव, तो कभी युद्ध में मरे शव - उन्हें काट-काट कर दारगे नरबू का मानसिक संतुलन पूरी तरह बिगड़ जाता है और वह पागल सा हो जाता है।

लेखक ने नायक दारगे नरबू के माध्यम से भारतीय सेना पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि उसकी दोस्त जिगमे जीवित रहना चाहती थी, लेकिन कायर सैनिक लोग उसे मारकर अकेला कैंप में छोड़ देते हैं और चीनी सेना से डरकर भाग जाते हैं। अगर वे लड़ नहीं सकते थे, तो उन्होंने चीनी सैनिकों से दुश्मनी क्यों ली? खुद तो मारे गए, साथ ही गांव वाले और उनके मित्रों को भी मौत के घाट उतार दिया।

उपन्यासकार लिखते हैं: "जब दारगे का पागलपन कुछ समय के लिए दूर हो गया था, तभी उसके जीवन का सबसे बड़ा हादसा हुआ। माता-पिता के साथ वह खेत में गया था। दोपहर में खेत में ही माँ की तबीयत बिगड़ गई। पिता ने दारगे की पीठ पर माँ को लादते हुए कहा, 'घर ले जाकर सुला देना। मैं पूजा करने के लिए लामा को बुलाकर लाता हूँ। दारगे माँ को पीठ पर लादकर घर लौट आया। रास्ते में बुखार से तप रहे माँ के शरीर की गर्मी पाकर उसे हथुंगला से जिगमे का गर्म शरीर लादकर लाने की बात याद आई। धीरे-धीरे वह माँ की बात भूल गया और उसे लगने लगा कि उसकी पीठ पर जिगमे की लाश है। अगले दिन वह माँ को सेना के डॉक्टर के पास ले गया। वह जीवित रहना चाहती थी। लेकिन कायर सिपाही लोग उसे मारकर कैंप में छोड़कर, चीनी सैनिकों के डर से भाग गए। अगर वे लड़ नहीं सकते थे, तो उन्होंने चीनी सैनिकों से वैर क्यों मोल लिया? खुद तो मारे गए, और उनकी वजह से दारगे के मित्र गम्बू, नवांग और जिगमे की भी मौत हुई। जिगमे मारी गई। गोली लगने के बाद उसे बहुत तकलीफ हुई थी, लेकिन दारगे उसे बचा नहीं सका। अब

उसकी लाश दारगे की पीठ पर है। उसे ले जाकर नामजांगछु नदी में सत्कार करना था। उसकी लाश को यूं ही फेंका नहीं जा सकता, नहीं तो उसकी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। दारगे ने जिगमे की लाश नदी के किनारे एक बड़ी चट्टान पर रख दी। फिर उसने दाव निकालकर सिर के टुकड़े-टुकड़े एक तरफ रख दिए। इसके बाद वह एक-एक करके अंग-अंग नदी में बहाने लगा।घर के बरामदे में दारगे जब अपनी जीवित माँ के टुकड़े काट रहा था, उसी समय देछिन लामा को लेकर आ गया। बेटे द्वारा दोरमा की हत्या करने के बाद उसके शरीर के टुकड़ों को बरामदे के नीचे जमा हुए कुत्तों की ओर फेंकने का वीभत्स दृश्य देखकर देछिन और लामा स्तब्ध रह गए। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि पागल बेटे ने यह कैसा सर्वनाश कर दिया। अगर अभी कुछ नहीं किया गया, तो वह इसी तरह तबाही मचाता रहेगा। मगर उग्र रूप धारण कर चुके दारगे के पास कौन जा सकता था?"[35]

यहाँ उपन्यासकार ने लिखा है कि ज़िंदा माँ को उनका मित्र जिगमे समझ कर काटना यह काल्पनिक है, यह सच्ची घटना नहीं है। उपन्यासकार ने बताया है कि बाकी जो लगातार शवों को काटना, शवों को काटकर दारगे का मानसिक संतुलन बिगड़ जाना ये सारी सच्ची घटना पर आधारित है।

दारगे नरबू की ऐसी जीवन कथा है जो बचपन में शव काटने वाला आउ थांपा आदमी बनकर रह जाएगा यह तो सोचा भी नहीं होगा। लेकिन परिस्थिति ने उसे ऐसा बना दिया कि वे न चाहकर भी आउ थांपा बन गया और समाज का ऐसा व्यक्ति बन गया जो देखते ही सब लोग उससे डरते और घृणा करते थे। दारगे नरबू की जीवन में अच्छाई और बुराई दोनों पक्षों को दिखाया गया है, अच्छाई में वो मेहनती, ईमानदार, जिम्मेदार आदमी, अच्छा पति, अच्छा प्रेमी और अच्छा पिता बनना चाहता है, दारू पीना छोड़ कर खेती करने लगता है, उनकी जीवन में कई सुधार आ जाते हैं।

बुराई में– दारू पीकर घर नहीं आते, रास्ते में या जंगलों में सो जाते थे, कई दिन, कई महीने नहीं नहाते थे। वे दारू के नशे में डूबा रहना, अपनी माँ को काट देना आदि।

इस पर उपन्यासकार ने लिखा है कि – "गुइसेंगमू और गूँगी लड़की को गाँववाले कभी-कभार ही देख पाते हैं। मगर आउ थांपा से दिरांगजंग गाँव के सारे लोग परिचित हैं और वह उन्हें रोज नजर आता है। लड़खड़ाकर कदम बढ़ाते समय उसके शरीर के कपड़े बेतरतीब नजर आने लगते हैं। पोशाक के नाम पर बेरंग हो चुकी ऊनी टोपी, सेना की पुरानी धुएँ रंग की फटी हुई कमीज के ऊपर कभी पुरानी लाल रंग की अरण्डी की आलीफ़ुडुंग[1] और कभी जगह-जगह से फटी हुई, पैबन्द लगी हुई गर्म काला छुपा। पैरों में बटन विहीन, घुटनों के पास पैबन्द वाला, कमर पर लपेटी गयी मार्किन कपड़े की बेल्ट या कभी सेना की पतलून और सबसे नीचे होते हैं रबर के गमबूट या जगह-जगह फटे हुए, हिस्से से पैरों की उँगलियों को बाहर दर्शाने वाले जंगली बूट। वह आदमी जिस तरह गन्दा है, उसके कपड़े-लत्ते उसी तरह अत्यन्त गन्दे, बदबूदार हैं। लोगों के शव काटते समय खून, पीव, सड़ा हुआ मांस, चर्बी, पेशाब, मल आदि के छींटों की वजह से कपड़ों पर एक मोटी परत जम चुकी है और उसके ऊपर अनगिनत जूँओं ने अपना प्रजनन क्षेत्र और विचरण भूमि तैयार कर लिया है। आउ थांपा की ऐसी गन्दी आदत की वजह से लोग कोई काम न होने पर उसके करीब नहीं जाते, घर में आने पर उसे अन्दर घुसने नहीं देते, बरामदे में या आँगन के सामने ही उसे बिठाकर उसकी माँगी गयी आराक मदिरा या लाउपानी पिलाकर उसे घर वापस भेज देते हैं।"[36]

इस उदाहरण से नायक दारगे नरबू के गरीबी पूर्ण जीवन को दिखाया गया है। मदिरा के बिना लाश नहीं काट सकते थे, मदिरा ही एकमात्र सहारा था शव काटने के लिए। लेकिन ज्यादा मदिरा पीना उनके लिए हानिकारक था। लाश काटना उनका लक्ष्य नहीं था।

उपन्यास में बताया गया कि जिस गाँव में लोग मरते हैं, वही गाँव से शव काटने वाला आदमी भी लेकर काटने देता है। लेकिन होरमांग गाँव में ऐसा नहीं करके दारगे के पिता और रिजुम्बा के पिता को ही लाश काटने देता था और बाद में दारगे पर भी लागू हो गया। इस पर गाँव के बड़े लोग और गाँव के लोग शिकायत करते हैं।

उपन्यासकार ने इस पर भी लिखा है कि- "नियम के अनुसार मृत व्यक्ति के परिवार वालों को ही शव काटने के लिए अपने गांव से थांपा को ढूँढकर लाना चाहिए। बात यह है कि आजकल आसपास और दूरदराज के सारे लोग देछिन और लेकी के हाथों शव कटवाने का काम करा रहे हैं। इसका नतीजा यह निकला है कि दोनों आदमी अपने-अपने घर के कार्यों को छोड़कर शव काटने में ही जुटे रहते हैं। दारगे और रिजोम्बा के पिता आजकल रोज शव काटने के लिए जाते हैं। इस तरह हमारे लोगों के घरों के काम अधूरे पड़े हैं। हम दोनों महिलाएं कितनी मेहनत कर सकती हैं? आप ही कोई सलाह दीजिए, नहीं तो बच्चों को भूखा ही रखना पड़ेगा।"[37]

दारगे को पहला शव काटने का जिम्मा सौंपा गया था, जब से मेमे चोरगेन कारमा थिनले मर जाता है तभी से दारगे शव काटने का काम शुरू करता है। इसी संदर्भ में उपन्यासकार लिखता है कि –"मेमे चोरगेन कारमा थिनले मरने से पहले अपनी अन्त्येष्टि करने की जिम्मेदारी देछिन और लेकी को सौंपी थी। मगर ये देखकर लामा ने कहा कि दारगे के पिता देछिन की राशि और मृत मेमे चोरगेन की राशि आपस में मिलती नहीं थी, इसलिए देछिन के लिए शव का सत्कार करना दूर की बात थी, लाश के साथ उसका घर से निकालना भी वर्जित था। इसलिए मेमे चोरगेन कारमा थिनले की अंत्येष्टि करने का दायित्व फूफा लेकी के साथ दारगे के कंधे पर आ गया। किशोरावस्था पार कर युवावस्था में कदम रखने वाले दारगे को पहली बार होरमाँग जाकर लाश काटने की जिम्मेदारी सौंपी गयी।"[38]

इस उपन्यास में पहले अध्याय में ही दारगे नरबू का परिचय दिया गया और उपन्यास की कथा कभी अतीत में तो कभी वर्तमान में चलती रहती है।

'मौन होंठ मुखर हृदय' (2017): 'मौन होंठ मुखर हृदय' येसे दरजे थोंगछी द्वारा असमिया भाषा में लिखा गया उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2004 में हुआ था। इसका हिंदी में अनुवाद दिनकर कुमार ने किया है, जिसका प्रकाशन 2017 में हुआ। लेखक बताते हैं कि यह उपन्यास पचास के दशक की बात है, जब अरुणाचल प्रदेश का नाम नहीं दिया गया था। उस समय लोग इसे उत्तर-पूर्वी सीमांत के नाम से जानते थे। इसी पूर्वी सीमांत के समय सड़क निर्माण का कार्य भी चल रहा था, और इसी सड़क निर्माण का जिक्र 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में किया गया है। इस पर उपन्यासकार लिखते है कि- "यह पचास के दशक की बात है। आज का अरुणाचल प्रदेश तब उत्तर-पूर्व सीमांत क्षेत्र के नाम से जाना जाता था। अंग्रेज़ी में (संक्षेप में) नेफ़ा।आजादी के बाद ही भारत सरकार ने इस पिछड़े इलाके में प्रशासन की व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए कदम उठाए। इन मुख्यालयों को मैदानी इलाकों से जोड़ने के लिए सड़क निर्माण की योजना बनाई गई। मगर तत्कालीन नेफ़ा में बाहर से मजदूरों को ले आना मुश्किल था। इसलिए इस कार्य में स्थानीय, स्थायी नागरिकों को ही लगाया गया। सड़क निर्माण के कार्य में हरेक गाँव के हरेक परिवार के एक-एक सदस्य को योगदान करना पड़ा था। कामेंग सीमांत विभाग के मुख्यालय बोमडीला को जोड़ने के लिए मिसामारी से सड़क निर्माण का काम शुरू किया गया। 1958 में चाकु नामक स्थान तक सड़क निर्माण का काम पूरा हो गया।"[39]

'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में बताया गया है कि नेफ़ा के समय में हिन्दी भाषा नहीं बोली जाती थी, बल्कि असमिया भाषा से गाँव के लोगों से संपर्क किया जाता था। जब सड़क बनाने

के कैम्प में पहली बार दिलीप सैकया ने हिन्दी और असमिस भाषा में अपना नाम बताया, तो गाँव वाले समझ नहीं पाए। जब उन्होंने अपना हाथ सीने पर रखकर परिचय दिया, तब जाकर गांव वालों को हल्का समझ में आया।

सड़क बनाने वाले शेरतूकपेन जनजाति से एक व्यक्ति रिंचिन नरबू और निशि जनजाति से तादाक नामक युवक, दोनों को सिर्फ असमिस टूटा-पूता हल्का बोलने और समझ में आता था। जिसके चलते दोनों जनजातियों के सरदार यही दो लोग बन गए। ऐसा कहा जा सकता है कि एक-दूसरे की भाषा को न समझते हुए भी उस समय सड़क का निर्माण किया गया था। उपन्यासकार ने भाषा समस्या और यथा-यथा की समस्याओं को भी उपन्यास में उल्लेख किया है।

इसी उपन्यास में लिखा है कि- ''तुम लोग किस गांव से आए हो? वे लोग एक-दूसरे की तरफ़ देखते हुए अपनी अद्भुत भाषा में कुछ बोलने लगे। मैं तुम लोगों का महरी बाबू हूँ। मुझे पहचान रहे हो या नहीं? लोगों ने कोई जवाब नहीं दिया। उनका शोरगुल बढ़ता गया। महरी बाबू। महरी बाबू। दिलीप ने सीने पर हाथ रखकर दोहराया, महरी बाबू। इस बार सभी उनकी तरफ़ हाथ उठाकर एक साथ चिल्ला उठे, हां, महरी बाबू! दिलीप ने समर्थन किया। इसके साथ ही वे लोग चिल्लाए -हाँ, महरी बाबू। मैं तुम लोगों का महरी बाबू हूँ। उन्हें चिंता हुई कि दल में कोई भी असमिया समझने और बोलने वाला नहीं है। अगर कोई असमिया समझने और बोलने वाला नहीं होगा, तो जरूरी आदेश-सलाह देने में कठिनाई होगी। फिर भी उनका कर्तव्य था कि उन लोगों के हाथों सड़क का निर्माण करवाया जाए। इसलिए दिलीप सैकिया मुस्कराते हुए इशारों के साथ उन लोगों से कुछ कहने की कोशिश करने लगे। युवक के आते ही वहां मौजूद लोग फुसफुसाने लगे। एक उम्रदराज आदमी ने उस युवक की तरफ उंगली से इशारा करते हुए आदेश के लहजे में कुछ कहा। फिर दिलीप सैकिया से कहा- रिंचिन नरबू! महरी बाबू के इर्द-गिर्द मौजूद लोगों ने रिंचिन के लिए जगह बना दी। उनके बीच

का एक आदमी मैदान की भाषा समझता और बोल भी सकता था, इसलिए बाबू और साहबों के साथ अब अच्छी तरह विचारों का आदान-प्रदान हो पाया। जय हिंद, साहब! दिलीप सैकिया के पास जाकर रिंचिन नरबू ने हाथ जोड़ते हुए कहा, जयहिंद। क्या तुम असमिया बोलना जानते हो? जानता हूँ, साहब। थोड़ा-थोड़ा जानता हूँ।''[40]

इस उपन्यास में में बाल विवाह वर्णन भी है। उपन्यास की नायिका यामा है। उसकी कीमत भी उसके माता-पिता बचपन में ही लेकर खा जाते हैं और मर जाते हैं। यामा को न चाहते हुए भी, जिसने उसकी कीमत दी थी, उसी के साथ शादी करके रहना पड़ता है। उपन्यास में प्रेम का भी आकर्षण है। इस उपन्यास की नायिका का दिल सड़क निर्माण का कार्य करने वाले एक मजदूर पर आ जाता है। सड़क निर्माण का कार्य अलग-अलग जनजाति के मजदूर लोगों को एकता के सूत्र में जोड़ने का भी कार्य करता है।

इस उपन्यास में महरी बाबू कहते हैं कि- "हम सभी मिलकर जिस सड़क का निर्माण कर रहे हैं, वह सड़क जिस तरह पहाड़ के साथ मैदान को जोड़ देगी, ठीक उसी तरह तुम ट्राइबल लोगों के दिलों को जोड़ कर एक जाति बनाएगी, एक ऐसा इंसान बनाएंगे। हम जानते हैं कि तुम लोग एक जैसे पहाड़ी आदमी होकर भी एक दूसरे को अच्छी तरह नहीं जानते। सड़क बन जाने के बाद तुम लोगों को एक दूसरे को अच्छी तरह जानने के लिए, एक दूसरे के पास आवाजाही करने के लिए, व्यापार-वाणिज्य करने के लिए आसानी हो जाएगी।"[41]

इस उपन्यास में तीन अलग-अलग समुदाय के लोगों को दिखाया गया है- एक, शेरतुकपेन जनजाति से, जिसका पात्र है: बांगमू, छीरिंग जांगमू, रिंचिन नरबू, दैमा दोरजी आदि। दूसरा, निशि जनजाति से, जिसका पात्र हैं: तादाक, टाकार, मामा, यादो, नावांग, टालो आदि। तीसरा, असमिया

से, जो दिलीप सैकिया हैं, उन्हें महरी बाबू नाम दिया गया है। उपन्यास की कथा सड़क निर्माण के ईद-गिद घूमती है। इस उपन्यास में रिंचिन नरबू यामा से आकर्षित हो जाता है।

उपन्यास में लिखते हैं कि- "रिंचिन नरबू एकटक उस काली पोशाक वाली युवती के चेहरे को देख रहा है। इस वीरान, घने जंगल में, इतनी खूबसूरत युवती वन मानव के सिवा और कौन हो सकती है? तुम लोग यो ही डर गई थी। देखा नहीं वह वन मानव नहीं है। वह निशी लड़की है। हमारी तरह सरकार उसे भी यहाँ सड़क बनाने के लिए लेकर आई है।''[42]

इस उपन्यास में शेरतूकपेन जनजाति की मदिरा को लाऊपानी नाम दिया गया है, यानी स्थानीय परंपरागत पेय का भी उल्लेख किया गया है। इस संदर्भ में रिंचिन और दिलीप बाबू का कथोप कथन इस प्रकार हैं- "लाऊपानी है, पियो बाबू! हमारे पास तुमको देने के लिए और कुछ नहीं है।" रिंचिन ने विनम्रता के साथ अनुरोध किया। "किस चीज़ से बनाई है? चावल से?" "नहीं, बाबू। चावल का नहीं, मकाई का लाऊपानी है।" मदिरा पीकर दिलीप सैकिया ने थके हुए शरीर में शक्ति संचार होते हुए महसूस किया। "हमारे लोग जिस तरह मदिरा को बुरी चीज़ समझते हैं, शायद यह इतनी बुरी चीज़ नहीं है। इसलिए अत्यंत परिश्रमी ये पहाड़ी जनजातीय लोग मदिरा पीते हैं, शरीर में शक्ति हासिल करने के लिए। बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष- सभी मदिरा का सेवन करते हैं, मगर कोई नशे में बहकता नहीं। जबकि हमारे लोग ज़रा-सी शराब पीते ही नशे में किस तरह बहकने लगते हैं।"[43]

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी में सृजित उपन्यास:

मातमुर जामोह (2015): 'मातमुर जामोह' जुमसी सिराम का लिखा हुआ ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2015 में हुआ है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाया गया है। सन्

1911 के एंग्लो-अबोर युद्ध की सच्ची घटनाओं को आधार बनाया गया है। यह एंग्लो-अबोर युद्ध कॉमसिंग गाँव, सियांग जिला, अरुणाचल प्रदेश में हुआ, जहां अंग्रेजी कप्तान नोएल विलियमसन और उनकी सहायकों, साथियों की हत्या की गई। ऐसा माना गया है कि यह हत्या मातमुर जमोह और उनके साथियों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए की थी।

इस पर डॉ. केनजुम बागरा ने 'मातमुर जामोह' उपन्यास में लिखा है कि- "सन् 1911 के एंग्लो-अबोर युद्ध की ओर ले जाने वाली घटना की कहानी है। कॉमसिंग गाँव में अंग्रेजी कप्तान नोएल विलियमसन की हत्या पर कई प्रकाशित हो चुके हैं। लेकिन उन प्रकाशनों में मातमुर जमोह और उनकी टीम को उस समय के स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बहुत कम दर्शाया गया है। मुझे आशा है कि यह 'मातमुर जामोह' उपन्यास मातमुर और उनकी टीम के उन प्रयासों का मूल्यांकन करने में सहायक होगी, जिन्होंने बाहरी लोगों से अपनी मातृभूमि की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी।"[44]

जुमसी सिराम और मातमुर जामोह आदी जनजाति से संबंधित है। इस उपन्यास में मातमुर की जीवन कथा को दर्शाया गया है। अंग्रेजों ने मातमुर जामोह को अंग्रेजी कप्तान नोएल विलियमसन को मारने की सजा के रूप में कारावास में बंद कर दिया था। लेकिन मातमुर के साथ बाद में क्या हुआ, यह आज तक कुछ पता नहीं चल पाया है। मातमुर के सारे दोस्त अपनी-अपनी सजा काटकर वापस लौट आए, पर मातमुर का ही कुछ पता नहीं चला। मातमुर अपनी पत्नी लोसुम से उसकी मृत्यु से पहले कहते हैं: "वे मुझे एक अज्ञात स्थान पर ले जाएँगे, जहाँ से लौटना नहीं होगा। वहाँ मेरी लाश को ढकने वाला कोई नहीं होगा। मेरी लाश के लिए कपड़े बिछाने वाला या दहाड़ मार कर रोने वाला भी कोई नहीं होगा।"[45]

उपन्यास में मात्क्याङ के पिता मातमुर जामोह की कथा सुनाते हैं। अंग्रेजों ने मातमुर जामोह को काला पानी जेल में ले जाया था, लेकिन वहाँ ले जाकर उनके साथ क्या हुआ, इसका कोई पता नहीं चला। सभी गाँव वाले और मातमुर जामोह के दोस्त अपनी सजा काटकर घर लौट आए, लेकिन मात्क्याङ के पिता मातमुर जामोह के बारे में कुछ नहीं जान पाए। इस कारण मात्क्याङ पिता की याद में अकेला पहाड़ी पर बैठकर विलाप करने लगता है।

उपन्यासकार लिखते हैं: "मात्क्याङ के पिता, जिसका नाम मातमुर जामोह था, ने अपने गाल को मारने वाले की ओर नहीं फेरना चाहा और अपने ऊपर हुए अपमान को चुपचाप सहना भी नहीं चाहा। इस कारण अंग्रेज सरकार उसकी (मातमुर की) जान की दुश्मन बन गई। मातमुर जामोह ने तो पूरे 'आबोर (आदी)' को अपना परिवार माना था, लेकिन 'आदि' ही के कुछ लोग अंग्रेजों की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर उसके पिता के दुश्मन बन गए। इस तरह, मात्क्याङ अपने परिवार का नाश होते देखकर चुपके से ही निर्जन पहाड़ी पर अकेला विलाप करने लगा।"[46]

मातमुर जामोह एक सीधा-सादा और जिम्मेदार व्यक्ति थे। इसके साथ ही वे नोएल विलियमसन का बहुत आदर और सम्मान भी करते थे।

उपन्यासकार लिखते हैं:कि- "अपनी भेंट के साथ ज्यों ही मातमुर जामोह ने अंग्रेज अधिकारी के तंबू के भीतर दाखिल होने की चेष्टा की, कप्तान नोएल ने उसे तिरछी नज़रों से देखा। फिर उसे भीतर प्रवेश करने से रोकते हुए कहा, 'पहले मैं नहा-धोकर विश्राम कर लूँ, इसके बाद देख लूँगा। मातमुर के कदम वहीं रुक गए और वह दरवाजे के समीप कई घंटे तक बेसब्री से इंतजार करने लगा। उसके साथ यागरुङ तथा दूर के गाँव वाले भी खड़े रहे। जीसी और कारयोम ने बार-बार मातमुर से निवेदन किया कि उनकी समस्या का समाधान अभी, उसी समय, नोएल साहब द्वारा सूर्य डूबने से पहले ही किया जाना चाहिए, क्योंकि वे सुदूर के गालो गांव से आए हैं और शाम ढलते ही

अंधेरा छा जाएगा।"कप्तान नोएल मातमुर के प्रस्ताव पर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे। इसलिए मातमुर ने कारयोम और जीसी के पशु संबंधी विवाद को फिर से दोहराया और विनम्र भाव से विलियमसन से कहा: "श्रीमान, परम निवेदन है कि आप किसी प्रकार का विलंब न करके हमारी प्रार्थना यथाशीघ्र स्वीकार करें। हम आपके आदेशों का पालन करेंगे; हम इसी के इंतजार में रुके हुए हैं।"इस जंगली के हठ से क्रोधित होकर विलियमसन बोला:"दरअसल, मुझे तुम्हारी भेंट स्वीकार नहीं है। तुम एक कोढ़ी हो। मुझे तुमसे सख्त घृणा है। तुम एक चर्म रोगी हो। दूर हो जाओ मेरी नजरों से।"विलियमसन ने कारयोम और जीसी को भी तीक्ष्ण नजरों से देखा। वे भी उसके समक्ष खड़े नहीं रह सके और एक ओर हट गए। क्रोध में, विलियमसन ने मातमुर को जोर से चांटा मारा और उसकी लायी हुई मुर्गी को भी उसके ऊपर दे मारा। "तुम तो कुत्ता हो। कुत्तों के गाम (मुखिया) हो। मुझे तुमसे घृणा है। ओझल हो जाओ मेरी नजरों से।"जिस व्यक्ति को उसने सम्मान देना चाहा और जिसे उसने प्यार किया, वही उससे घृणा करता है। मातमुर अत्यंत दुखी हुआ। वह कुछ कहने ही वाला था कि विलियमसन ने उसे धक्के मारकर अपने तम्बू से बाहर निकाल दिया और क्रोधित होकर बोला:

"तुम्हें तो बहुत ही घृणित रोग लगा हुआ है। तुम्हारी मेरे तंबू में घुसने की हिम्मत कैसे हुई?" नोएल विलियमसन के इस अभद्र व्यवहार से जीसी और कारयोम भी दंग रह गए। वहाँ कई स्त्री-पुरुष और जवान भी मौजूद थे। वे विलियमसन के बदलते तेवर और क्रोध को देखकर डर गए और किसी ने कुछ नहीं कहा। मातमुर के शरीर में पिछले कई दिनों से मामूली सा सफेद दाग का रोग था, जो उस समय समस्त आदी लोगों में आम पाया जाता था। दरअसल, वह कोई चर्म रोगी नहीं था। कप्तान नोएल विलियमसन की उस व्यक्ति से अजीब-सी नफरत थी, जिसके शरीर पर सफेद धब्बे या धारियाँ होती थीं। क्रोध से मातमुर की मुट्ठियां भींच गई और चेहरा तमतमा उठा। मारे क्रोध के, वह विलियमसन की ओर झपका, लेकिन द्वारपाल ने उसे पकड़ लिया और गार्ड ने धक्के देकर बाहर

निकाल दिया। मातमुर ने इस्तीफे के तौर पर अपना लाल कोट विलियमसन के सम्मुख पटक कर कहा:"अपना लाल कोट वापस ले लो, जिसे नीधाम मिगोम (साहब) ने मुझे प्रदान किया था।"यह कहकर वह पैर पटकता हुआ तेजी से वहाँ से चला गया। विलियमसन ने मातमुर को बहुत दूर जाते हुए देखा और अपने आप से बुदबुदाया:"यह दबा-कुचला, पिछड़ा हुआ, दूषित तथा अनपढ़, अजीब पागल आदमी है। उसने मेरे शिविर के अंदर घुसने की हिम्मत कैसे की?"रातभर मातमुर को नींद नहीं आई। अपनी ही जन्मभूमि पर एक परदेशी के द्वारा अवैध रूप से घुसने और अपने अपमान का अनुभव करने पर वह तिलमिला उठा और शीघ्र ही प्रतिशोध लेने के लिए उतावला हो गया। उसने यह प्राण कर लिया कि उस 'मीलून (गोरे व्यक्ति)' की अर्थी इस देश से ही निकलेगी। मातमुर ने महसूस किया कि ये 'मीलून' ऊपर से साफ, चिकने और भोले-भाले लगते हैं, लेकिन भीतर से सड़े-गले, नीच, कुटिल और खूंखार हैं। उन्होंने आत्म-प्रश्न किया:"क्या मुझे इन परदेसियों के सम्मुख झुक जाना चाहिए? एक गुलाम की तरह उनके सामने अपना दुम हिलाऊँ मैं?"उस परदेसी ने उनकी ही धरती पर आकर उन्हें थप्पड़ मारा, अपमान किया और बेशर्म साबित हुआ। मातमुर ने महसूस किया:"हम 'मिनयोंग (सच्चे लोग)' हैं।"मातमुर का खून खौल उठा; उसके अंदर छिपा ज्वालामुखी सुलगने लगा। उसे अपने अपमान का बदला लेने के लिए विलियमसन को जान से मारने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। उसने ठान लिया कि अब से इन्हें रोकना आवश्यक है। अतः, पंख पसारने से पहले उन्हें काटना जरूरी है। मातमुर ने स्वयं कहा:"आज उसने मुझ—मातमुर को इस तरह अपमानित किया है, तो कल किसी अन्य को क्या नहीं करेगा?"[47]

यह पूरी स्थिति इस बात का भी संकेत है कि ब्रिटिश सरकार उन दिनों पहाड़ी जनजातियों को नीच दृष्टि से देखती थी और उन्हें नीचे से नीचे दर्जे के काम पर रखती थी। समय तेजी से बीता। इस प्रकार लगभग दो वर्ष बीत गए। मातमुर के शरीर का दाग भले ही मिट गया हो, पर दिल का दाग,

जिसे नोएल विलियमसन ने लगाया था, नहीं मिट सका। इस उपन्यास में अंग्रेजों की 'फूट डालो, राज करो' की नीति का उल्लेख किया गया है, साथ ही जनजातियों का धर्म परिवर्तन कराने का उनका एकमात्र लक्ष्य बताया गया है। उपन्यासकार ने इसे उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट करते हुए लिखा है:

"मैं तो चाहता हूँ कि इन जंगलियों से मित्रता स्थापित कर अपना जो कार्य उनसे करवाना चाहे, उनसे करवा लिया जाए। इन लोगों पर कब्जा करके जो माल उनसे खरीदना या बेचना चाहिए, इसका भरपूर लाभ उठाना चाहिए। कप्तान नोएल की बातों पर अमेरिकी मिशनरी ने कोई रुचि नहीं ली, क्योंकि उनके भारत आगमन का एकमात्र उद्देश्य आदिवासियों का धर्म परिवर्तन करना तथा उन्हें साक्षर बनाना था। जैकमैन ने पूर्वोत्तर भारत में मिन्योंग, गालो, पाशी, पादाम, असमिया, सिंफौ, खामती, देऊरी, ईदू, मिश्मी, डिगारु तथा नागों की कुछ जनजातियों के संग रहकर उनके चाल-चलन, व्यवहार, जीवन-पद्धति, संस्कृति, रीति-रिवाज तथा भाषा-साहित्य का अत्यंत ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। उनके सानिध्य में रहकर उन्होंने उनका विश्वास और दिल जीत लिया। जैकमैन स्वयं एक सच्चरित्र, निष्ठावान तथा उदार विचार वाला ईसाई मिशनरी था। ब्रिटिश सत्ता या साम्राज्य का उससे कोई लेना-देना नहीं था, हालांकि ब्रिटिश सत्ता के पीछे-पीछे वह धर्म परिवर्तन कराया और जनजातियों को साक्षर बनाने के लिए सक्रिय रूप से कार्य करता रहा। अरुणाचल प्रदेश के लिए रेव. जैकमैन ही सर्वप्रथम आने वाले अमेरिकी ईसाई मिशनरी थे। जिन्होंने 1912 ई० में शादिया में एक मिशन स्कूल की स्थापना बड़ी निष्ठा के साथ की। अमेरिकी मिशनरी के बाद अरुणाचल प्रदेश (नेफा) की जनजातियों को साक्षरता प्रदान करने का कार्य स्वतंत्र भारत ने संभाला। ईसाई मिशनरी ने 1912 ई० से 1953 ई० तक उस मिशन स्कूल का सफलतापूर्वक संचालन किया, जिससे अरुणाचल प्रदेश के निरक्षर लोग काफी लाभान्वित हुए।"[48]

उसके बाद दिनांक 31 मार्च 1911 को कमसिंग गाँव में मातमुर, नोएल विलियमसन को मार देता है साथ ही सालों का प्रतिशोध पूरा कर लेता है। अपमान का बदल ले लेता है, साथ में दुश्मन को मारकर राहत का एक सास भर लेता है।

“31 मार्च 1911 सुबह के दस बज चुके थे। विलियमसन अचानक ही के-बांग के लोगों को देखकर भयभीत हुआ। के-बांग जनों के कंधों पर लम्बी-लम्बी तलवार लटक रही थी और आँखों में वध की क्रूरता। ऐसा लगता था उनकी आँखों से चिंगारियाँ निकल रही हैं। उन्हें देखकर विलियमसन का गला न उतरा तो उसने लम्बेंग गाम से कहा- ‘मुझे ऐसा लगता है कि इन लोगों को मैंने कहीं देखा है।’‘ये लोग दूर से आये हैं। के-बांग से। आप ही की प्रजा है। ‘-लम्बेंग गाम ने बताया। ‘के-बांग के आदमी यहाँ क्यों आये हैं?’-विलियमसन को शंका हुई।‘इन लोगों के हाथों में आक्रामक हथियार क्यों है?’‘इस प्रकार के हथियार को रखना के-बांग के निवासियों की बहुत ही प्राचीन परम्परा है। ‘लेकिन मिगोम (साहब), के-बांग के लोग भी हमारे अतिथि हैं। हम-कमसिंग वासी सदियों से अतिथि सत्कारी हैं।’ उसने बड़े वेग से मोसुप(आदी लोगों की रंगशाला) की ओर बाढ़ना शुरू किया। मोसुप कुछ हटकर था। इतने में के-बांग के नवगन्तुक मात्मुर जामोह विलियमसन के इर्द-गिर्द कई आदमी खड़े थे। विलियमसन के कदम जहाँ के तहाँ रुक गये। उसकी धड़कन अचानक तेज हो गयी। विलियमसन की बगल में लोटियांग तलोह, लोमलों, दारांग और बापोक जेरांग भी खड़े थे। मातमुर ने संकेत स्वरूप अपनी म्यान से दाव को निकाला तथा पास में पड़े बाँस का एक टुकड़ा उठाकर उसे दाँव से नुकीला करने लगा। इसका मतलब यह था कि अब अधिक सोच-विचार का वक्त नहीं है। इसी क्षण ही उस पर टूट पड़ना चाहिए। सहसा मातमुर ने तलवार से विलियमसन के पैर पर झटके के साथ प्रहार किया। विलियमसन पहले से ही उसको संदेह की दृष्टि से देख रहा था। इसलिए वह मातमुर के उठने-बैठने पर कड़ी नज़र रखे हुए था। कप्तान नोएल ने भी बिजली की गति से मातमुर के

वार को रोकने की कोशिश की और उसकी गर्दन को पकड़ने का असफल प्रयास किया। पर मातमुर उस पर वार-पर-वार करता रहा। इतने में आक्रमणकारियों के घेरे से भाग निकलने की कोशिश, लेकिन मातमुर जामोह ने उसका सिर काटकर धरती पर गिरा दिया। इस प्रकार उसने अपने वर्षों पहले के अपमान का बदला ले लिया।

विलियमसन को मार गिराने के बाद आक्रमणकारियों ने (योजना के अनुसार) बहुत ही ऊंची आवाज में 'आग-आग! बस्ती में आग!' कहकर चिल्लाना शुरू कर दिया। क्योंकि उन्होंने पहले से ही तय कर लिया था कि सर्वप्रथम विलियमसन की हत्या कर डालेंगे, तत्पश्चात लड़ाई शुरू होने के संकेत स्वरूप 'आग-आग' कहकर चिल्लाएंगे।चिल्लाहट सुनकर कमसिंगवासी अपने-अपने घरों को आग से बचाने के लिए दौड़ पड़े। इस प्रकार उनका ध्यान इस हादसे से हट गया। कुछ लोगों को यह भी मालूम नहीं था कि उसके अपने गाँव में क्या घटित हो रहा है। इसलिए कुछ लोग घबराए हुए अपने-अपने घरों में घुस गए।इतने में आक्रमणकारी तम्बू और मोसुप में घुस चुके थे। उन्होंने अन्य लोगों पर भी जहाँ जो मिला हमला करना शुरू कर दिया। अंगरक्षक व सैन्यदल, कुली तथा नोएल के निजी सेवक को कुछ अवसर न दिया गया। के-बांग के लोगों ने सीधे मारकाट करना शुरू कर दिया।"[49]

'मातमुर जामोह' उपन्यास पर वीर भारत तलवार जी ने लिखा है कि यह उपन्यास ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है, जहां अंग्रेज अफसर को मार देने वाले आदिवासी जनजाति के जीवन को उपन्यास में दिखाया गया है। साथ ही यह उपन्यास दिलचस्प और रोमांचकारी भी है।

'मेरी आवाज़ सुनो' उपन्यास में लिखते हैं- "ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित यह उपन्यास बहुत दिलचस्प और रोमांचकारी है। इसमें ब्रिटिश औपनिवेशिक दौर में एक अंग्रेज अफसर की हत्या करने वाले ट्राइबल व्यक्ति के जीवन को उपन्यास का आधार बनाया गया है।"[50]

उस रात की सुबह (2018): 'उस रात की सुबह' उपन्यास की लेखिका तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' हैं। इसका प्रकाशन 2018 में हुआ है। इस उपन्यास में बेमेल विवाह का चित्रण किया गया है। लेखिका ने नारियों की पीड़ा, दर्द, सहनशीलता और उनकी कई तरह की समस्याओं को उठाया है। भूमिका में लेखिका लिखती है- "नारी सशक्तिकरण का अर्थ यह नहीं है कि नारी को केवल शारीरिक तौर पर ही सशक्त बनाना बल्कि इसका एक तरीका यह भी है कि नारी के प्रति लोगों की दृष्टिकोण में एक सकारात्मक और खूबसूरत बदलाव लाना।"[51]

लेखिका आगे लिखती हैं—"कथा नायिका यापी के रूप में और कोई नहीं बल्कि उन तमाम लाचार नारियों की पीड़ा रूपी, रुदन-क्रंदन है, तड़प है, जिन्होंने इस दर्द को सहा है और सहते आए हैं, पर कभी उफ्फ तक नहीं की, क्योंकि उन्हें बताया गया है कि समाज का यही नियम है।"[52]

उपन्यास में बेमेल विवाह का चित्रण किया गया है, साथ ही बहु पत्नियों के आपसी पीड़ा को भी दिखाया गया है। तातो की पहली पत्नी याकेन है, दूसरी पत्नी यातर है और तीसरी पत्नी के रूप में यापी से विवाह करने की तैयारी चल रही होती है। तभी पहली और दूसरी पत्नी (याकेन और यातर) की बातचीत चलती है।

यातर कहती है कि, -"हम दोनों मिलकर पति का खूब विरोध करेंगे और उस नई सौत की खूब पिटाई करके उसे यहाँ से भगा देंगे। चलिए दीदी, आप सौत की पिटाई में मेरा साथ दीजिए। पति अगर बात न माने तो हम दोनों उसकी भी पिटाई कर देंगे।"तभी याकेन पूछती है- "बहुत तकलीफ हो रही है न तुझे?"यातर कहती है- "हां दीदी! देखो न, वर्षों पहले जिसके लिए मैंने अपने घर से बगावत कर घर से भागी, अपने माता-पिता को भुला दिया, अपने संगी साथी सबका साथ छोड़ा... जिस घर

को वर्षों बड़े प्यार से बसाया और खून-पसीने से सींचा, उसे उजड़ते हुए क्या हम ऐसे ही देखते रह जायेंगे?"तभी याकेन जवाब देती है- "और तुमने जो मेरा घर तोड़ा उसका क्या? मेरी गृहस्थी उजाड़ी उसका क्या? और तुमने जो अवैध रूप से मेरे सारे अधिकार छीन लिए उसका क्या? वर्षों पहले इसी तरह मैं भी रोई, गिड़गिड़ाई जब तुम इस घर में मेरी जगह छीनने आ रही थी। तब मेरे ही पति, मेरे ही बच्चों के पिता ने मुझे चेतावनी दी थी कि ज्यादा विरोध करूँगी तो मुझे अपना घर छोड़कर जाना होगा। मेरे गोद में दूधमुहा बच्चा, ताई समेत छोटे-छोटे मेरे पाँच बच्चों से मुझे वंचित कर दिया जाएगा।"[53]

'उस रात की सुबह' उपन्यास में अरुणाचल प्रदेश की स्त्री संवेदनाओं को केंद्र में रखते हुए अरुणाचल की सामाजिक समस्याओं पर उल्लेख किया गया है। उपन्यासकार तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' अपनी बात रखते हुए 'काताम' पुस्तक में लिखती हैं- "इस उपन्यास को रचने के पीछे भी मेरा उद्देश्य हमारे यहाँ का सामाजिक परिवेश ही था। विशेषकर नारी के प्रति समाज में लोगों का पक्षपाती नजर ही था जिसने मुझे उकसाया कि उस पर चिंतन मनन करने के लिए और लोगों का उस ओर ध्यानाकर्षित करने के लिए। नारी के प्रति मेरी अपनी जो संवेदनाएँ हैं, जो भावनाएँ हैं, उन सबको शब्दों में पिरोकर इस उपन्यास की रचना की है।"[54]

सियांग के उस पार (2018): 'सियांग के उस पार' उपन्यास के लेखक दयाराम वर्मा हैं। इसका प्रकाशन 2018 में हुआ है। यह उपन्यास पूर्व-दीप्ति शैली (फ्लैशबैक) में लिखा गया है। इसमें अरुणाचल प्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य, संस्कृति, सामाजिक स्थिति, मैंम्बा जनजाति की नारियों की खूबसूरती, आदिवासी और गैर-आदिवासी के बीच पनपने वाले प्रेम, विश्वास, अपनापन, लगाव आदि का चित्रण किया गया है। उपन्यास सन् 1986 के समय को दर्शाता है, जब इस प्रदेश को

अरुणाचल प्रदेश नाम नहीं दिया गया था। 20 फरवरी 1987 को अरुणाचल प्रदेश स्वतंत्र राज्य बना। इससे पहले इसे नेफा के नाम से जाना जाता था।

उपन्यास की कथा की शुरुआत मेक्लिंग बस्ती से होती है। इस उपन्यास के नायक बिक्रम हैं और नायिका निसमी। दोनों की प्रेम कथा बेजोड़ है; दोनों एक दूसरे से शादी करने का सपना संजोते हैं। लेकिन प्रकृति को कुछ और ही मंजूर होता है। मिनी की जान बचाने के लिए तीन दिन पैदल चलते हुए, कभी जोंक से, तो कभी पहाड़ों से, कभी नदी से, कभी बारिश से, तो कभी जंगली जानवर से लड़ते हुए बिक्रम निम्मी के गाँव पहुंचता है। लेकिन मिनी देबांग का इंतजार कर रही होती है। बिक्की को अंतिम बार देखकर मिनी को संतोष होता है। फिर वह इस दुनिया को छोड़ कर चली जाती है। गाँव के लोगों में पुजारी के कहने पर अंधविश्वास छा जाता है कि बिक्की में देबांग की आत्मा प्रवेश कर गई है। इसलिए यह व्यक्ति गाँव के लिए खतरनाक है। गांव वालों के इस अंधविश्वास के कारण बिक्की और निम्मी को अपने प्यार को त्यागना पड़ता है।

अरुणाचल प्रदेश की प्राकृतिक सौंदर्य की महक, सच्चा प्रेम, मित्रता, त्याग और समग्र जीवन की झलक इस उपन्यास में स्पष्ट रूप से नजर आती है। जीवन में कुछ घटनाएं ऐसी छाप छोड़ जाती हैं, जिन्हें चाह कर भी भुलाया नहीं जा सकता। ऐसे ही अनुभव उपन्यासकार दयाराम वर्मा के साथ होते हैं, जो वे अपने 'सियांग के उस पार' उपन्यास में लिखते हैं- "कई बार जीवन में कुछ पल कुछ मकाम, चाहे छोटे ही क्यों न हों, कभी धुंधली न पड़ने वाली, अविस्मरणीय छाप छोड़ जाते हैं। प्रस्तुत उपन्यास सियांग घाटी के ऐसे ही कुछ अमिट निशानों को शब्दों में ढालने का मेरा एक विनम्र प्रयास है।"[55]

'सियांग के उस पार' उपन्यास में कल्पना और यथार्थ को आसान भाषा में समझने का प्रयास किया गया है। साथ ही इसमें मेम्बा जनजाति की नायिका (निसमी) और वायु सैनिक नायक (बिक्रम) दोनों की प्रेम कथा पाठक के मन में गहरी भावुकता भर देती है।

उपन्यास में कथा को लेकर गोकुल सोनी लिखते हैं- "कहानी में जहां सात्विक प्रेम की पूर्ण अनुभूति है, वहीं त्याग, समर्पण, संस्कार और परम्परागत मान्यताओं के प्रति आग्रह व दूसरों के लिए जीवन जीने की प्रेरणा-शक्ति का चुम्बकत्व भी हैं।"[56]

'सियांग के उस पार' उपन्यास में एयर कमोडोर आर. के. पाल ने अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है- "वहाँ की अग्रिम हवाई पत्तियों, ट्रांसपोर्ट विमान ए. एन. -32, मौसम व रेडियो संचार पद्धति, बारिश में आने वाली परेशानियों, उड़ान संबंधी अन्य पहलुओं और वायुसैनिकों के रहन-सहन को, तथ्यात्मक प्रांजलता के साथ प्रस्तुत किया है। उपन्यास में, कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार, वायु सेना में प्रचलित अंग्रेजी भाषा के तकनीकी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है लेकिन इस रूप में कि आम पाठक भी सहजता से समझ सकें।"[57]

'सियांग के उस पार' उपन्यास को व्यावसायिक उपन्यास, फिल्मी दंग का उपन्यास, उपन्यास में कसाव की कमी, नायक नायिका का नाम बदल देना, अचानक प्रेमी का गायब हो जाने से प्रेमिका का पागलपन होना, फिर प्रेमी जैसे दिखने वाले आ जाना फिर प्रेमीका की बीमार ठीक होने का संभावना, अंधविश्वास के चलते दो प्रेमी और प्रेमिका का अलग हो जाना फिर डायरी के माध्यम से मिल जाना आदि।

इस उपन्यास के बारे में डॉ. संजीव मंडल ने 'हिन्दी कथा- साहित्य में पूर्वोत्तर भारत' पुस्तक में समीक्षा के तोर पर लिखते हैं कि- "यह उपन्यास व्यावसायिक दृष्टिकोण से लिखा गया है ।

व्यावसायिक उपन्यासों की तरह सस्ते कौतूहल की सृष्टि, संयोग से काम लेना, फिल्मी दंग से कथा को आगे बढ़ाना जैसे विशेषताएँ उस उपन्यास में भी हैं। इस उपन्यास में कसाव की कमी है। 261 पन्ने के बड़े आकार वाले इस उपन्यास में कसावट होती तो यह बड़ी आसानी से 100 -120 पन्नों में सिमट जाता। कलात्मक की दृष्टि से यह कृति आश्वस्त नहीं करती। प्रेमी के अचानक गायब हो जाने पर प्रेमीका का पागल हो जाना, प्रेमी जैसे दिखने वाले व्यक्ति के सामने आने पर उसके ठीक होने की संभावना, नायक का उस प्रेमी जैसे दिखना, नायक- नायिका का अंधविश्वास के चलते जुड़ा होना, दोनों का अपना नाम बदल लेने का फैसला लेना, जैसी कई ऐसी बातें हैं, जो फिल्मी तरीके ही कहे जायेंगे। इसमें अरुणाचल का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक कोई भी पक्ष सामने नहीं आता।"[58]

डॉ. संजीव मंडल ने जो लिखा है वह कुछ संदर्भ में सही है, जैसे फिल्मी तरीका से हमशक्ल का प्रेमी होना और अंधविश्वास के कारण अपना प्रेम त्याग देना आदि है। कुछ संदर्भ में गलत है, जैसे अरुणाचल से संबंध कुछ नहीं है, ऐसा नहीं है; उपन्यास में अरुणाचल प्रदेश का प्राकृतिक, सांस्कृतिक, बौद्ध मंदिर, जनजाति खान-पान, आर्थिक स्तर पर चाय-पत्ती की खेती, झूम खेती, सियांग नदी, पुल, अरुणाचली टोन वाली भाषा, अरुणाचल की विकास आदि पर उल्लेख किया गया है।

इसी उपन्यास पर डॉ. क्षमा पाण्डेय ने भी लिखा है कि- "उपन्यास की मुख्य धुरी वायु सेना तथा सियांग नदी है। बौद्ध धर्म का प्रभाव वहाँ स्थान-स्थान पर फहरने वाली प्रार्थना ध्वजाओं से इंगित होता है। सियांग नदी के एक ओर मेकिंलंग तथा दूसरी ओर नियामदिंग (काल्पनिक नाम) नामक बस्तियां व कस्बे स्थित है। पुस्तक का सम्पूर्ण महत्वपूर्ण घटनाक्रम इन्हीं दोनों स्थानों के इर्द-गिर्द मंडराता नजर आता है। अत: 'उपन्यास का नामकरण' भी सार्थक व यथा योग्य है।"[59]

इसी के साथ डॉ. हरीश कुमार शर्मा ने भी लिखा है कि- "इसमें एक और जहाँ अरुणाचल के लोगों के कठिन और परिश्रम पूर्ण जीवन के बीच से झांकती जीवंतता, विपरीत परिस्थितियों में भी सजह बनाए रखने वाली स्वभावगत विशेषता... दूसरी ओर भारतीय सेना का कठिन परिस्थितियों में स्थानीय लोगों के साथ हेल-मेल करके रहने वाला मानवीय चेहरा प्रकाशित होता है। स्थानीय प्रकृति, संस्कृति के मनोरम चित्रण के साथ-साथ अरुणाचल में पिछले तीस-पैंतीस वर्षों में हुए विकास की भी एक झलक इस रचना में मिलती है।"[60] कथा के अंतिम अध्याय में मिनी और देवांग का प्रेम निसमी और बिक्रम दोनों के नामों में जीवित रहता है।

'जंगली फूल' (2019): 'जंगली फूल' डॉ. जोराम यालाम नाबाम का उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2019 में हुआ। यह उपन्यास काल्पनिक है और अरुणाचल प्रदेश की निशि जनजाति पर केंद्रित तानी की कथा पर आधारित है। निशी समाज में तानी की कथा को हास्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। बुजुर्गों के मौखिक कथाओं में तानी के कई नाम सुनने को मिलते हैं- आब तेन, न्यिकुम तेन, निया तेन, दोदुम तेन, डोल तेन, दोसयी तेन, उई तेन आदि। इसके साथ ही उनकी कई पत्नियों- डोनीय याय, जीथआन आदि का नाम भी हंसी-मजाक के साथ कथा में आता है। इसलिए इस उपन्यास को काल्पनिक और आधुनिक यथार्थ का मिश्रित रूप कहा जा सकता है।

लेखक ने उपन्यास में तानी के जीवन की शुरुआत, उनके संघर्ष और उनके अच्छे-बुरे गुणों का उल्लेख किया है। इसके साथ ही स्त्री की दूर-दशा, पीड़ा, नारी का अस्तित्व, प्रेम की चाह, मुक्ति की चाह, और आदिवासी नजर आदि विषयों को भी उपन्यास में देखा जा सकता है। हालांकि, प्राचीन स्त्रियों की जगह उपन्यास में आधुनिक स्त्रियों का यथार्थ अधिक प्रमुख रूप से दिखाया गया है।

लेखक ने उपन्यास के शीर्षक और आदिवासियों की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए प्रस्तावना में लिखा है- ‘‘जंगली होने का अर्थ मेरे लिए इस प्रकार है– प्रकृति से जुड़ना। उनके साथ स्वयं को अभिन्न अंग जानकर चलना। जंगल पक्षपाती नहीं होता। उसमें जो जीवन है, वह तटस्थ है। वहां खिलने वाले फूलों की अपनी ही मर्जी और मौज होती है।’’[61]

‘जंगली फूल’ उपन्यास में उपन्यासकार ने न्यीशी समुदाय के जनक तानी पिता को, जो अपने वंश को बढ़ाने के लिए कई तरह की पत्नियाँ अपनाने वाले और महान यात्री थे, के रूप में दिखाया है। उदाहरण- ‘‘त्वचा कितनी सख्त और अभ्यस्त हो गई थी। यह और कोई नहीं-तानी था, सुर्यवंशी तानी, महान यात्री।’’[62]

‘जंगली फूल’ उपन्यास के बारे में डॉ. अमिष वर्मा ने अक्षरा पत्रिका में लिखा है कि- ‘‘यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश की न्यीशी जनजाति या कहें तानी समुदाय (जिसमें वहाँ की पाँच जनजातियाँ शामिल हैं) के बीच प्रचलित एक मिथकीय चरित्र ‘तानी’ को आधार बनाकर लिखा गया है। एक तरह से यह उपन्यास तानी के चरित्र की पूर्णरचना का प्रयास है।’’[63]

डॉ. वर्मा जी ने आगे लिखते हुए इस उपन्यास को आदिवासी, प्रेम और स्त्री के त्रिकोण रूप में माना है, जहां आदिवासी का अर्थ, स्त्री की पहचान और प्रेम के अलग-अलग रूपों का उदाहरण के साथ विस्तार से वर्णन किया गया है। वे लिखते हैं- ‘‘उपन्यास के संदर्भ में आदिवासियत, प्रेम और स्त्री—ये तीन कोण हैं, जहाँ से इस उपन्यास को देखा जाना चाहिए।’’[64]

डॉ. संजीव मंडल ने भी ‘जंगली फूल’ उपन्यास पर लिखा है कि लेखिका ने तानी के जीवन को चित्रित करने में सफल रही हैं। साथ ही उपन्यास में प्रागैतिहासिक परिवेश की कमी, काव्यात्मकता का वर्ण आदि बताते हुए हिन्दी कथा-साहित्य में पूर्वोत्तर भारत पुस्तक में लिखते हैं-

"उपन्यास में अरुणाचाली लोगों के पूर्वज तानी के साहसिक कार्यों को चित्रित किया है। तानी के जीवन को चित्रित करने में यालाम कुछ हद तक सफल हुए हैं। पर उन्होंने कई स्थानों पर बड़े परिपक्व एवं अतिरंजित कल्पनाओं से काम लिया है। प्रागैतिहासिक परिवेश को मूर्त करने में उपन्यास सफल नहीं हुआ है। तानी धान की खेती करने के लिए धान लाने अपने गाँव से बहुत दूर जाता है और वहाँ कैद कर लिया जाता है, पर वह अपनी बुद्धिमत्ता के सहारे निकल आता है। अरुणाचल के वर्तमान युग की संस्कृति को प्रतिफलित करने में उपन्यासकार सफल रही हैं। पर प्रागैतिहासिक अरुणाचल कैसा था, इसका कोई चित्र हमारे सामने नहीं उभरता।"[65]

'मिनाम' (2020): 'मिनाम' मोर्जुम लोयी द्वारा लिखा गया उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2020 में हुआ। इस उपन्यास में आदिवासी स्त्रियों के संघर्ष की कथा, स्त्री स्मिता की बात कही गई है। यह उपन्यास गालो जनजाति पर केंद्रित है। इसमें गालो जनजाति के खानपान, रहन-सहन, संस्कृति, मोपिन त्योहार, बच्चों के नामकरण, पूजा-पाठ, विवाह प्रक्रिया आदि पर विस्तार से चर्चा की गई है।

जैसे गालों और आदिवासियों के घरों में दो तरह की सीढ़ियां बनाई जाती हैं। गालों भाषा में सीढ़ियों को 'कोबा' कहते हैं। दो सीढ़ियाँ इसलिए बनाई जाती हैं कि एक सीढ़ी महिला के लिए और दूसरी पुरुष के लिए हो, लेकिन किस दिशा की सीढ़ी महिला और पुरुष के लिए है, इसका उल्लेख नहीं किया गया है। दो सीढ़ी बनाने का कारण यह बताया गया है कि महिलाएं मासिक धर्म के बाद पुरुषों वाली सीढ़ी पर नहीं चढ़ सकती। ऐसा माना जाता था कि जब पुरुष जंगल में शिकार करने या नदी में मछली पकड़ने जाते हैं, और महिला पुरुष की सीढ़ी या अन्य चीजों को छूती हैं, तो पुरुष को मछली या शिकार नहीं मिलता। प्राचीन काल में इसे मान्यता दी जाती थी, लेकिन वर्तमान समय में इसे अंधविश्वास ही माना जाता है।

इसी पर 'मिनाम' उपन्यास की नायिका यापी अपनी माँ (आने) से पूछती है- "आने, दो कोबा क्यों? आंटी याकाप के घर पर भी दो कोबा थे। और कितने के वहाँ भी।"तभी आने (मां) बताती है-"यहाँ औरत और मर्द के लिए अलग-अलग सीढ़ियाँ यानी कोबा हैं।"फिर यापी पूछती है- "ऐसा क्यों?"आने बताती है- "मासिक धर्म होने के बाद से लड़कियों को इस कोबा से उठना निषेध है। आमतौर पर घर के मर्द नदी और जंगलों में शिकार खेलने जाते हैं। अगर लड़की मासिक धर्म के दौरान या उसके बाद मर्दों वाले स्थान या चीजों का प्रयोग करती है, तो वह उन मर्दों के लिए 'गाम्मा' हो जाता है, अर्थात वे शिकार पाने में नाकामयाब हो जाते हैं। यही नहीं, वे 'केबा', यानी किसी मसले के लिए किए गए सभा आदि में, अपना पक्ष नहीं रख पाते या बात नहीं कर पाते।"[66]

उपन्यासकार 'मिनाम' उपन्यास में कई उद्देश्य बताने का प्रयास किया है, जैसे- शिक्षा का महत्व दिखाना, समाज में बेटे को बेटी से ज्यादा अहमियत देने के कारण एक माँ स्वयं औरत होते हुए भी बेटे और बेटी में फर्क करना, बेमेल विवाह, बाल विवाह, बहु-पत्नीवाद आदि के दुष्परिणाम दिखाना, तलाकशुदा औरत अपने जीवन में किस प्रकार संघर्ष करती है, समाज और कभी-कभी परिवार में भी उसे किस प्रकार लोग स्वीकार करने से झिझकते हैं, पिछड़ापन गांव, साफ-सफाई की कमी, शिक्षा की कमी आदि विषयों पर उल्लेख करना।

'मिनाम' उपन्यास की पात्र यामी और अञा के संवाद से पता चलता है- "जिस गाँव में कैंप हुआ, वह पिछड़ा हुआ है। बच्चे नंगे घूम रहे थे। साफ-सफाई नाम की कोई चीज वहाँ नहीं है। जानवरों के बीच यह इतना गंदी हालात में रह रहे हैं। कई लोग बीमार हैं, पर चिकित्सा का कोई प्रबंध नहीं है। कुत्ते और बच्चे एक साथ खा रहे थे। सरकारी प्राथमिक स्कूल की बिल्डिंग जंगल में खंडहर-सी हो गई, ऐसा लगता है कि वह काफी सालों से जानवरों ने अपना अड्डा बना रखा है। कुछ रुक कर किसी भी घर में शौचालय नहीं है। पूछने पर पता चला कि वे घर में ही सुअर के लिए

‘गुमिर’ (सूअर रखने की जगह) बनाते हैं और उसी पर शौच भी करते हैं, फिर उसी सूअर को खाते भी हैं।”[67]

‘मिनाम’ उपन्यास के बारे में डॉ. संजीव लिखते हैं कि उपन्यास में अरुणाचल प्रदेश के समाज और संस्कृति का प्रभाव है। विषय-वस्तु की दृष्टि से यह सफल उपन्यास है, जिसमें वर्तमान समय की सामाजिक समस्याओं और परंपराओं का उल्लेख है। उन्होंने कलात्मकता की कमी और डायरी शैली के प्रयोग पर भी टिप्पणी की है और लिखा- “मोर्जुम लोयी इस उपन्यास में अरुणाचल के समाज और संस्कृति को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करने में सफल हुई हैं। कलात्मकता की कमी तो खटकती है, पर विषय-वस्तु की दृष्टि से यह एक बेहतरीन उपन्यास है। इसमें किसी एक काल पर दूसरे काल का प्रक्षेपण नहीं है। ... डायरी शैली का प्रयोग किया गया है, पर स्थान और काल का उल्लेख डायरी में नहीं है। यह शैलीगत कमजोरी कही जा सकती है।”[68]

‘मेरी आवाज सुनो’ (2021): ‘मेरी आवाज सुनो’ जुमसी सिराम ‘नीनो’ द्वारा लिखा गया उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2021 में हुआ है। यह उपन्यास गालो जनजाति पर केंद्रित है। ‘मेरी आवाज सुनो’ उपन्यास में स्त्री अस्मिता, नेप्प न्यीदा (पेट विवाह), वधू मूल्य, बाल विवाह, पितृसत्तात्मक समाज, प्रेम चित्रण, सामाजिक हिंसा, नारी शोषण, बेमेल विवाह आदि विषयों पर उल्लेख किया गया है।

‘मातमुर जामोह’ उपन्यास की प्रस्तावना में ‘मेरी आवाज सुनो’ उपन्यास के बारे में लिखा है- “पहाड़ी प्रदेश में पले दो जवान दिलों की हृदयस्पर्शी दास्तान! - जो मध्य युग में आपके पड़ोस में होती रहती थी। लेकिन पात्र आज भी यहीं-कहीं मौजूद हैं। अरुणाचल प्रदेश के सर्वप्रथम हिन्दी

लेखक जुमसी सिराम की जादू भरी कलम से फूटे दो बिछड़े प्रेमियों की अतृप्त आत्मा का विषाद, वेदना! भावनाओं से भरी हृदय की दास्तान!"[69]

उपन्यासकार 'मेरी आवाज सुनो' उपन्यास में यह स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यह उपन्यास किसी समुदाय, धर्म या व्यक्ति विशेष के खिलाफ नहीं है, न ही किसी का दिल दुखाने के लिए लिखा गया है। उपन्यास में बस अरुणाचल प्रदेश के तानी समुदाय की सामाजिक कुरीति 'नेप्प न्यीदा' पर आलोचना की गई है। इसी को आगे उपन्यासकार लिखते हैं- "यह उपन्यास किसी समुदाय, धर्म या व्यक्ति विशेष के विरुद्ध या उसका दिल दुखाने के लिए नहीं लिखा गया है। यह उपन्यास हमारे प्रदेश में फैली एक कुरीति 'नेप्प न्यीदा' की आलोचना करता है। 'नेप्प न्यीदा' का मतलब है पेट विवाह, जिसका अर्थ यह है कि जब बच्चा माँ के पेट में हो, तो उसकी शादी किसी के साथ तय कर दी जाए।"[70]

यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश के गालो या तानी समुदायों में चल रही कुरीतियों- कन्या मूल्य, बाल विवाह और बेमेल विवाह की प्रथा- पर आधारित है। लेखक ने समाज की इन कुरीतियों पर कड़ा व्यंग्य किया है। अरुणाचल प्रदेश के समाज में कई वर्षों से यह परंपरा रही है कि स्त्रियों पर जुल्म किए जाते रहे हैं, स्त्रियों का समाज में कोई जोर नहीं होता और स्त्रियों की चीख कोई नहीं सुनता। लेखक ने स्त्रियों की दूर-दशा का यथार्थ चित्रण किया है।

लेखक ने उपन्यास में हेडगाम बूढ़ा के माध्यम से कहा है- "यायि, तुम अपनी सीमाओं के बाहर जा कर बोल रही हो। तुम्हें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि नारी बिकाऊ वस्तु के समान ही है। दरअसल नारी, मनुष्य नहीं है। यह केवल मेरे द्वारा कही गई बात नहीं है, बल्कि पूरा समाज मानता है कि नारी केवल मांस का एक लोथड़ा भर है, जिसको लेकर पुरुष मनचाहे ढंग से खेलता है। नारी तो असल में पुरुषों की भोज्य सामग्री है।"[71]

प्राचीन काल में स्त्रियों की दशा उतनी अच्छी नहीं थी जितना वर्तमान में देखने को मिलता है। प्राचीन काल में अरुणाचल प्रदेश के समाज में सिर्फ बाल विवाह और कन्या मूल्य प्रथा ही नहीं चली थी, बल्कि पूरे भारत में भी स्त्रियों की यही दशा रही होगी।

'मेरी आवाज सुनो' उपन्यास पर वीर भारत तलवार जी लिखते हैं- "अगर भारत के दूसरे समाजों में विवाह में दहेज लेने-देने की प्रथा के कारण स्त्रियों की दुर्दशा होती है, तो तानी समुदायों में भी विवाह में वधू मूल्य लेने-देने की प्रथा के कारण स्त्रियों की दुर्दशा होती रही है। कई बार तो छोटे-छोटे बच्चों के माता-पिता भी वधू मूल्य का आदान-प्रदान करके बच्चों का विवाह तय कर देते रहे हैं। इस बुरी प्रथा को केंद्र में रखकर जुमसी सिराम ने इस उपन्यास में स्त्रियों की अपनी पहचान, अपनी इच्छा, अपना स्वतंत्र अस्तित्व और अपने अधिकारों का सवाल उठाया है। उन्होंने अपने समाज की उत्पीड़ित स्त्रियों के हकों की आवाज बुलंद की है और हिन्दी में लिखकर इस आवाज को पूरे भारत तक पहुंचाने की कोशिश की है।"[72]

उपन्यास की नायिका आयि, गालो जनजाति में जन्मी एक पर्वत-पुत्री है, जिसके दुखांत प्रेम कथा को लेखक ने पूरे मनोयोग से इस उपन्यास में चित्रित किया है। इसी दुखांत प्रेम कथा के वर्णन के दौरान वे गालो जनजाति की एक सामाजिक बुराई का पर्दाफाश करती हैं।

इस उपन्यास में नारी शक्ति को उजागर किया गया है। आयि पंचायत पर प्रहार कर देती है क्योंकि कन्या का मूल्य वापस नहीं लिया गया। यह आदिवासी स्त्री की रक्त में शक्ति का प्रतीक है। उपन्यास में स्त्री पात्र, यानी आयि, को मजबूत रूप में दिखाया गया है- जो लड़ने, मार खाने, मरने से नहीं डरती और समाज की कुप्रथाओं पर आवाज उठाते हुए समाज के रूढ़िवादियों का विरोध करती है। पंचायत में आयि, ताकार सहित, सभी की पिटाई कर देती है।

उपन्यास में आयि ने अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए कहा- "मुझे पिछले छः-सात सालों से महापंचायत में बोलने की अनुमति नहीं दी गई थी। आप सब जानते ही हैं कि..झटके से ताकार ने इतने में ही बोला, हाँ-हाँ! हम सभी जानते हैं कि तुम यही कहना चाहती हो कि मैं ताकार के बदले किसी और को चाहती हूँ। इसलिए कन्या-मूल्य वापस लौटाने के लिए यह पंचायत बुलाई गई है। लेकिन यायि, अच्छी तरह से जान लो, तुम मेरे अधिकार में ही हो। मैं तुम्हारे साथ कुछ भी कर सकता हूँ।"आयि ने उसका कोई जवाब नहीं दिया। वह अडिग होकर बोलती रही- "मैं मानती हूँ कि ताकार के परिवार वाले बड़े ही कुलीन हैं, उच्च वंशज हैं। मेरी माताजी के कीमती गहने मेरी दीदी दहेज में ले गई थी। मैं उसकी हकदार हूँ, पर ये सब मुझे नहीं चाहिए। मेरे माँ-बाप द्वारा कन्या-मूल्य के तौर पर लिए गए गाय, मिथुन, मांस, मदिरा, पैसे, इन सभी को न लौटा पाने के कारण मुझे ताकार के हाथों सौंप दिया गया था, मेरे भाई ने। लेकिन अब उन संपत्तियों को वापस लौटाकर मैं यह रिश्ता तोड़ना चाहती हूँ।" लेकिन अब पूरे बीस वर्ष बाद इसे लौटाने का निर्णय लिया जा रहा है। आयि कहती है- "मैं इसे हरगिज़ स्वीकार नहीं करूंगी। अतः अभी इसी पंचायत से अपनी पत्नी को संतान सहित ले जाऊंगा। मैं अपने किसी अविवाहित छोटे भाई से पुनर्विवाह कर सकती हूँ।" ताकार ने सचमुच ही आयि को जबरन उठाकर ले जाने का प्रयास किया। उसके साथ आयि के कई देवरों ने मिलकर आयि को घेर लिया। वहाँ एक युवक दांव पकड़कर खड़ा था। आयि ने लपक कर उसके हाथ से दांव छीन लिया और दांव के सहारे उन्हें खुद से दूर भगाया। इस संघर्ष में कई युवक जख्मी हो गए। हालत ऐसी हो गई कि पंचायत युद्ध मैदान जैसी हो गई। आयि ने गुस्से में किसी वीरांगना की तरह उग्र रूप धारण कर लिया। वह ताकार को घूंसे पर घूंसे मारती गई। उसने दांव से भी कई बार प्रहार किया, लेकिन ताकार किसी प्रकार भाग निकलने में सफल हो गया। विवश होकर पंचायत स्थगित कर दी गई तथा दोनों पक्षों को तितर-बितर कर दिया गया।"[73]

निष्कर्ष :

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा का विकास एक लंबी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक यात्रा का परिणाम है। प्रारंभिक काल में यहां की जनजातियों के पास कोई लिखित साहित्यिक परंपरा नहीं थी, इसलिए उन्होंने अपनी संस्कृति, मान्यताओं और जीवन शैली को लोक कथाओं, लोकगीतों, मिथकों और जनश्रुतियों के माध्यम से जीवित रखा। इस मौखिक परंपरा ने आगे चलकर साहित्यिक अभिव्यक्ति का रूप लिया।

अरुणाचल प्रदेश में उपन्यास लेखन की शुरुआत स्वर्गीय लुम्मेर दाई के असमिया उपन्यास 'पहाड़ोंर हिले हिले' (1960) से हुई। उस समय शिक्षा प्रणाली असमिया भाषा पर आधारित थी, जिसके कारण साहित्यिक रचनाएँ भी मुख्यतः असमिया में लिखी जाती थीं। सन् 1972 के बाद, जब अंग्रेजी और हिन्दी माध्यम से शिक्षा की शुरुआत हुई, तो हिन्दी साहित्य की ओर झुकाव बढ़ा और इसी दौर में अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा की नींव पड़ी।

इस परंपरा का वास्तविक सूत्रपात जुमसी सिराम 'निनो' के उपन्यास 'शिला का रहस्य' (1981) से हुआ। इसके बाद हिन्दी में लगभग दस प्रमुख उपन्यास सामने आए, जिनमें — 'कन्या मूल्य', 'सोनाम', 'शव काटने वाला आदमी', 'मौन होंठ मुखर हृदय', 'मातमुर जामोह', 'उस रात की सुबह', 'सियांग के उस पार', 'जंगली फूल', 'मिनाम' और 'मेरी आवाज़ सुनो' — विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश की जनजातीय संस्कृति, लोक जीवन, स्त्री अस्मिता, सामाजिक परंपराएँ, धार्मिक विश्वास और ऐतिहासिक घटनाएँ सजीव रूप में चित्रित हैं। 'मातमुर जामोह' जैसे उपन्यासों में ऐतिहासिक चेतना मिलती है, तो 'मेरी आवाज़ सुनो' और 'मिनाम' जैसे

उपन्यास स्त्री संघर्ष और अस्मिता के स्वर को प्रखरता से प्रस्तुत करते हैं। वहीं ‘कन्या मूल्य’ और ‘सोनाम’ जैसे उपन्यास सामाजिक कुरीतियों और जनजातीय परंपराओं के यथार्थ को सामने लाते हैं।

अतः कहा जा सकता है कि —अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा, मौखिक संस्कृति से लिखित साहित्य की यात्रा का सशक्त उदाहरण है। इस परंपरा को आरंभिक स्व. लुम्मेर दाई और येसे दोरजे थोंगछी ने दिया, जबकि उसे सशक्त दिशा और पहचान जुमसी सिराम ‘निनो’ ने दी। इन उपन्यासों के माध्यम से न केवल अरुणाचल प्रदेश की जनजातीय पहचान हिन्दी साहित्य में स्थापित हुई, बल्कि उत्तर-पूर्व भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक संवेदनाएँ भी राष्ट्रीय साहित्यिक प्रवाह से जुड़ गई।

संदर्भ सूची:

[1] प्रो. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ.- 24

[2] वही, पृ.- 370

[3] डॉ. धीरेंद्र वर्मा(संपादक), हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, पृ.- 121

[4] वही, पृ. 121

[5] Yeshe Dorjee Thongchi, Maker of Indian Literature: Lummer, P-12

[6] वही, पृ-25

[7]https://en.wikipedia.org/wiki/Yeshe-DorjeeThongchi,textGauhati %20University. Seeing date: 06.08.2025, Time: 12:50 PM

[8] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक: दिनकर कुमार, शव काटने वाला आदमी, पृ.- बैक कवर- 1

[9] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक डॉ. महेंद्र नाथ दुबे, सोनाम, पृ.-1

[10] जुमसी सिराम 'नीनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ.- बैक कवर- 1

[11] वही, पृ- बैक कवर - 5

[12] डॉ. श्याम शंकर सिंह, अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी अध्ययन के नये आयाम, पृ.- 60

[13] जोरम यालाम, जंगली फूल, पृ.- 2

[14] तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ.- बैक कवर - 3

[15] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ.- बैक कवर - 1

[16] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ.- 4

[17] लुम्मेर दाई, अनुवादक मुनीन्द्र मिश्र, कन्या का मूल्य, पृ.- 1

[18] वही, पृ.- 1

[19]वही, पृ.- 1-4

[20] वही, पृ.- 8

[21] वही, पृ.- 9

[22] वही, पृ.- 41

[23] वही, पृ- 42

[24] वही, पृ.- 54

[25] वही, पृ.- 55

[26] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक: डॉ. महेंद्र नाथ दुबे, सोनाम, पृ.-1

[27] वही, पृ.- 22-23

[28] वही, पृ.-11

[29] वही, पृ.-11

[30] वही, पृ.-11

[31] वही, पृ.-11-12

[32]https://www.google.com/searchDczajBqMTWoAglwAgHxBYPps1rZw5F9&sourceid=chrome&ie=UTF-8 Seeing date: 08.08.2025, Time: 1:59 PM

[33] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक दिनकर कुमार, शव काटने वाला आदमी, पृ.- 8

[34] वही, पृ.- 8

[35] वही, पृ.- 174

[36] वही, पृ.- 9-10

[37] वही, पृ- 63-64

[38] वही, पृ- 92

[39] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक दिनकर कुमार, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ-13

[40] वही, पृ- 15

[41] वही, पृ- 40

[42] वही, पृ- 11

[43] वही, पृ- 18-19

[44] जुमसी सिराम 'नीनो', मातमुर जामोह, पृ. 3

[45] वही, पृ. 113

[46] वही, पृ. 2

[47] वही, पृ. 5-9

[48] वही, पृ. 13-14

[49] वही, पृ. 40-43

[50] जुमसी सिराम 'निनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 5

[51] तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 6

[52] वही, पृ.- 7

[53] वही, पृ. 88-90

[54] वही, पृ. 4

[55] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. XI

[56] वही, पृ. IX

[57] वही, पृ. xiv

[58] डॉ. संजीव मंडल, हिंदी कथा-साहित्य में पूर्वोत्तर भारत, पृ. 22

[59] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 264

[60] वही, पृ. 263

[61] जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 6

[62] वही, पृ. 9

[63]अमिष वर्मा, अक्षरा पत्रिका, पृ. 48

[64] वही, पृ. 49

[65] डॉ. संजीव मंडल, हिंदी कथा-साहित्य में पूर्वोत्तर भारत, पृ. 23

[66] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 26–27

[67] वही, पृ. 16-17

[68] डॉ. संजीव मंडल, हिंदी कथा-साहित्य में पूर्वोत्तर भारत, पृ. 23

[69] जुमसी सिराम 'नीनो', मातमुर जामोह, पृ. 4

[70] जुमसी सिराम 'निनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 7

[71] वही, पृ. 31

[72] वही, पृ. 3

[73] वही, पृ. 85-87

तृतीय अध्याय

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और संस्कृति

(क) समाज

(ख) संस्कृति

- i. धर्म
- ii. पर्व एवं त्योहार
- iii. खानपान
- iv. पहनावा ओढ़ावा
- v. जीविकोपार्जन के साधन

(ग) अन्य विविध विषय

- i. कृषि और व्यवसाय
- ii. चीन युद्ध
- iii. ऐतिहासिक संदर्भ
- iv. सद्भावना और सहानुभूति
- v. मेहमान नवाजी
- vi. अंधविश्वास
- vii. पिछड़ापन
- viii. शिक्षा का अभाव

तृतीय अध्याय

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और संस्कृति

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और संस्कृति का वर्णन अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में देखने को मिलता है। अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर राज्य का हिस्सा है, और यह राज्य भारत के पूर्वी दिशा में स्थित है। यह राज्य जनजाति और संस्कृति का धनी राज्य है। अरुणाचल प्रदेश राज्य में 26 जनजातियाँ हैं। यहाँ के जनजातीय समाज के लोग आपस में मिलजुल कर एक-दूसरे की सेवा और सहायता करते हुए अपना जीवन-यापन करते हैं।

क. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज

समाज को इस रूप में समझा जा सकता है कि यह लोगों द्वारा बनाया गया एक ऐसा समूह है, जो आपसी सहयोग, संवाद और सह-अस्तित्व पर आधारित होता है। समाज में लोग एक-दूसरे की सहायता करते हुए, अपने सुख-दुख और अनुभवों को साझा करते हैं। 'समाजशास्त्र' के अनुसार – "समाज लोगों का एक समूह है जो जीवन जीने में एक-दूसरे की सहायता करने और अपनी परिस्थितियों को बेहतर बनाने के लिए एक साथ रहते हैं।"[1]

अरुणाचल प्रदेश का समाज विविध जनजातियों के समूह से निर्मित है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में वहाँ के समाज के अनेक पहलुओं को गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। इन उपन्यासों में पारिवारिक और सामाजिक संबंधों की विभिन्न परतें सामने आती हैं- जैसे भाई-बहन, पति–पत्नी, माता–पिता आदि के भावनात्मक संबंधों का विस्तार पूर्ण चित्रण किया गया है।

लुम्मेर दाई के उपन्यास 'कन्या का मूल्य' में नायिका गुम्बा के पिता कारगुम का अपनी बेटी के प्रति स्नेह और चिंता इस संवाद से प्रकट होती है, जब वह अपनी पत्नी से कहता है – "ऐ याबा की माँ! मैं सोचता हूँ कि अपनी बेटी के लिए पत्र भेज दूँ।"[2]

येसे दरजे थोंगछी के 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में नायक दारगे नरबू और उनकी पत्नी गुई सेंगमू दोनों के आपसी प्यार और लड़ाई-झगड़ों का उल्लेख उपन्यास में किया गया है। जहाँ गुई सेंगमू अपने पति दारगे नरबू से घरेलू कामकाज से परेशान होकर और रोजमर्रा के जीवन की दुख-तकलीफ व कष्ट की कहानी सुनाते हुए कहती है- "तुम्हारे साथ शादी करना मेरी गलती थी, हाँ, तकलीफ़देह बन गया। मैं अकेली औरत कितनी काम करूँ? घर देखूँ या खेत देखूँ या गूँगी की देखभाल करूँ? तुम तो लाश काटने के अलावा कोई काम नहीं करते! लाश काटोगे और बिना मतलब इधर-उधर भटकते फिरोगे।"[3]

येसे दरजे थोंगछी के 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में भी सड़क निर्माण कार्य करने वाले जनजातियों के अलग-अलग दलों में पारिवारिक और सामाजिक संबंधों का उल्लेख मिलता है। जहाँ विभिन्न जनजातियों के लोग एक-दूसरे से दोस्ती, प्रेम, भाई-बहन आदि रूपों में जुड़े हुए दिखाई देते हैं। एक दिन जब सड़क बनाने का काम समाप्त हो जाता है और सभी अपने-अपने दल के लोग घर लौटने की तैयारी कर रहे होते हैं, तभी नायक रिनचिन कैम्प में आकर नायिका यामा के भैया तादाक से आग्रह करता है कि जब तक गवर्नर साहब गाँव में सड़क निर्माण कार्य का निरीक्षण करने नहीं आ जाते, तब तक यामा, यादो, ताकार और तादाक के दल कैंप में ही रुक जाएँ।

रिनचिन यामा से अत्यधिक प्रेम करता है, इसलिए वह अंत तक यामा को देखना चाहता है। इसी कारण वह तादाक से टूटी-फूटी असमिया भाषा में आग्रह करता है। तादाक भी बहन के प्रति प्रेम जताते हुए टूटी-फूटी असमिया में रिनचिन से कहता है -"रिनचिन, तुम हमार अच्छा दोस्त है। यामा

भी हमार प्यारी बहन है। हम तुमका बात मान लिया न। अच्छा, गवर्नर साहब आएगा तो तब तक हम नहीं जाएगा -यामा, यादो भी नहीं।"[4]

दूसरे, अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज की जन-जातीय सद्भावना को दर्शाते हुए उपन्यासकार ने निशि, भूटिया, शेरदुकपेन जनजाति आदि विभिन्न जनजातियों के लोग आपस में मिलजुलकर रहना और एक-दूसरे की सहायता करते हुए दिखाया है।

इसी संदर्भ में उपन्यासकार 'मौन होंठ मुखर हृदय' में लिखते हैं- "आजकल दोनों दलों के बीच मेलजोल भी बढ़ गया है... एक जनजाति के लोग दूसरी जनजाति के लोगों के साथ भावों का आदान-प्रदान करने लगे हैं, जिसकी वजह से पहले की तरह शेरदुकपेन दल को अब न्यीशी दल से डर नहीं लगता। न्यीशी दल भी शेरदुकपेन दल के सदस्यों के साथ अपने लोगों की तरह व्यवहार करने लगे हैं। दो अजनबी जनजातियों के लोगों के बीच इसी तरह सद्भाव पैदा हो।"[5]

तीसरे में अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में समाज की सहायता भावना को उपन्यासकार ने प्रभावपूर्ण रूप से दर्शाया है। जहाँ अरुणाचली लोग आपस में एक-दूसरे की मदद करते हुए अपना जीवन सहज रूप से जीते हैं। ऐसा ही कुछ 'मिनाम' उपन्यास में देखने को मिलता है, जहाँ गाँव की महिलाएं खेतों में एक-दूसरे का हाथ बटाते हुए, एक-दूसरे के साथ खूब हँसी-मजाक भी करती हुई दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में उपन्यासकार 'मिनाम' में लिखते हैं - "गाँव की महिलाओं में एक बहुत ही अच्छी बात यह देखी गई कि वे एक-दूसरे की काफी मदद करती हैं। 'रिगे एनाम' के तहत वे सब मिलकर आज एक के खेत में तो कल दूसरे के खेत में काम करती हैं। इस प्रकार वे हँसी-मजाक भी करती रहती हैं और खेती का कार्य आराम से हो जाता है।"[6]

चौथे में अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में समाज के जनजातियों द्वारा प्रदर्शित अतिथि सद्भावना का उल्लेख मिलता है। यहाँ यह पता चलता है कि गालो, मेम्बा और आदी जैसी जनजातियाँ अपने मेहमानों का विशेष ध्यान रखती हैं। इसका उदाहरण 'मिनाम', 'सियांग के उस पार' और 'मातमुर जमोह' उपन्यासों में देखा जा सकता है। इसी स्वागत और सद्भावना को लेखक ने 'मिनाम' उपन्यास में इस प्रकार प्रस्तुत किया है- "गालो जनजाति के लोग अपनी मिलनसार व्यक्तित्व, साफ-सफाई, स्वादिष्ट स्थानीय व्यंजन और मेहमाननवाज़ी के लिए जाने जाते हैं। 'अतिथि देवो भवः' वाक्य को सार्थक करने वाला उनका अतिथि सत्कार अत्यंत सराहनीय है।"[7]

'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी ऐसा ही है। नायक बिक्रम और नायिका निसमी का स्वागत गांव के जगह-जगह पर किया जाता है, जहाँ मेम्बा जनजाति के गांव वाले दोनों के लिए अपोंग और चावल बनाकर परोसते हैं। इसी पर उपन्यासकार 'सियांग के उस पार' में लिखते हैं:-"चर्चा के साथ-साथ उन्होंने उनके लिए भोजन की भी तैयारी शुरू कर दी और पानी और अपोंग भी पेश किया। लंबे सफर की थकावट के पश्चात बिक्रम को अपोंग अच्छी लगी।"[8]

ख. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त संस्कृति के विविध आयाम:

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त संस्कृति को इस प्रकार समझा जा सकता है कि यह किसी देश और समाज के मानव जीवन जीने का तरीका है। यह पूर्वजों द्वारा दिया गया अपना एक अलग पहचान है, जिसमें अनेक आयाम होते हैं — रहन-सहन, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोक नृत्य, खानपान, वेशभूषा, धर्म और पर्व, जीवन जीने का ढंग आदि। ये सभी सांस्कृतिक तत्वों के अंतर्गत आते हैं। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त सांस्कृतिक

आयाम पाठक को अरुणाचल प्रदेश की जनजातीय परंपराओं के बीच ले जाते हैं। इन सांस्कृतिक आयामों में पहला है धर्म। धर्म का अर्थ है ईश्वर से प्रार्थना करना। धर्म का शाब्दिक अर्थ गूगल में दिया गया है -"धर्म का सही अर्थ है 'धारण करना', यानी वह गुण या कर्तव्य जिसे धारण किया जाए। यह एक जीवन शैली है जो नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित है, और इसका उद्देश्य व्यक्ति और समाज का कल्याण करना है।"[9]

उपन्यासकारों ने इन उपन्यासों में सांस्कृतिक पक्षों को रेखांकित करते हुए संस्कृति के कई बिंदुओं को उठाया है। उन्होंने लिखा है कि अरुणाचल वासी 'दोनी पोलो' (सूर्य और चंद्र) धर्म को मानते हैं। साथ ही, वे प्रकृति पूजक भी हैं। दोनी पोलो धर्म, जो सूर्य और चंद्र की उपासना पर आधारित है, यहाँ के लोगों के प्राकृतिक प्रेम और आध्यात्मिकता का प्रतीक है। 'दोनी पोलो' के बारे में बताते हुए डॉ. वीरेंद्र परमार ने 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक साहित्य' पुस्तक में लिखा है - "अधिकांश अरुणाचली जनजातियाँ 'दोनी पोलो' के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदन करती हैं, लेकिन दोनी पोलो की अवधारणा के संबंध में भिन्न-भिन्न मत और विचार हैं। सामान्यतः इसे सूर्य और चंद्रमा का प्रतीक माना जाता है। इसे सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी, और सर्वहितकारी माना जाता है। यह अमर, अविनाशी तथा सत्य, न्याय, पुण्य, एवं ईमान का प्रतीक है। 'दोनी पोलो' सत्य, न्याय, सुंदरता, नैतिकता, प्रेम और अच्छाई का आध्यात्मिक स्रोत है।"[10]

'मिनाम', 'सियांग के उस पार', 'जंगली फूल' जैसे उपन्यासों में 'दोनी पोलो' धर्म की आस्था की गहराई कथानकों से स्पष्ट होती है। सूर्य को माता और चंद्र को पिता मानने वाली यह धारणा न केवल धार्मिक आस्था को दर्शाती है, बल्कि प्रकृति के साथ सहजीवन की भावना को भी प्रदर्शित करती है।

'मिनाम' उपन्यास में दोनी पोलो का वर्णन मिलता है। उपन्यासकार लिखते हैं -

"वे सूर्य व चंद्रमा के उपासक हैं। जिसे वे दोञी अर्थात सूर्य और पोलो अर्थात चंद्रमा। दोञी आने अर्थात माता, पोलो आबो अर्थात पिता।"[11]

'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी दोनी पोलो धर्म को देवी-देवता, सूर्य-चंद्र मानते हुए उपन्यासकार लिखते हैं -"इस जनजाति का धर्म 'दोनी-पोलो' अर्थात सूर्य और चंद्र पर केंद्रित है। ये मानते हैं कि 'दोनी-पोलो' संसार की आँख है और वे हर भले और बुरे को देखती हैं।"[12]

न्यिशी जनजाति भी सूर्य को माता और चंद्र को पिता के रूप में मानते हैं। तानी समुदाय में इसका उल्लेख करते हुए 'जंगली फूल' उपन्यास में उपन्यासकार लिखते हैं -"माता सूर्य को साक्षी मानकर दोरिंग चिजिंग ने अपनी चार पुजारिन सखियों के साथ मन्त्रोचारण किया। सारी दिशाओं और सारे चार-अछर से उनके लिए आशीर्वाद माँगे गए।"[13]

पर्व और त्योहार - यहाँ त्योहार का अर्थ है जनजातीय उत्सव और समारोह, जो लोग अपनी समुदाय में पारंपरिक पोशाक पहनकर हँसी, खुशी, नाच-गान के साथ मनाते हैं। अरुणाचल प्रदेश की 26 जनजातियाँ अपने-अपने त्योहार मनाती हैं। यहाँ एक से अधिक जनजातियों के रहने के कारण प्रत्येक जनजाति के अलग-अलग त्योहार, रीति-रिवाज, खान-पान और मान्यताएं हैं। अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय लोग उत्सवधर्मी हैं और त्योहारों का उनके जीवन में अत्यंत महत्व है। उपन्यासकार ने पर्व का उल्लेख करते हुए 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में लोसर और टोरगा उत्सव के बारे में लिखा है। टोरगा उत्सव में पाकू नृत्य और मुखौटा नृत्य प्रदर्शित किए जाते हैं। लोसर पर्व में गांव वाले एक साथ मिलकर एक-दूसरे का सम्मान करते हैं, प्रेम बांटते हैं और समूह में मिलकर खापसे, आराक, याक का घी, थुकपा आदि खाते हैं। लोसर उत्सव 15 से 30 दिनों तक चलने वाला आनंदोत्सव है।

उपन्यासकार 'शव काटने वाला आदमी' में लिखते हैं -"15-30 दिनों तक चलने वाला आनंदोत्सव। गाँव-गाँव, घर-घर में आयोजित होने वाला लोसर महोत्सव। लोसर के समय खाने के लिए लोग साल भर तक संजोकर रखा गया लजीज खाद्य पदार्थ बाहर निकालेंगे, याक के घी के साथ विभिन्न स्वादिष्ट खापसे तैयार करेंगे… सारे सदस्य याक का सूखा गोश्त, विभिन्न शस्य देकर पकाया गया स्वादिष्ट थुकपा खायेंगे, घी में अंडा देकर गरम की गई आराक पीयेंगे, दिन भर तरह-तरह की चीजें खाते रहेंगे।"[14]

पर्व मानव कल्याण से भी जुड़ा हुआ है। 'मिनाम' उपन्यास में भी त्योहार का ज़िक्र करते हुए गालो जनजाति के एकमात्र त्योहार मोपिन के बारे में बताया गया है। उपन्यासकार आगे लिखते हैं कि यह त्योहार मानव कल्याण और खेती की अच्छी फसल के लिए मनाया जाता है।

उपन्यासकार 'मिनाम' में लिखते हैं -"'मोपिन' गालो जनजाति का एकमात्र त्योहार है। यह मानव कल्याण, अच्छी फसल तथा सुख-समृद्धि एवं एकता के लिए प्रत्येक वर्ष अप्रैल और मई महीने में मनाया जाता है। पूरे क्षेत्र में भावी रूप में मनाया जाता है। मोपिन आने या आञी पिंकू-पिन्ते गालो समुदाय के लिए अन्न की देवी मानी जाती है। प्राचीन काल में मोपिन आने ने हमारे पूर्वज आबो तानी को खेती करना सिखाया था... मोपिन लोगों को एक-दूसरे के बेहद करीब लाती है, यही एकता का प्रतीक बन जाता है। इस त्योहार में 'इति', 'ताके' (अदरक) और 'पोका' का विशेष महत्व है।"[15]

'उस रात की सुबह' उपन्यास में भी न्योकुम त्योहार का उल्लेख मिलता है। उपन्यास के यापी पात्र की बुआ के बारे में लिखा है कि वह न्योकुम त्योहार में परंपरागत पोशाक से सज-धज कर त्योहार स्थल पर पहुँचती हैं, और वहाँ लोगों की नजर उन पर पड़ती है। उपन्यासकार 'उस रात की सुबह' में लिखते हैं -"वह न्योकुम त्योहार में पोमो गाले और उस पर तासेंग तादोक अर्थात परंपरागत आभूषणों से सुसज्जित होकर अपने सखियों के साथ न्योकुम लापांग, यानी कि त्योहार-स्थल की ओर निकल पड़ती थीं। तो बस मनचलों के दिलों पर मानो सैकड़ों बिजलियां गिराती थीं।"[16]

लोसर, मोपिन, न्योकुम त्योहारों के अलावा अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय अनेक पर्व मानते हैं। जैसे, द्री त्योहार -यह अरुणाचल प्रदेश के आपातानी जनजाति का प्रमुख पर्व है। इसे 5 जुलाई को ज़ीरो घाटी, लोअर सुबनसिरी जिला, अरुणाचल प्रदेश में मनाया जाता है। द्री त्योहार खेती की फसल अच्छी होने के लिए और फसल की देवी-देवताओं से पूजा करने के लिए आयोजित किया जाता है।

चलो-लोकु त्योहार - यह नोक्ते जनजाति का पर्व है। नोक्ते जनजाति तिराप जिला, अरुणाचल प्रदेश में निवास करती है। यह पर्व अक्टूबर-नवंबर महीने में मनाया जाता है और खेतों की फसलों की अच्छी उपज के लिए आयोजित किया जाता है। इस त्योहार को तीन दिन तक मनाया जाता है। पहला दिन को 'फंलमजा' यानी तैयारी का दिन माना जाता है। पहले दिन ही भैंस, सूअर, गिलहरी आदि का बलि चढ़ाया जाता है। दूसरे दिन को 'चमकातजा' दिन कहा जाता है, जिसमें सभी लोग सुंदर-सुंदर पारंपरिक पोशाक पहनकर 'चाम' पर चले जाते हैं। 'चाम' यहाँ बाँस से बना हुआ घर को कहा गया है। चाम में ही भोजन की व्यवस्था की जाती है, जिसमें चावल से बनी मदिरा, चावल, मांस-मछली, पत्ते की सब्जी आदि परोसा जाता है।

न्योकुम युल्लो त्योहार - इस त्योहार को निशि जनजाति 26 फरवरी को मनाते है। यह त्योहार न्योकुम देवी माता का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए मनाया जाता है। इसके अंतर्गत संस्कार यह है कि सभी मनुष्यों का स्वास्थ्य ठीक रहे, सुख-समृद्धि बनी रहे, फसलों की सुरक्षा हो और पशुओं की सुरक्षा सुनिश्चित हो । आरन त्योहार - आरन पर्व को अरुणाचल प्रदेश के आदी जनजाति मार्च और अप्रैल महीने में मनाते हैं। आरन पर्व नए साल का स्वागत और पुराने साल का विदाई के रूप में मनाया जाता है। त्योहार शुरू होने से पहले गाँव के पुरुष शिकार करने और मछली पकड़ने के लिए गांव से दूर जंगल चले जाते हैं। इस बीच महिलाएं काला आपोग और चावल का आपोग, मदिरा बनाकर तैयार

कर के रखती हैं। यह पर्व भी कृषि से संबंधित है। आदी जनजाति का प्रमुख त्योहार सोलुग भी है, जिसमें सभी लोग मिलकर पोनुंग लोक नृत्य करते हैं।

सि-दोन्यी त्योहार - यह त्योहार अरुणाचल प्रदेश के तागिन जनजाति द्वारा मनाया जाता है। सि का अर्थ है पृथ्वी या धरती माता, और दोन्यी का अर्थ है आकाश या पिता। इस त्योहार में पृथ्वी माता और आकाश पिता की पूजा की जाती है।

इस अवसर पर देवी-देवताओं से प्रार्थना की जाती है कि तागिन समुदाय की सुरक्षा हो, धान खेतों की फसल अच्छी हो, गाँव की सुरक्षा बनी रहे आदि। इस त्योहार में मिथुन, मुर्गी, सूअर, बकरी आदि जानवरों का बलिदान दिया जाता है। न्यूबु (पुजारी) जो मंत्रों का उच्चारण करते हैं, उनके पीछे अन्य पुजारी भी मंत्रों का उच्चारण करते हैं।

ओजियेले त्योहार - इस त्योहार को अरुणाचल प्रदेश के वांचो जनजाति मनाते हैं। यह त्योहार भी खेती, परिवार, गाँव और संसार की अच्छाई के लिए मनाया जाता है। इस अवसर पर मुर्गी, गाय, भैंस और चावल की मदिरा आदि परोसी जाती हैं। यह त्योहार पाँच दिन तक मनाया जाता है।

बुरी-बूट त्योहार - इस त्योहार को हिलमिरी और निशि जनजाति मानती हैं। इसका संबंध आबो तानी से है और संसार में सुख-शांति के लिए इसे मनाया जाता है। इस त्योहार में भी मिथुन का बलिदान दिया जाता है।

रेह त्योहार - इस त्योहार को अरुणाचल प्रदेश के इदु मिश्मी जनजाति मानते हैं। मिश्मी समुदाय के भगवान का नाम ‘मताई’ है। मताई भगवान से प्रार्थना की जाती है कि वह सभी संसार की रक्षा करें और गाँव व परिवार में कोई बीमारी न हो।

चिनडंग त्योहार - इस त्योहार को अरुणाचल प्रदेश के मिजी और साजोलयांग जनजाति मनाते हैं। यह त्योहार कृषि से संबंधित है। खेती की फसल काटने और धान को गोदाम में डालने के समय इस त्योहार का आरंभ होता है। इसमें भी मिथुन का बलिदान दिया जाता है।

दुबा त्योहार - इस त्योहार को अरुणाचल प्रदेश के मेम्बा और खम्बा जनजाति मनाते हैं। दुबा का शाब्दिक अर्थ है बुरी शक्तियों का विनाश करना। मेम्बा और खम्बा जनजाति का मानना है कि इस त्योहार को मनाने से बुरी शक्तियों का नाश होता है और अच्छी शक्ति समाज में फैलने लगती है। इसके बाद समाज में लोग सुख और शांति से रहने लगते हैं।

मैको सुम फई त्योहार - यह त्योहार अरुणाचल प्रदेश के खाम्ती जनजाति मनाते हैं। मैको का अर्थ है बाँस का टुकड़ा और सुम फई का अर्थ है आग जलाना। इस त्योहार का आरंभ सर्दी शुरू होने से पहले किया जाता है।

लोसर त्योहार - इस त्योहार को खम्बा, मेम्बा, मोनपा, शेरतुकपेन आदि जनजातियाँ मनाती हैं। यह त्योहार नव वर्ष के आगमन के अवसर पर मनाया जाता है।

छेकर त्योहार - इस त्योहार को अरुणाचल प्रदेश के शेरतुकपेन जनजाति मनाते हैं। वे लोग लोसर त्यौहार भी मनाते हैं। यह पर्व मई महीने में मनाया जाता है और धन-धान्य तथा आरोग्य के लिए भी आयोजित किया जाता है। यह शेरतुकपेन जनजाति का महत्वपूर्ण पर्व है।

मोह-मोल त्योहार - इस त्योहार को अरुणाचल प्रदेश के तंगसा जनजाति मनाते हैं। इसका संबंध भी अच्छी फसल और सुख-समृद्धि की कामना से है। इस अवसर पर भी पशुओं का बलिदान दिया जाता है।

लुंगते युल्लो त्योहार - इस पर्व को अरुणाचल प्रदेश के कोलोरींग और तलीहा क्षेत्र के निशि लोग मनाते हैं। यह पर्व भी खेतों की अच्छी फसल के लिए मनाया जाता है। इसमें पूजा पद्धति निभाई जाती है, और मिथुन, सूअर और मुर्गी की बलि दी जाती है। पुजारी मंत्रों का उच्चारण करते हुए पर्व का आरंभ करते हैं। अंत में नाच-गाना और मांस, मछली, सूअर आदि का भोजन किया जाता है।

नेचिदों त्योहार - यह पर्व अरुणाचल प्रदेश के आका जनजाति द्वारा नवंबर महीने में सामूहिक रूप से मनाया जाता है। इसका संबंध कृषि और धन-धान्य, सुख-समृद्धि से है। इस पर्व में पूजा पद्धति होती है और मिथुन, मुर्गी, सूअर और सांड की बलि 'नेचीगिरी' वन देवता को दी जाती है।

मोपीन त्योहार -इस पर्व को अरुणाचल प्रदेश के गालो जनजाति अप्रैल महीने में मनाते हैं। यह त्योहार वसंत ऋतु के आगमन पर मनाया जाता है, जब खेतों की कटाई और बुनाई का काम शुरू होता है। मोपीन का अर्थ है अन्न की देवी। गाँव के लोग अन्न देवी की पूजा करते हुए प्रार्थना करते हैं कि गाँव में सभी सुख-शांति बनी रहे, खेतों की फसल अच्छी हो, स्वास्थ्य ठीक रहे और धन-समृद्धि बनी रहे। इस अवसर पर भी मिथुन और सूअर की बलि दी जाती है।

संकेन त्योहार — इस त्योहार को अरुणाचल प्रदेश के सिंहफों और खाम्ती जनजाति अप्रैल महीने में मनाते हैं। संकेन का अर्थ है पानी की क्रीड़ा। इस पर्व में सभी गाँव वाले एक-दूसरे पर पानी डालते हैं। यह जनजाति हीनयान बौद्ध धर्म में विश्वास रखती है। वे लोग शांति प्रिय हैं। साथ ही यह पर्व नववर्ष के आगमन और एक-दूसरे को नववर्ष की बधाई देते हुए मनाया जाता है।

सोलुंग त्यौहार — यह त्योहार अरुणाचल प्रदेश के आदी जनजाति द्वारा 1 सितंबर को मनाया जाता है। इस पर्व को मनाने वाले आदी जनजाति के उप जनजातियाँ हैं: पासी, पदाम, मिलांग, सीमोंग, कोमकर, पांगी, मियोंग, रामो, पैलेबों आदि। सोलुंग का अर्थ है मानवता का समूह या पशु-पक्षियों का

समूह। इस पर्व में भी मिथुन और सूअर की बलि दी जाती है। इस अवसर पर सभी गाँव वाले मिलकर पोनुङ लोक नृत्य करते हैं और चावल, पातु ओयांग, हरी सब्जी, मिथुन का मांस, सूअर का मांस, अदरक की चटनी आदि परोसे जाते हैं।

पहनावा-ओढावा -अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त संस्कृति के पहनावा-ओढावा, वेशभूषा आयाम पर भी उपन्यासकारों ने उल्लेख किया है। पहनावा-ओढावा का उल्लेख करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं कि किसी भी जनजाति की पहचान उनकी पारंपरिक आभूषण और पोशाक से होती है। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में रिनचिन पात्र दूसरी जनजाति की लड़की को उसकी पोशाक से पहचान कर बताते हैं कि -"उसकी पोशाक और गले में टासांग मणि की मालाओं को देखकर रिनचिन समझ गया कि वह वांगनी लड़की है। हाँ, वह वांगनी लड़की ही है। सड़क निर्माण करने के लिए आए किसी न्यीशी दल की लड़की है वह।"[17]

ऐसा ही 'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी उल्लेख मिलता है, जिसमें निसमी पात्र अपनी लोकल टोन वाली हिंदी से बिक्रम पात्र को अरुणाचली स्त्रियों के पोशाक के बारे में बताते हैं कि -"इधर का औरतों का सजना संवरना बहुत पसंद होता है। वे तरह-तरह का चाँदी का जेवर और रंग-बिरंगे मानकों की माला सदा गला और शरीर पर पहनता हैं, और खास फेस्तीवल के समय बहुत मन से तरह-तरह का मेकअप करता है। तेज रंग का कापरा, जानवर की खल से बना ड्रेस और छोता-बारा तोपी पहनता है। शरीर पर तैतू खुदवाना और नाक का दोनों तरफ बरा-बरा छल्ला, कानों में अलग-अलग तरह का बालियाँ दालना भी उनका पसंद है।"[18]

जमाने के लोग कपड़े नहीं पहनते थे, वे लोग तो पेड़ के पत्तों को पहनते थे और जानवरों के चमड़े को कपड़ा बनाकर पहनते थे । 'जंगली फूल' उपन्यास में उपन्यासकार लिखते हैं कि -"दोनों घुटनों पर काले रंग के धागे बंधे थे। मुँह में छोटे बाँस का हुक्का-हल्का धुआँ उसमें से निकल रहा था।

कमान से तीर छोड़ते समय उंगलियों को चोट न लग जाए-जानवर की चमड़ी से बने सख्त कवच पहने हुए था।"[19]

आज के समय में पूरी तरह से हर जनजाति में बदलाव देखने को मिलता है। खाने से लेकर पहनने और रहने के तौर-तरीके भी बदल गए हैं। पहले बाँस के घर हुआ करते थे, आज ईंट-पत्थर और सीमेंट से पक्के घर बन जाते हैं। शेरतुकपेन जनजाति का पहनावा-ओढावा मोनपा जनजाति से थोड़ा मिलता-जुलता है। ये जनजातीय अपना पारंपरिक टोपी पहनते हैं, यह टोपी याक के बाल से बनाई जाती है जो सिर को ठंड से आराम दिलाने का काम करती है। और शरीर में लंबा-लंबा ऊन से बना कपड़ा पहना जाता है। महिलाएं तरह-तरह की माला पहनकर पर्वों में नृत्य करती हैं।

मोनपा जनजाति का पहनावा-ओढावा भी सुंदर और आकर्षक होते हैं। वे लोग अपने शरीर में नीला रंग का कपड़ा लपेट लेते हैं और यह कपड़ा इतना लंबा होता है कि घुटनों तक लटकता रहता है। स्त्री-पुरुष दोनों ही ऊनी जैकेट पहनते हैं जो कमर तक लटका रहता है। सिर पर टोपी लगाई रहती है। मिश्मी जनजाति का पहनावा-ओढावा भी बहुत सुंदर होता है। मिश्मी जनजाति का पारंपरिक पोशाक काले और मेरून रंग से बनता है, जिसके ऊपर सुंदर डिजाइन लगाया जाता है। मिश्मी जनजातियों का मानना है कि प्राचीन काल में उनके पूर्वजों ने मछली, सांप और तितली के पंख देखकर कपड़ों में डिजाइन बनाकर डाला था। यही नहीं, मिश्मी महिलाएं घर बैठे सुंदर-सुंदर साल भी बुनती हैं। वांछू जनजाति का पहनावा-ओढावा—इस जनजाति के लोग प्राचीन समय में अपने शरीर पर टैटू लगाया करते थे, यानी स्त्री-पुरुष दोनों की शरीर पर गोदने-गुदवाने का काम करते थे और उसे श्रृंगार का अंग मानते थे। अब के समय में ऐसा कम देखने को मिलता है। महिलाएं घुटनों तक स्कर्ट और शाल पहनती हैं। नोक्ते जनजाति का पहनावा-ओढावा बहुत निराला है। इस जनजाति की महिलाएं

गले में पारंपरिक माला, कानों में सुंदर बाली और हाथों में तरह-तरह के चमकीले कंगन पहनती हैं। पुरुष भी कम नहीं सजते, स्त्री के समान कमर में बेंत का बेल्ट और लंबा लटका हुआ कोट पहनते हैं।

खानपान आयाम -अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त संस्कृति का खानपान आयाम- अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों की जिंदगी से जुड़े व्यंजनों की प्रचुरता दिखाता है, जो वहां की उपलब्धता और आवश्यकता को दर्शाता है। यहाँ पर जनजातीय व्यंजन का उल्लेख करते हुए 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में मक्का से बनी मदिरा को लाऊ पानी नाम देते हुए रिनचिन पात्र सैकिया बाबू से कहता है कि -"नहीं बाबू। चावल का नहीं, मकई का लाऊ पानी है। ...जनजातीय लोगों के घरों में जाने पर वे लोग इसी तरह मदिरा ही पेश करते हैं, इसके साथ भुनी हुई मछली या गोश्त भी देते हैं।"[20]

'मिनाम' उपन्यास में भी जनजातीय खानपान को लेकर बताया गया है। अरुणाचली लोग अपने घरों में मांस और मछलियों को सुखाकर सब्जी में डालकर खाते हैं। साथ ही बाँस को भी सुखाकर सब्जी में डालकर खाया जाता है और पूजा में बलि देने वाली पशु को भी पक्का कर खाते हैं। इस पर उपन्यासकार लिखते हैं कि - "पूजा में दी जाने वाली पशुओं की बलि से मांस भी खाया जाता है। मांस व मछलियों को चूल्हे के ऊपर सुखाया जाता है और उसे सब्जी में थोड़ा-थोड़ा डाला जाता है। बांस उनके जीवन का अभिन्न अंग है।"[21]

इसी तरह जनजातीय खानपान का वर्णन 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में भी मिलता है, जहाँ लोसर पर्व के उत्सव के समय घरों में जो व्यंजन बनाए जाते हैं, उनका उल्लेख उपन्यासकार ने किया है। इस पर उपन्यासकार लिखते हैं कि -

"याक का सूखा गोश्त, स्वादिष्ट थुकपा, आराक... दूसरे दिन अपने रिश्तेदारों के घर पात्र में खापसे और आराक डालकर बांटेंगे, रिश्तेदारों के साथ मिलकर दावत खाएंगे, ..."[22]

न्यिशी जनजाति घरों में मांस, मछली, साग की सब्जी और चावल अधिक खाते हैं। यू कह सकते हैं कि बिना मांस-मछली के चावल नहीं खाया जाता है। बैम्बू की सब्जी तो घर-घर में मिलती है। इस समाज की प्रसिद्ध चटनी 'सचीर चोह' है। यह सचीर एक तरह का बीज है; इसका पेड़ बहुत बड़े होते हैं। उनकी कोमल पत्तियों को अदरक, मिर्च, प्याज और हियूप (सुखा बैम्बू) के साथ चटनी बनाकर खाते हैं। न्योकुम त्योहार में खास तरह की 'कोहाम ओक' (जंगली पत्ता) से एमबीन (चावल) को बाँध कर आग में पकाया जाता है और बैम्बू के चुंगाह में भी चावल को डालकर आग में पकाया जाता है, जो खाने में स्वादिष्ट लगता है। यही नहीं, बैम्बू पर सब्जी भी पका कर खाई जा सकती है। जब खेतों की अनाज को चूहा या कीड़े खा जाते थे, तो उस समय के लोग अधिकतर तोप (मक्का), टेमी (मिलेट), ताया, तास्से, ताछ, न्यिंपुवा, ईगीन, होस-होला आदि जंगल के फल-फूल खाते थे। आज के समाज में भी इन सबको खाते हैं, पर अधिक मात्रा में नहीं। निशि समाज में दो तरह की ओपपो (मदिरा) बनती है -एक पोना ओप्पो (चावल से बनी, राइस बीयर), दूसरा तेमी ओप्पो (मारुआ से बना)। मारुआ से मिरी (एक प्रकार का पीटा) भी बनता है।–

"अरुणाचल प्रदेश का भोजन एक जनजाति से दूसरी जनजाति में भिन्न होता है। अरुणाचल प्रदेश के पूर्वी हिस्से का भोजन बांस और उबली हुई पत्तेदार सब्जियों पर निर्भर करता है। तवांग और आसपास के स्थानों के लोग डेयरी उत्पादों का अधिक उपयोग करते हैं। अरुणाचल प्रदेश के व्यंजन कम तैलीय होते हैं, अर्थात यहाँ के लोग कम तेल वाला और उबला हुआ खाना ज्यादा खाते हैं। चावल अरुणाचल प्रदेश का मुख्य भोजन है। अरुणाचली लोग गर्म कोयले के ऊपर खोखले बांस में चावल पकाते हैं। यह चावल को एक अलग स्वाद देता है। बैम्बू शूट में मीठा और खट्टा स्वाद होता है

और इसे सरसों और लहसुन का उपयोग करके तैयार किया जाता है। यह अरुणाचल प्रदेश के व्यंजनों में एक विशेष व्यंजन है। पीके पीला - पीके पीला अरुणाचल प्रदेश के स्वादिष्ट व्यंजनों में से एक है। आपातानी जनजाति ने इस व्यंजन को बांस की गोली, सुअर की चर्बी, सुगंधित मसाले और बहुत सारी मिर्च का उपयोग करके बनाया है। इसे चावल और दारू के साथ परोसा जाता है। लुक्टर-लुक्टर -यह एक भुना हुआ मांस का टुकड़ा है, जिस पर सूखी लाल मिर्च के बीज छिड़के जाते हैं।"[23]

अरुणाचल प्रदेश के अधिकतर जनजातियों का मुख्य भोजन चावल है। चावल को उबालकर सुबह और शाम को खाया जाता है। चावल के अलावा अन्य भोजन में बाजरा, मक्का, खदू, हरी सब्जियां, लाई पत्ता, पालक, बिंदी, अंडे, मांस, मछलियां आदि शामिल हैं। अरुणाचल प्रदेश के जनजातियों का स्थानीय मदिरा चावल, मक्का, कसावा, मरुआ से बनाया जाता है। जनजातियों का सबसे आसान और आरामदायक सब्जी बनाने का तरीका है उबली सब्जियां। धुएँ में सुखाई जाने वाली मुख्य भोजन है मांस और मछली। ताज़ा मांस और मछली को कभी-कभी आग में सुखाकर या भूनकर खाया जाता है। अरुणाचल प्रदेश के जनजातियों के खानपान-व्यंजन का उल्लेख 'Tribes of Arunachal Pradesh' पुस्तक में दिया गया है। लेखक डी. के. दुराह लिखते हैं कि -"ताश-ताचे' एक प्रकार का भोजन है, जो जंगली सागो, ताड़ के पेड़ से उत्पन्न होता है और निशि, पुरोइक, तागिन, मिजू मिश्मी और डिगारु मिश्मी जनजाति के लोग इसे खाते हैं। मोनपा और शेरतुकपेन दूध और दूध से बने उत्पाद लेते हैं।"[24]

जीविकोपार्जन- अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त संस्कृति के जीविकोपार्जन आयाम – जीविकोपार्जन आयाम का अर्थ है जीवन जीने का साधन। अरुणाचल वासी अधिकतर मांस-मछली और हरी साग-सब्जी के शौकीन होते हैं। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में रिनचिन अपनी प्रेमिका यामा के साथ मिलकर जिदिंग नदी से खूब सारी मछलियां पकड़ते हैं। शुरू में यामा को

मछली पकड़ना नहीं आता था, लेकिन जब रिनचिन ने सिखाया तो वह भी ठीक से मछली पकड़ने लगी। दोनों टोकरी भर मछलियां लेकर लौटते हैं। दूसरी तरफ यामा का भाई अपनी पीठ पर जंगली बकरी मारकर शिकार से लौट आता है। उपन्यासकार इस दृश्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं -

"रिनचिन के सिखाने पर इस बार उसने एक मछली को सिर की तरफ से पकड़ लिया। ... वह पत्थर के दूसरे हिस्से में रेत, कंकड़ आदि हटाकर एक सुराख बनाने लगा। मछली वाले गड्ढे के साथ जब यह सुराख जुड़ गई, तब उस तरफ से रिनचिन ने भी अपना हाथ घुसा दिया। रिनचिन के हाथ के स्पर्श के डर से मछलियों ने यामा के हाथ की तरफ सिर घुमा लिया। सिर हाथ में आने पर यामा फिर एक के बाद एक मछलियां पकड़ने में जुट गई। ...उसी समय तादाक आ गया। उसकी पीठ पर एक जंगली बकरी थी।"[25]

इसी उपन्यास में ही कभी हिरण, तो कभी जंगली सूअर, तो कभी जंगली बकरी को शिकार कर लाते हैं। ऐसा ही 'जंगली फूल' उपन्यास में भी दिखाया गया है, जहाँ जंगली जानवरों के मांस से जीवन निर्भर करता है। उपन्यासकार इस पर लिखते हैं -"यह मौसम शिकार और यात्रा के लिए उत्तम है। इन दिनों जंगली जानवरों के मीट में अतिरिक्त चर्बी और स्वाद आ जाता है। उन्हें सुखाकर महीनों तक थोड़ा-थोड़ा खाने के लिए रख लेते हैं लोग। जंगली फल, मधु, इत्यादि इसी महीने में मिलते हैं।"[26]

'मिनाम' उपन्यास में भी गांव वाले मिलकर नदी में मछली पकड़ने की प्रक्रिया को बताते हैं। जिस जगह मछली अधिक होती है, वहाँ नदी का पानी बांधकर दूसरी जगह से पानी को जाने दिया जाता है, ताकि मछलियां पकड़ने में आसानी हो। अगर पानी नहीं सूखता, तो वहाँ जहरीला पोदो पीसकर डाला जाता है, जिससे मछलियां तुरंत बाहर निकल आती हैं। उपन्यासकार इस प्रक्रिया का वर्णन करते हुए लिखते हैं - "गाँव वालों ने मिलकर एक नदी के पानी को रोक कर दूसरी ओर रास्ता बनाया जिसे हिबोक पेनाम कहते हैं। पत्थर और पत्तों की मदद से जब पानी का रुख बदल दिया जाता है, तब उस

नदी में पानी कम हो जाता है। तब ताम (एक प्रकार का कांटेदार पेड़ जिसका फल जहरीला होता है) को पीसकर पानी में बहा देते हैं। धीरे-धीरे मछलियां मर जाती हैं, तब सभी लोग मिलकर उन मछलियों को पकड़ लेते हैं।"[27]

ग. अन्य विविध विषय

कृषि और व्यवसाय- उपन्यासकारों ने खेत और व्यवसाय का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि अरुणाचल प्रदेश में खेतों की दो प्रकार की खेती होती है -एक झूम खेती, दूसरा पानी की खेती। इन खेतों से निकले अनाज, धान, मरुआ, मक्कई, संतरा, सेब आदि से जीवन यापन किया जाता है।

झूम खेती में जंगल की कटाई करके भूमि तैयार की जाती है और बीज बोए जाते हैं।

'उस रात की सुबह' उपन्यास में यापी की बुआ खेती करने में महारत हासिल किए हुए हैं, उनकी तारीफ़ गाँव-गाँव में होती है। उपन्यासकार इस पर लिखते हैं - "वह खेती-बाड़ी के काम में एकदम प्रवीण| खेती की बुआई हो या कटाई का मौसम, उनकी ही वजह से गाँव के खेतों में एकदम रौनक छाई रहती। या यूँ कहिए कि याका के ही कारण खेतों में धान की बुआई और कटाई के मौसम में एकदम उत्सव का सा माहौल होता था।"[28]

'मिनाम' उपन्यास में भी यामी पात्र औरतों के साथ झूम खेती करते हुए दिखाई देते हैं। झूम खेती के बारे में बताते हुए लिखा गया है कि यह खेती दो सालों में अलग-अलग जगहों पर की जाती है। उपन्यासकार 'मिनाम' में लिखते हैं -"रविवार के दिन गाँव की औरतों के साथ खेतों में भी जाने लगी। यह लोग पहाड़ों में बड़े-बड़े पेड़ काटकर झूम खेती करते हैं। हर दो साल में यह अलग जगह खेती बनाते हैं और हर पांच सालों में फिर उसी जगह उसी खेती को करते हैं।"[29]

पानी की खेती के बारे में 'उस रात की सुबह' उपन्यास में उपन्यासकार बताते हैं कि इसमें कीचड़ वाले खेतों में धान रोपा जाता है। उपन्यासकार लिखते हैं - "इन्हीं पानी खेती के कीचड़ में धान रोपते हुए वे सब नवयुवतियाँ ऐसे दिखती थीं मानो कीचड़ में कमल खिले हों।"[30]

'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी उल्लेख मिलता है कि ऊपर से देखने पर नीचे के हरे-हरे चाय बागान छोटे-छोटे माचिस के डिब्बे जैसे दिखाई देते हैं। उपन्यासकार लिखते हैं - "आसमान से कम ऊंचाई से देखने पर गहरे हरे रंग के छोटे-छोटे माचिस की डिब्बी के सदृश चाय के बागान, चावलों के अपेक्षाकृत भुरे पीत वर्ण के खेतों से अलग पहचाने जा सकते हैं।"[31]

'मातमुर जामोह' उपन्यास में भी खेती का उल्लेख मिलता है। उपन्यासकार लिखते हैं - "वर्षों से नहीं उजड़े उन जंगलों के विशाल वृक्षों को गिराने, खंडों में बांटकर सूख जाने पर आग लगाकर फिर उसे साफ करके, उसे खेती के योग्य तैयार करने में कितनी सावधानी बरतनी होगी। उन फसलों को किसान-मजदूरों ने अपना खून-पसीना एक कर सींचा था।"[32]

व्यवसाय का उल्लेख करते हुए 'सियांग के उस पार' में लिखा है- "कुछ दुकानों में प्लास्टिक के खिलौने और घरेलू जरूरत का सामान था।"[33]

इसी तरह 'मिनाम' उपन्यास में यामी पात्र अपने बच्चों की पढ़ाई और फीस भरने के लिए संतरे का व्यापार करने असम जाती है। उसी पैसे से वह बच्चों की पढ़ाई और अपना परिवार चलाती है, साथ ही बच्चों के भविष्य के लिए बैंक में खाता भी खुलवाती है। उपन्यासकार लिखते हैं- "जब फीस की बात आई तो वह रात की स्टेट ट्रांसपोर्ट की बस से असम में संतरे की बिक्री के लिए निकल पड़ी और अगली शाम फिर घर वापस आ गई... संतरे की अच्छी बिक्री हो गई थी, यापी खुश थी।"[34]

"यामी पैसे गिन रही थी, बच्चों की फीस देने के बाद बचे हुए कुछ पैसों को वह पास वाले गांव के ग्रामीण बैंक में बच्चों के भविष्य के लिए खाता खुलवाने के लिए सोच रही है..."[35]

उपन्यासकारों ने पशुपालन पर भी अपनी कलम चलाई है, जहाँ 'सोनाम' उपन्यास में इसका उल्लेख मिलता है। ब्रोकपा समाज में पशु पालन का व्यवसाय चलता है। अपने जीविकोपार्जन के लिए लबजाँग का परिवार सदियों से इस व्यवसाय को अपनाते आए हैं। उपन्यासकार लिखते हैं -

"उस तीव्र प्रकाश में पशुपालक समाज (जिसे ब्रोकपा नाम से जाना जाता है) के एक हट्टे-कट्टे, यौवन-मद से मदमाते, स्फूर्तिवान युवक की देह दमक उठी ।... साथ में छह याक बैल, यानी चाँवरी गायों को भी हाँकता लिये आ रहा है।"[36] आगे इसी 'सोनाम' उपन्यास में लिखा है कि- "जीविका-निर्वाह के साधन रूप में इस नवयुवक लबजाँग का खानदानी व्यवसाय है पशुपालन। ब्रोकपा यानी पशुपालन लबजाँग के अपने घर के सदस्यों की बात करें तो बस दो ही हैं, ..."[37]

पशुपालन को दर्शाते हुए 'सोनाम' उपन्यास में लबजाँग पात्र और पेमा वांगछू दोनों को पशुपालन करते हुए देखा जाता है। वे पहाड़ों और बर्फीली चट्टानों में अपनी पशु-समूह-भेड़, याक, बैल, चंवरी गाय-को सुरक्षित रखते हैं। कभी हिमबाग से और कभी अन्य जंगली जानवरों से बचाने का प्रयास करते हुए नजर आते हैं। उपन्यासकार ने भेड़ों को महामूर्ख कहा है, क्योंकि बाकी जानवरों की तरह वे खुद सुरक्षित जगहों पर नहीं चरते हैं। पशुपालक भी मौसम के बदलाव के कारण अपनी जगह बदलकर यायावर जीवन जीते हैं। उपन्यासकार लिखते हैं -

"एक दूसरी समस्या यह भी थी कि जब तक उन्हें जबरन खदेड़-खदेड़ कर हाँक कर न लिवा ले जाया जाये, तब तक भेड़े हरगिज ही वहाँ से जाने का नाम नहीं लेतीं, चाहे बर्फ में दब कर मर ही क्यों न जाएँ। दरअसल ये भेड़े महामूर्ख जानवर होती हैं।... इसी कारण से इस बर्फीली घाटियों के

ब्रोकपा अर्थात पशुपालक लोगों के पास पहाड़ की ऊँची-नीची, भिन्न-भिन्न जगहों पर निचली-उपरली कई-कई चरागाही छावनियां बदल-बदल कर एक प्रकार का यायावरी जीवन जीते हैं। मानो स्थायी घरों के निवासी न होकर खानाबदोशी जीवन जीने वाली घुमंतू पशुपालक जातियों की तरह हर-हमेशा तम्बुओं के डेरों में ही अपनी सारी जिंदगी बिताते हैं- सिक्किम, भूटान और अरुणाचल प्रदेश के पशुपालक समाज के लोग।"[38]

अरुणाचल प्रदेश के अधिकांश जनजाति कृषि पर आधारित है ।

"Arunachal Pradesh is a tribal people state basically agrarian by occupation with more than 66% population engaged in agricultural, horticultural, livestock rearing and other related activities. Livestock rearing has been an integral livelihood enhancement opportunity and nutritional security since time immemorial."[39]

अरुणाचल प्रदेश के कृषि संबंध के बारे में डॉ. वीरेंद्र परमार ने अपनी पुस्तक 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक साहित्य' में लिखा है कि —

"अरुणाचल एक कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ की अधिकांश आबादी कृषि पर आश्रित है। कृषि यहाँ के निवासियों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में प्रभावकारी भूमिका निभाती है। प्रदेश के अधिकांश पर्व-त्योहार और सामाजिक उत्सव कृषि से संबंधित हैं। यहाँ के अधिकांश निवासी झूम विधि से खेती करते हैं। यह इस प्रदेश की पारंपरिक कृषि पद्धति है।"[40]

चीन युद्ध- 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में चीन युद्ध का वर्णन विस्तार से अध्याय पाँच, बारह और तेरह में मिलते है । इस पर उपन्यासकार लिखते है कि – "1962 में तवांग का प्रशासन और तिब्बत-चीन घटनाएँ: तवांग का प्रशासन तिब्बत सरकार से भारत सरकार को हस्तांतरित किया जाना, तिब्बत पर चीन का कब्जा और दलाई लामा द्वारा कालचक्र पूजा इत्यादि घटनाएँ सत्य है।"[41]

लेखक थोंगछी जी ने चीन युद्ध का उल्लेख 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास के पाँच अध्याय में तिब्बत, चीन और भारत का आन्दोलन को बताते हुए लिखते है कि – "उस समय तिब्बत में राजनीतिक तूफान आया था, तिब्बत को चीन के कब्जे से आजाद करवाने के लिए आन्दोलन चल रहा था, जगह-जगह चीनी सैनिकों और तिब्बती लोगों के बीच संघर्ष हो रहा था और तिब्बत से शरणार्थी भारत आने लगे थे, इसका प्रभाव तवांग इलाके पर भी पड़ा था।"[42]

'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास के बारह अध्याय में आउ थांपा (दारगे) नायक के माध्यम से चीन युद्ध का वर्णन करते हुए नजर आता है । जिसमे दारगे नायक अपनी पत्नी गुईसेंगमू के साथ बैठ कर चीन युद्ध का कथा को सुनाता है। वे अपनी पत्नी से पूछता है कि 'क्या तुमने चीन युद्ध को देखा था?', 'उस चीन युद्ध में तुम कितनी बड़ी थी?' पत्नी जवाब में बताते है कि 'उस युद्ध में मैं छोटी थी, इसीलिए मुझे कुछ याद नहीं।' तभी दारगे नायक, अपनी चालीस वर्ष पुरानी यादों को याद करते हुए पत्नी गुईसेंगमू से बताते है कि वह चीन युद्ध बहुत भयंकर था । मैं उस चीन युद्ध को अपनी आँखों से देखा और उसका हिस्सा भी बन गया था । उस चीन युद्ध ने मेरे जीवन को बदल दिया है । अगर चीन युद्ध नहीं चला होता तो मेरा जीवन कुछ ओर होता । इस चीन युद्ध ने मुझे अपनी गाँव से अलग किया था । वे कथा इस प्रकार बताते है कि-"बहुत भयंकर था वह युद्ध । मैंने सिर्फ आँखों से देखा ही नहीं था, बल्कि युद्ध का एक हिस्सा भी बन गया था । उस युद्ध ने मेरे जीवन की दिशा बदलकर रख दी । अगर वह युद्ध नहीं होता तो आज मेरा जीवन कुछ और ही होता। मैं अपने छुरवी गाँव में

सुखी गृहस्थ जीवन गुजार रहा होता।... मैंने अपनी मर्जी से गाँव नहीं छोड़ा था। चीन युद्ध ने मुझे अपने गाँव से जुदा कर दिया, मुझे अपने ही लोगों से जुदा कर दिया।"[43]

'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास के तेरह अध्याय में भी चीन युद्ध का विस्तार से उल्लेख किया गया है। जहाँ दारगे नायक के साथी जिगमे, गम्बू , पेमा, नावांग सभी लोग उस युद्ध में टेलिफोन सिग्नेल तार रोला को तवांग से लुमपो तक ले जाने का काम करते है और इसी युद्ध में दारगे के सारी दोस्तों को चीनी सैनिक मार दिया जाता हैं। अकेला दारगे ही उस गोली बारी से बच जाते है, उनकी प्रेमिका जिगमे को भी गोली लग जाती है, जिसको दारगे बचा नहीं पाते है। चीन युद्ध होने का मुख्य कारण को दारगे नायक के माध्यम से लेखक बताते है कि-"नामखाछु नदी की तंग घाटी पर स्वामित्व को लेकर भारत और चीन सरकार के बीच शत्रुता पैदा हो गयी थी। यही पर आपरेशन ओंकार के जरिये धोला पोस्ट बनाने के बाद चीन और भारत के बीच युद्ध की नौबत आ गयी थी।"[44]

एतिहासिक संदर्भ- 'मातमुर जामोह' जुमसी सिराम का लिखा हुआ ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2015 में हुआ है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाया गया है। सन् 1911 के एंग्लो-अबोर युद्ध की सच्ची घटनाओं को आधार बनाया गया है।

यह एंग्लो-अबोर युद्ध कॉमसिंग गाँव, सियांग जिला, अरुणाचल प्रदेश में हुआ, जहां अंग्रेजी कप्तान नोएल विलियमसन और उनकी सहायकों, साथियों की हत्या की गई। ऐसा माना गया है कि यह हत्या मातमुर जमोह और उनके साथियों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए की थी।

इस पर डॉ. केनजुम बागरा ने 'मातमुर जामोह' उपन्यास में लिखा है कि –

"सन् 1911 के एंग्लो-अबोर युद्ध की ओर ले जाने वाली घटना की कहानी है। कॉमसिंग गाँव में अंग्रेजी कप्तान नोएल विलियमसन की हत्या पर कई किताब प्रकाशित हो चुके हैं।

लेकिन उन प्रकाशनों में मातमुर जमोह और उनकी टीम को उस समय के स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बहुत कम दर्शाया गया है। मुझे आशा है कि यह 'मातमुर जामोह' उपन्यास मातमुर और उनकी टीम के उन प्रयासों का मूल्यांकन करने में सहायक होगी, जिन्होंने बाहरी लोगों से अपनी मातृभूमि की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी।"[45]

सद्भावना और सहानुभूति- अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में जनजातियों के भीतर आपसी सद्भावना और सहानुभूति का भाव चित्रित किया गया है। अरुणाचली लोगों में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति का भाव कूट-कूटकर भरा पड़ा है । 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में दिखाया गया है कि अलग-अलग जनजाति के लोग एक-दूसरे की मदद करते हैं और एक-दूसरे का सहारा बनते नज़र आते हैं। सड़क निर्माण के कार्य में भी निशि, भूटिया, और शेरतुकपेन जनजातियाँ एक-दूसरे का हाथ बँटाते हुए नज़र आते हैं। साथ ही अलग-अलग भाषा भाषी जनजातीय समाज के लोग आपस में प्रेम बांटते और एक-दूसरे के हाव-भाव को समझते हुए मिलकर एक साथ आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं। भले ही एक-दूसरे की भाषा न समझते हों, सांकेतिक भाषा से तो समझ ही जाते हैं। ये जनजातियाँ एक-दूसरे के सहारे अपना जीवन यापन करती हैं। इसी तरह का भाव 'मिनाम' उपन्यास में भी दिखाई पड़ता है, जहाँ गाँव की औरतें खेतों में एक-दूसरे की मदद करतीं हैं और साथ ही हंसी-मजाक भी करती हैं।

मेहमान-नवाजी- अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में मेहमान के स्वागत-सत्कार की स्वस्थ परंपरा रही है। 'मिनाम' उपन्यास में गालो जनजाति की मेहमान-नवाजी की झलक मिलती है, जहाँ गालो जनजाति के स्वादिष्ट व्यंजन- आमीन, ताकि और पोका आदि को मेहमानों को परोसा जाता है। 'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी मेहमान-नवाजी का उल्लेख मिलता है, जहाँ नायक- बिक्रम और नायिका- मिनी अपने गांव लौटते वक्त जिस गाँव में रुक जाते हैं, वहाँ इन दोनों को गाँव वाले भोजन और अपोंग पिलाते हैं। साथ ही इन उपन्यासों में स्थानीय व्यंजनों और खानपान का उल्लेख भी मिलता

है। शेरतुकपेन जनजाति में मक्का से बनी मदिरा को लाऊपानी नाम दिया गया है। इन जनजातियों के घरों में मेहमान आते ही लाऊपानी और भुनी हुई मछली की सब्जी पेश की जाती है। वे लोग अपने घरों में मांस-मछलियों को सुखाकर सब्जी में डालकर खाते हैं। साथ ही बाँस को भी सुखाकर सब्जी में तोड़-तोड़कर डालते हैं।

अंधविश्वास- अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में अंधविश्वास का भी रूप देखने को मिलता है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में कई स्थानों पर अंधविश्वास का चित्रण मिलता है। 'जंगली फूल' उपन्यास में अंधविश्वास के चलते रूँगीया नामक स्त्री पात्र को डायन समझकर गाँव वाले उसे बाँधकर तरह-तरह की गालियाँ देकर सताते हैं। गांव वाले कहते हैं कि रूँगीया एक डायन या चुड़ैल है जो इंसान का मांस खाती है, साथ ही गांव के बच्चों को भी खा गई है। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में भी अंधविश्वास के चलते यह दिखाया गया है कि पहाड़ की खाई में भूत या शैतान है जो किसी जानवर की बलि माँगते हैं। इसको लेकर भूटिया जनजाति के पुजारी लोग घी, दिया, पान और अगरबत्ती चढ़ाते हैं। जबकि निशांग जनजाति के निबों (पुजारी) मंत्रोच्चारण करते हुए सूअर काटकर बलि चढ़ाते हैं। 'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी अंधविश्वास के चलते बिक्रम और निम्मी का रिश्ता टूट जाता है, जब निसमी का अंतिम संस्कार करने पुजारी घर में आता है तो उस दौरान वह कहने लगता है कि देबांग की आत्मा बिक्रम के शरीर में समाई हुई है। अगर बिक्रम और निम्मी दोनों शादी करेंगे तो उन दोनों में से एक निसमी की तरह मर जाएगा। साथ ही यह भी पुजारी बताते हैं कि देबांग की आत्मा ने निसमी को मारा है, अब बाकी जो बचा हुआ है उसे भी मार देगा। पहले के समय में इस तरह के अंधविश्वास, जादू-टोना जैसी चीजें समाज में प्रचलित थीं और लोग इस पर विश्वास भी करते थे। पुरानी लोककथाओं में भी इस तरह के अंधविश्वास देखने को मिलते हैं। परंतु आज के आधुनिक काल में अब कोई इन पर विश्वास नहीं करता है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में प्रचलित

अंधविश्वास का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ‘जंगली फूल’ में लिखते हैं कि अंधविश्वास के चलते रुंगिया नामक स्त्री पात्र को डायन मानकर गाँव वाले उसे बाँधकर तरह-तरह की गालियाँ देते हुए सताते हैं। उपन्यासकार लिखते हैं: “अरे दोन्यी तानी, तुमको नहीं मालूम, यह ‘जिअर’ है जिअर! गाँव के कितने बच्चों को खा गई यह शैतान औरत!” “रात को इसका जंगली साथी ‘पजिक’ आता है, यह मिलकर आदमियों का शिकार करते हैं!... ‘मार डालना है, मार डालना है इसे’।”[46] इसी उपन्यास में ही अंधविश्वास और ईर्ष्या के चलते तानी के भाई तापिन, रोबो और पुजारी के साथ मिलकर तानी की अनुपस्थिति में उनके दो बच्चों को बलि चढ़ा देते हैं। यह उपन्यासकार ने ‘जंगली फूल’ में लिखा है। परंतु यह जो वाक्य- “बच्चों को बलि चढ़ा देना”- यह सच नहीं है; यह एक काल्पनिक बात है। प्राचीन काल से ही तानी कथाओं में अंधविश्वास के चलते किसी मनुष्य की बलि चढ़ाने की बात नहीं सुनी जाती और न ही तानी कथाओं में ऐसा मिलता है। यह उपन्यासकार की काल्पनिक अभिव्यक्ति है। उपन्यास में लिखा है: “कबीले के मुखिया के दो बच्चों की बलि देनी ही होगी। माता सूर्य किसी और के बच्चे को इस बार नहीं स्वीकारेगी। संसार में महाप्रलय होगा।”[47] ये पूरी की पूरी वाक्य किसी फिल्मी की डायलॉग लगते है ।

‘मौन होंठ मुखर हृदय’ उपन्यास में भी रिनचिन एक पहाड़ से लेसांग मींटू नामक फूल को उखाड़कर काई से ऊपर की ओर चढ़ने लगते हैं। किंतु फिसलन के कारण वे काई के निचले हिस्सों में गिर जाते हैं। इसी घटना को लेकर न्यिशी दल के लोग यह मानते हैं कि उस काई में शैतान वास करता है। शेरतुकपेन दल के लोगों की भी यही धारणा है।

दोनों दल अपने-अपने पूजा-पद्धति की तैयारी करते हैं। न्यिशी दल सूअर काटकर बलि चढ़ाते हैं, जबकि शेरतुकपेन दल घी, अगरबत्ती और दिया जलाकर शैतान को भगाने का प्रयास करते हैं। इसी प्रसंग में तादाक अपनी टूटी-फूटी असमिया भाषा में अनुवाद कर दिलीप सैकिया बाबू को समझाता

है - “निबो (पुजारी) बोलता है, इस हाब्रङ में एक ऊई है। छोटा ऊई होने से भी आदमी को खाने आया। छोटा ऊई है न, खाने मालूम नहीं हुआ बोला। निबो बोलता है, होने से भी दूसरा दिन ऊई नु फिर आएगा। निबो बोलता है, सूअर काटकर ऊई करने ऊई हमको नहीं खाएगा।”[48]

‘सियांग के उस पार’ उपन्यास में भी अंधविश्वास के चलते बिक्रम और निसमी दोनों का रिश्ता टूट जाता है। पुजारी आकर बताते हैं कि देबांग का आत्मा बिक्रम के अंदर में है, और यदि निसमी बिक्रम से विवाह करेगी, तो बिक्रम या निसमी — दोनों में से कोई एक मिनी की तरह मर जाएगा। बिक्रम और निसमी की बातचीत से यह स्पष्ट होता है कि — “वह कहता है, देबांग का आत्मा ने मिनी को मार दिया और अब बाकी सब का भी मार देगा। और देबांग का आत्मा है तुम में। ...मैंने सबके सामने कहा कि मैं तुमसे शादी करेगा तो दंदाई ने कहा कि अपने माता-पिता के जीवन में यदि शादी किया तो फिर या तो यह लड़का या तुम, मिनी की तरह मर जाएगा।”[49]

पिछड़ापन- अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में पिछड़ापन भी बहुत है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज के पिछड़ेपन का भी चित्रण मिलता है। ‘मिनाम’ उपन्यास में मोदी गांव को दिखाया गया है, जहां बच्चों के लिए स्कूल नहीं है, बीमारों के लिए अस्पताल नहीं है, गाँव के लोग साफ-सफाई से दूर रहते हैं। गाँव में शौचालय भी नहीं है। लेखिका लिखता है- “जिस गाँव में कैंप हुआ, वो बहुत पिछड़ा हुआ है। बच्चे नंगे घूम रहे थे, साफ-सफाई नाम की कोई चीज वहाँ नहीं है। कई लोग बीमार हैं, पर चिकित्सा का कोई प्रबंध नहीं है। कुत्ते और बच्चे एक साथ खा रहे थे।”[50] ऐसे गाँव अभी भी कई हैं अरुणाचल में, जहां अभी तक आधुनिक युग की रोशनी नहीं पहुंची है।

शिक्षा का अभाव-अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में शिक्षा की कमी रही है। पहले के समय में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज शिक्षा को कोई अहमियत नहीं देते थे। यहाँ तक की गाँव के

लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजने से बहुत डरते थे। इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में व्याप्त शिक्षा के अभाव को दिखाया गया है। 'कन्या मूल्य' उपन्यास में गुम्बा(नायिका) के पिता कारगुम खुद तो पढ़े नहीं, बेटी को भी पढ़ने नहीं देते हैं। वे अपनी पत्नी से कहते हैं कि बेटी गुम्बा पढ़-लिखकर बड़ा अफसर नहीं बनेगी। उसकी जिम्मेदारी है सिर्फ और सिर्फ ससुराल में जाकर सास-ससुर की देखभाल करना और बच्चे पैदा करना। पुराने जमाने में तो बुज़ुर्ग लोगों की सोच ऐसी ही थी। वे कहते थे कि बच्चे स्कूल नहीं जाएंगे, बच्चे खेती करेंगे, बच्चे स्कूल जाने से बिगड़ जाएंगे आदि। 'मिनाम' उपन्यास में भी गाँव की औरतें बच्चों को स्कूल भेजने से मना करती हुई दिखाई गई हैं। लेकिन पुराने समय में कुछ ऐसे भी व्यक्ति सभी समाजों में रहे हैं जो शिक्षा के महत्व को समझते थे और उसके लिए आग्रह करते थे। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में तादाक (पात्र) पढ़े-लिखे नहीं हैं, लेकिन वे शिक्षा का महत्व समझते हैं, इसलिए मास्टर बाबू से आग्रह करते हैं कि सेपा गांव में बच्चों के लिए एक स्कूल खोल दें। वे अपनी स्थानीय बोली में मास्टर बाबू से आग्रह करते हैं- "बाबू बच्चा लोग को पढ़ना-लिखना सिखाता है। हमका सेपला में भी स्कूल एक थो बनाना सकता है क्या?"[51] अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में समाज के विविध पक्षों के साथ-साथ शिक्षा की समस्या भी प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुई है। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में तादाक अपनी टूटी-फूटी भाषा में दिलीप बाबू से पढ़ाई-लिखाई के लिए स्कूल खोलने की बात कहता है। वह कहता है कि -"बाबू! हम का आप का एक साथ बैठके बहुत बात जान गिया। पड़ाई-लिखाई करने से तु कितना अच्छा है। रिनचिन बोलता है, रूपा गांव में तो इस्कुल है, बड़ा बस्ती है न, इसलिए ईस्कुल बनाया है। उस में मास्टर बाबू बच्चा लोग को पढ़ना-लिखना सिखाता है। हम का सेपला में भी एक ठो स्कूल बना सकता है क्या?"[52]

'कन्या मूल्य' उपन्यास में भी लिखा है कि पहले के समय में शिक्षा को लेकर कोई अहमियत नहीं समझते थे। गाँव के लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजने से बहुत डरते थे।

'मन्य मूल्य' उपन्यास में गुम्बा के पिता गुम्बा को स्कूल से छुड़वाना चाहता है, इसलिए अपनी पत्नी से कहता है कि गुम्बा को भुला लाओ, पढ़ाई कर वो कोई बड़ा आदमी नहीं बन पाएगी, उसकी जिम्मेदारी सिर्फ और सिर्फ बच्चे पैदा करना, ससुराल में सास और ससुर की देखभाल करना। गुम्बा के पिता अपनी पत्नी से कहता है कि — "स्कूल भूल जाओ। वो कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं बन जायेगी पढ़कर। भूलो, ये सब भूल जाओ। एक विवाहित लड़की क्लर्क व ऑफिसर बनने की तमन्ना करे.... उसकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी बच्चे पैदा करना और ससुराल के परिवार की देखभाल करना है।"[53]

इसी उपन्यास में ही गुम्बा की सहेलियों से वार्तालाप के दौरान पता चलता है कि उन लोगों को भी परिवार वाले स्कूल जाने से रोकते हैं। गुम्बा की दोस्त योमे कहती है कि -"मैं भी आज स्कूल में पढ़ रही होती अगर मुझे मेरे पिता ने बचपन में ही बेचा न होता.... जब मैं कक्षा आठ में थी, तभी मेरे मां-बाप ने मुझे अपने पति के घर जाने को कहा। मैंने विरोध किया तो मेरे मां-बाप ने यह सब मेरे ससुराल वालों से बताया। मेरे ससुराल वालों ने इसकी शिकायत केबांग में की।"[54]

मिनाम उपन्यास में भी गांव की औरतें बच्चों को स्कूल जाने से मना करती हैं और कहती हैं कि यदि तुम स्कूल चली जाओगी तो छोटे भाई-बहन को कौन देखभाल करेगा।

अब से स्कूल में मेरी बेटी को मत बुलाना कहते हुए यामी को धमका कर निकल जाते हैं।

गाँव की एक औरत यामी से कहती है कि-"मुझे लकड़ी लाने जंगल जाना है, तुम पढ़ोगी तो छोटे भाई को कौन संभालेगा? मेरी बेटी को अब से मत बुलाओ। बाद में भाई ने बताया कि लड़कियों

को पढ़ कर क्या करना है - शादी करके घर ही तो संभालना है। जब तक माँ-बाप के घर हैं, माँ-बाप की मदद करनी है, घर का काम सीखना है। उस दिन पढ़ाई नहीं हुई।"[55]

निष्कर्ष :

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में समाज और संस्कृति का चित्रण केवल जनजातीय जीवन का दस्तावेज भर नहीं है, बल्कि यह वहाँ के लोगों की आत्मा, उनके अस्तित्व और जीवन-दर्शन का जीवंत प्रतिबिंब है। इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश की भौगोलिक विविधता, सामाजिक संरचना, धार्मिक विश्वास, लोकपरंपराएँ, और सांस्कृतिक गौरव – सब एक साथ अभिव्यक्त होते हैं। अरुणाचल प्रदेश के समाज का मूल स्वर सामूहिकता, सहयोग और प्रकृति के प्रति आस्था पर आधारित है। यहां का जनजीवन दोन्यी-पोलो (सूर्य-चंद्र) धर्म की भावना से प्रेरित है, जिसमें मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य का अद्भुत उदाहरण देखने को मिलता है। इन उपन्यासों में दिखाया गया है कि जनजातीय लोग अपने पारंपरिक रीति-रिवाजों, त्योहारों, लोकगीतों, और लोक नृत्यों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक पहचान को पीढ़ी दर पीढ़ी संजोए रखते हैं। साथ ही, इन रचनाओं में समाज के उन यथार्थों को भी रेखांकित किया गया है जो परिवर्तन की मांग करते हैं । जैसे नारी शोषण, दहेज या वधू मूल्य की प्रथा, अंधविश्वास, अशिक्षा और सामाजिक असमानताएँ। लेखकों ने यह भी दिखाया है कि आधुनिक शिक्षा और बाहरी प्रभावों के आगमन से यह समाज धीरे-धीरे परिवर्तन की ओर अग्रसर है, परंतु अपनी जड़ों और परंपराओं को छोड़ नहीं रहा है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यास वहाँ के समाज और संस्कृति की आत्मकथा हैं।

इन उपन्यासों ने जहाँ एक ओर जनजातीय जीवन के नैसर्गिक सौंदर्य, लोक परंपराओं और धार्मिक विश्वासों को उजागर किया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक विसंगतियों, संघर्षों और बदलाव की प्रक्रिया को भी प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत किया है। यह कहा जा सकता है कि अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में न केवल साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध हैं, बल्कि सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों के संवहन में भी अपनी विशिष्ट भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ सूची:

---

[1] http://study.com/academy/lesson/types-of-societies-in-sociology-lesson-quiz.htmi-Seeing date: 19-08-2025, Time: 12:59–1:10 am

[2] लुम्मेर दाई, अनुवादक: मुनीन्द्र मिश्र, कन्या का मूल्य, पृ. 3

[3] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक दिनकर कुमार, शव काटने वाला आदमी, पृ. 14

[4] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक दिनकर कुमार, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 126

[5] वही, पृ. 63

[6] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 36

[7] वही, पृ. 9

[8] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 222

[9] https://hindiguider.com/dharm-arth-paribhasha-visheshta/- Seeing date: 22-08-2025, Time: 2:30 pm

[10] . वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, पृ. 18

[11] मोर्जुम लोयी, मिनाम उपन्यास, पृ. 33

[12] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 108

[13] डॉ. जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 31

[14] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक दिनकर कुमार, शव काटने वाला आदमी, पृ. 108–109

[15] मोर्जुम लोयी, मिनाम उपन्यास, पृ. 24

[16] डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 30

[17] येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 8

[18] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 208

[19] डॉ. जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 9

[20] येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 18

[21] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 33

[22] येसे दरजे थोंगछी, शव काटने वाला आदमी, पृ. 109

[23].https://www.holidify.com/pages/food-of-arunachal-pradesh-1660.html Seeing date: 06-05-2023, Time: 10:13 pm

[24] Ed. Bibhash Dhar, Palash Chandra Coomar, Tribes of Arunachal Pradesh, p. 151

[25] येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 161

[26] डॉ. जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 9

[27] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 68

[28] डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 33

[29] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 36

[30] तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 45

[31] . दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 23

[32] जुमसी सिराम 'नीनो', मातमुर जामोह, पृ. 1

[33] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 48

[34] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 57

[35] वही, पृ. 57

[36] येसे दरजे थोंगछी, सोनाम, पृ. 8

[37] वही पृ.8

[38] वही, पृ.135

[39] https://ahvdd.arunachal.gov.in -Seeing date: 06-09-2023, Time: 11:40 pm

[40] डॉ. वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, पृ. 9

[41] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक दिनकर कुमार, शव काटने वाला आदमी, पृ.-8

[42] वही, पृ.-67

[43] वही, पृ.-113-115

[44] वही, पृ.-118-119

[45] जुमसी सिराम 'नीनो', मातमुर जामोह, पृ. 3

[46] डॉ. जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 33

[47] वही, पृ. 69

[48] येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 60

[49] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 244

[50] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 17

[51] येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 131

[52] वही, पृ. 13

[53] लुम्मेर दाई, कन्या का मूल्य, पृ. 4

[54] वही, पृ. 35

[55] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 8

चतुर्थ अध्याय

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के प्रश्न

(क) कन्या मूल्य

(ख) बाल विवाह

(ग) बेमेल विवाह

(घ) बहुपत्नी प्रथा

(ङ) बहुपति प्रथा

(च) प्रेम संबंध

(छ) स्त्री शोषण का स्वरूप

चतुर्थ अध्याय

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के प्रश्न

स्त्री अस्मिता का अर्थ है- स्त्री की व्यक्तिगत पहचान, उसकी आत्मनिर्भरता की स्वीकृति, स्वतंत्रता, सुरक्षा, मुक्ति की चाह, अपने अधिकारों पर विचार, तथा जीवन संघर्ष की चेतना। साथ ही, पितृसत्तात्मक समाज की बंधनों से मुक्ति का विद्रोह और स्त्री-पुरुष समानता के लिए संघर्ष करना भी स्त्री अस्मिता कहलाता है।

इसी प्रकार अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के प्रश्नों को उठाते हुए उपन्यासकारों ने 'कन्या मूल्य', 'सोनाम', 'जंगली फूल', 'उस रात की सुबह', 'मिनाम', 'मेरी आवाज़ सुनो' आदि उपन्यासों में नारी की पीड़ा, नारी मुक्ति, नारी शोषण के विरुद्ध विद्रोह, नारी के स्वप्न, संघर्ष और अस्तित्व जैसे प्रसंगों को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

'उस रात की सुबह' उपन्यास में यापी की माँ अपनी बेटी की मदद न कर पाने का खेद व्यक्त करती है। वह न पति का विरोध कर पाती है और न ही पुरुष प्रधान समाज के बनाए नियमों का। वे अपनी बेटी यापी की पीड़ा पर मन ही मन रोती और बिलखती रह जाती हैं।

'उस रात की सुबह' उपन्यास में यापी की माँ कहती हैं- "इस पुरुष प्रधान समाज में सारे नियम-कानून इन पुरुषों के द्वारा बनाए हुए हैं, और फिर उन नियमों का पालन करें स्त्रियां ही। सब कुछ अपने ही पक्ष में कर ली इन मर्दों ने और अन्याय सहे स्त्रियाँ। सहती रहें पर उन अन्यायों के खिलाफ आवाज भी न उठाएँ। वाह रे! पुरुष प्रधान समाज! जुल्म तो ऐसे कर रहे हो स्त्रियों पर जैसे स्त्रियों के कोख से पैदा न होकर कहीं आसमान से टपके हो जैसे।"[1]

एक माँ की दर्द भरी चीख पुरुष प्रधान समाज में दबकर रह जाती है। यापी की माँ उस समाज से बगावत करना चाहती है, वह चीख-चीख कर यह कहना चाहती है कि मेरी बेटी के साथ अन्याय हो रहा है, मैं इस फैसले के खिलाफ हूँ। परंतु उसकी आवाज़ उस पुरुष प्रधान समाज के शोर में घुटकर रह जाती है। वह मन ही मन रोती, तड़पती और असहाय होकर मौन रह जाने को मजबूर हो जाती है।

यापी की माँ उस पुरुष प्रधान समाज से सवाल करती है कि - "बेटी कोई निरीह गाय नहीं होती जिसे कभी भी, कहीं भी, किसी भी खूंटी से बांध दिया जाए... कितनी बेबस हूँ मैं! मेरी बेटी पर इतना बड़ा अन्याय भरा फैसला होने पर भी मैं कुछ भी नहीं कर पा रही हूँ। क्या इसी दिन के लिए मैंने दर्दनाक प्रसव पीड़ा सहकर अपनी बेटी को जन्म दिया था कि एक दिन ये सब समाज के ठेकेदार मिलकर उसकी जिंदगी का फैसला इस तरह से अन्याय पूर्वक करें, जैसे कि वह कोई अपराधीनी हो?"[2]

दरअसल, वर्षों से पितृसत्तात्मक समाज में नारियों की कोई अहमियत नहीं रही। नारी की इच्छा और चाह को जानने की कोशिश तो दूर, उनसे कभी पूछा तक नहीं गया। यही दशा 'उस रात की सुबह' उपन्यास में यापी पात्र के साथ भी देखने को मिलती है, जहाँ समाज के मुखिया लोग उसके साथ खुला अन्याय करते हैं।

उपन्यास में उपन्यासकार ने दिखाया है कि पितृसत्तात्मक और पुरुष प्रधान समाज की पंचायत में यापी नामक युवती का विवाह अधेड़ उम्र के तातो नामक पुरुष से तय कर दिया जाता है। यह निर्णय पंचायत के बुजुर्गों द्वारा यापी की इच्छा और रजामंदी के बिना ही लिया जाता है।

इस पर यापी का मन करता है कि वह उस समाज को पूरा चुनौती दे, ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर उस पुरुष प्रधान समाज के ठेकेदारों से पूछे -उसका क्या कसूर है? क्यों सिर्फ उसी पर तमाम रीति-रिवाजों और पारंपरिक नियम-नीतियों का हवाला डाला गया है?

यापी का मन उस समाज से चीख-चीख कर सवाल करता है — "यह कैसा न्याय है? इतनी बड़ी सज़ा क्यों? क्या कसूर है मेरा? ऐसा कौन सा जघन्य अपराध कर दिया है मैंने? आप लोगों ने कभी मेरी रज़ा जानने की भी कोशिश की? मुझसे कभी किसी ने पूछा कि मैं क्या चाहती हूँ? फैसला सुनाने से पहले एक बार भी मुझसे पूछ लिया होता? पर उसकी आवाज उसके ही हलक में घुटकर रह जाती है, क्योंकि इस प्रकार सभा या कबा में औरतों का बोलना एकदम वर्जित माना जाता है। कबा के खिलाफ बोलना तो एक घोर अपराध समझा जाता है।"[3]

'उस रात की सुबह' उपन्यास में नारी अस्मिता से संबंधित कई प्रश्नों को उठाया गया है। उपन्यासकार ने यापी के माध्यम से एक गहरी सामाजिक तुलना प्रस्तुत की है, जिसमें स्त्री और पशु के मूल्य पर प्रश्नचिन्ह लगाया गया है।

लेखक स्वयं से यह सवाल करते हैं कि — क्या स्त्री का मूल्य मात्र कुछ पशुओं (मिथुनों) के बराबर है? क्या उसकी अपनी कोई पहचान, अस्तित्व या गरिमा नहीं है?उपन्यासकार इस पीड़ादायक प्रश्न को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं – "उफ्फ! दस सबअ/ मिथुन — क्या स्त्री का मूल्य सिर्फ दस मिथुन ही होता है? क्या स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता? क्या स्त्री और मिथुन में कोई अंतर नहीं होता?"[4]

यह प्रश्न न केवल यापी के लिए बल्कि पूरे पितृसत्तात्मक समाज के लिए एक नैतिक चुनौती बनकर उभरता है। स्त्री की कीमत पशु के मूल्य से आंकी जाना समाज के उस दृष्टिकोण को उजागर करता है, जो नारी को वस्तु की तरह देखता है, न कि एक संवेदनशील और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में। इसी उपन्यास में यापी और उसकी माँ की भेंट एक बुजुर्ग महिला आयो न्यिकाम से होती है। आयो न्यिकाम भी अपने जीवन में पुरुष प्रधान समाज के अत्याचारों और सामाजिक असमानता का दर्द झेल चुकी हैं। वे अपने दुख-दर्द की कथा यापी और उसकी माँ से साझा करते हुए बताती हैं कि जब उनके

पति ने अपनी पसंद की दूसरी महिला से विवाह कर लिया, तो वे उस घर में एक विवाहित होते हुए भी अकेली स्त्री बनकर रह गईं।

जब गाँव के बुजुर्गों ने यह दशा देखी, तो उन्होंने आयो न्यिकाम को सलाह दी कि वे अपने पति के भाइयों में से किसी एक को चुनकर उसकी पत्नी बन जाएँ। परंतु आयो न्यिकाम ने उस अमानवीय प्रस्ताव को ठुकराते हुए दृढ़ता से उत्तर दिया – "एक भाई ठुकराए और मैं दूसरे के साथ बैठ जाऊँ? हरगिज नहीं! मैं भी इंसान हूँ। मेरा भी कोई अस्तित्व है। कोई कपड़े का जोड़ा नहीं कि एक को पसंद नहीं आया तो दूसरे भाई ने पहन ली।"[5]

आयो न्यिकाम की कहानी यह थी कि उनके जमाने में नेप्प न्यिदा प्रथा चलती थी। उनका विवाह नेप्प न्यिदा से हुआ था। नेप्प न्यिदा का अर्थ यहाँ बताया गया है कि जब बच्चे माँ के गर्भ में पल रहे होते हैं, तब उनकी शादी तय की जाती है। आयो न्यिकाम जब पैदा हुईं तो उनके पति का जन्म भी नहीं हुआ था। आयो न्यिकाम को चार साल इंतज़ार करना पड़ा। फिर कहानी बताते हुए वे कहती हैं कि उस ज़माने में जबरदस्ती बेमेल विवाह केवल नारी के साथ नहीं होते थे, बल्कि पुरुषों के साथ भी होते थे। लेकिन पुरुष अपनी समस्या का रास्ता यह निकाल लेते थे कि अपने पसंद की नारी से विवाह कर लेते थे। पहली पत्नी घर में इंतज़ार करती रह जाती थी, बावजूद इसके भी पुरुष ऐसा करते थे। उन्हें समाज की कोई नियम-नीति नहीं रोक सकती थी। अगर नारी ऐसा करे तो उसकी सज़ा मौत होती थी। आयो न्यिकाम की कहानी को सुनकर यापी की माँ अपने मन ही मन सवाल करने लगती है। वे 'उस रात की सुबह' उपन्यास में कहती हैं कि – "वाह रे! औरत, तू तो सचमुच एक अनबूझ पहेली हो। जिसके पति ने उन्हें जीवन भर तड़पाया, बिना किसी अपराध के जिंदगी भर सज़ा भुगतने को मजबूर किया, उनके बजाय जिस सौत के साथ उनके पति ने अपना घर बसाया, उसके सारे वैवाहिक अधिकार छीनकर सौत को सौंपा और उन्हें यानी कि इन सबकी अधिकारिणी को (आयो न्यिकाम)

बेसहारा कर दिया। और उन्हें जीवन भर निःसंतान रहने और एकाकीपन में जीवन जीने को मजबूर किया। आज उन्हीं की बेटी को अपना सब कुछ सौंप देना चाहती है यह अनोखी औरत, आयो न्यिकाम! नारी, तू वास्तव में नारायणी हो! धन्य!"[6]

ऐसे ही कई प्रसंग नारी अस्मिता के ऊपर उठाए हुए 'उस रात की सुबह' उपन्यास में भरे पड़े हैं। डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' की रचना चाहे 'काताम' कहानी हो या 'उस रात की सुबह' उपन्यास - इन रचनाओं की स्त्री पात्र जीवन भर संघर्ष करते हुए नजर आती हैं। सुबह से लेकर शाम तक घरों में, खेतों में, यहाँ तक कि हाथों की छाले छिल जाने तक काम करते हुए दिखती हैं। इन औरतों के हाथों में सजने-संवरने का रंग नहीं होता।

'जंगली फूल' उपन्यास में भी स्त्री की यही दशा है - सिमांग, आसीन, रुंगिया, दोलियांग, याई और जीत आदि पात्र इसका उदाहरण हैं। उपन्यासकार ने 'साक्षी है पीपल' कहानी और 'जंगली फूल' उपन्यास में अधिकांश शोषित स्त्रियों की दशा को दिखाया है, जिसमें सिमांग और तापिक के संबंध का चित्रण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सिमांग को तापिक ने केवल खरीदी हुई औरत के रूप में देखा है। जब तानी गलती से सिमांग के स्थान पर आ जाता है और उसी वक्त दोनों को सिमांग का पति तापिक देख लेता है, तो गलत समझते हुए तापिक सिमांग के बालों को बेदर्दी से पकड़ते हुए कहता है - "मेरी खरीदी हुई औरत, तेरी इतनी हिम्मत?"[7]

इस 'जंगली फूल' उपन्यास में स्त्री या पत्नी का रूप केवल खरीदी हुई वस्तु के रूप में है। स्त्री का कोई सम्मान नहीं है, पत्नी की कोई इच्छा ही नहीं है। सदियों से तानी समाज में जो नारी किसी पुरुष के हाथों बिक चुकी होती, उसके साथ जानवरों जैसे शोषण किया जाता था। उन नारियों को किसी सुअर के समान समझकर घरों में बाँधकर रखा जाता था। ऐसे हालात में कुछ नारियाँ वहीं दम तोड़ देती, तो कुछ वहीं से भाग निकल जाती थी।

ऐसा ही 'कन्या मूल्य' उपन्यास में गुम्बा नायिका के साथ होता है। उसे शहर से घसीट कर खरीदी हुई घर ले जाया जाता है। इस पर गुम्बा की माँ अपने पति से पूछती है - "तो मेरी बेटी गाय या सूअर है क्या, जो वो लोग उसे ऐसे घसीट ले गए?"[8]

यह बात सच है कि समाज में केवल पुरुष ही नारी पर शोषण नहीं करते आए हैं, बल्कि स्त्रियां भी नारियों पर शोषण करती आई हैं। इन उपन्यासों में कभी माँ के रूप में बेटी को पति के लिए मनपसंद औरत अधिक से अधिक खरीदने की सलाह देते हुए दिखाया गया है, तो कभी सास के रूप में बेटे के पक्ष में खरीदी हुई बहू पर 'पति को खाने वाली डायन' आदि प्रहार करते हुए दिखाया गया है, कभी सौतन की पिटाई करने की बात करते हुए दिखाया गया है।

ऐसा ही 'मेरी आवाज़ सुनो' उपन्यास में आयि नायिका की सास अपनी बहू को बाँझ और चुड़ैल कहती है। जब तक बहू सास के आदेश का पालन करती रहती है, तब तक बहू की तारीफ होती है, और जब बहू सास का आदेश पालन नहीं करती, तब बहू डायन, बाँझ, चुड़ैल बन जाती है। आयि की सास कहती है - "उसकी बड़ी बहन तो बाँझ थी, बाँझ!... बहू के घर में रहने से विभिन्न कामों से मुझे थोड़ी फुरसत मिलेगी। पर लगता है यह चुड़ैल और भी नई मुसीबत खड़ी कर देगी।"[9]

नारी अस्मिता के प्रसंग को उठाते हुए 'कन्या मूल्य' उपन्यास की नायिका गुम्बा बताती है कि उस समय के समाज में पुरुष स्त्रियों को अपनी संपत्ति समझते थे। जब लड़की पैदा होती थी, पुरुष प्रधान समाज को खुशी होती थी जैसे नई संपत्ति घर में आ गई हो।

इसी बात को नायिका गुम्बा 'कन्या मूल्य' उपन्यास में कहती है कि - "सचमुच मर्द लड़कियों को अपनी निर्जीव संपत्ति मानते हैं। जब एक लड़की पैदा होती है, तो वो खुश होते हैं जैसे नई संपत्ति घर में आ गई हो।"[10]

नारी अस्मिता के प्रश्न – जुमसी जी के उपन्यास 'मेरी आवाज़ सुनो' में आयि पात्र की भाभी याजुम पात्र नारी पर होने वाले अत्याचारों पर सवाल उठाते हुए सोचने लगती हैं कि क्यों स्त्री को हमेशा पुरुष के इशारों में चलना होता है? वे अपनी ननद यायि की स्थिति को देखकर दया भी करती हैं और अपने पति से विरोध भी करती हैं, फिर भी उनके पति उनकी एक नहीं सुनते। वे करें तो क्या करें, इस समाज का, जो स्त्री पर हर तरह के जुल्म करते आए हैं, और स्त्रियां भी यूँ ही जुल्म सहती आई हैं।

जिस समाज में यायि और उनकी भाभी रहते थे, वहाँ समाज को बदलना मुश्किल था, क्योंकि उस समाज में पुरुष ही हर चीज़ पर निर्णय लेते थे। ऐसे में वे दोनों ही लाचार थीं। यायि की भाभी अपने आप से प्रश्न पूछती हैं कि- क्या स्त्री को पुरुष की उंगलियों में नाचना लिखा गया है? नारी के लिए शिक्षा नहीं,धन और दौलत नहीं,उसका अपना तन और मन भी नहीं- ऐसा क्यों है? समाज ने ऐसा भेदभाव स्त्री और पुरुष के बीच क्यों किया है? क्या नारी कोई मनुष्य नहीं है? उसकी कोई पहचान नहीं है? नारी की कोई स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए? क्या नारी समाज का हिस्सा भी नहीं है? नारी की अपनी कोई इच्छा नहीं है? जब चाहे पुरुष उसे बेच देते हैं। स्त्री की कोई सम्मान और इज्जत ही नहीं है। छि! ऐसे समाज को, धिक्कार है ऐसे समाजों को! आदि गालियां देते हुए याजुम कहते हैं कि - "वह नारी है, नारी… जो मर्दों के इशारे पर चलती है। मर्दों की उंगलियों पर नाचना ही नारी के नसीब में लिखा है। औरतों के पैरों की बेड़ियाँ बहुत ही सख्त हैं। स्त्री के लिए धन-दौलत नहीं, शिक्षा-दीक्षा नहीं; यहाँ तक कि उसका तन और मन भी उसका अपना नहीं। क्या स्त्री की कोई स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए? क्या नारी मनुष्य नहीं है? समाज का अंग नहीं है नारी? नारी ही तो इस पृथ्वी के प्राणियों की जन्मदायिनी है। लिंग-भेद के कारण ही क्या पुरुषों को अपना या बेटियों को विक्रय करके मुनाफा कमाना चाहिए? छि: छि:! यह कैसी अमानवीय प्रथा है हमारे समाज में। लड़की का मूल्य उसके परिवार वालों को देकर लड़के वाले लड़की ले जाते हैं। लड़की की इच्छा का कोई अर्थ नहीं है। जो चाहे उसे पत्नी या

बहू बना ले। न्यीजुम (याजुम) उन मर्दों को मन-ही-मन धिक्कारने लगी। पुरुष का यह विचार एक पागलपन ही है कि नारी को प्रकृति ने सिर्फ पुरुषों के लिए रचा है। समाज ने स्त्री को उपभोग योग्य सामग्री के सिवाय मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया। क्या स्त्रियों को पुरुष जाति के समक्ष झुककर उनका मनमाना अत्याचार सहना चाहिए? स्त्री को विक्रय की जंजीर में बांधा है, क्या इसलिए उसे हर अत्याचार हँसते-हँसते झेलना चाहिए?"[11]

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के प्रश्न को सात उप-अध्यायों में बाँट कर उसका विवेचन किया गया हैं:

(क). कन्या मूल्य

(ख). बाल विवाह

(ग). बेमेल विवाह

(घ). बहुपत्नी प्रथा

(ङ). बहुपति प्रथा

(च). प्रेम संबंध

(छ). स्त्री शोषण

इन सबका क्रमबद्ध और विस्तार पूर्वक उल्लेख किया गया है ।

(क). कन्या मूल्य:

कन्या मूल्य का अर्थ है कि वह संपत्ति, जो लड़के के परिवार से लड़की के परिवार को शादी के समय उपहार के रूप में दी जाती है- जैसे मिथुन, सूअर, मांस, मछली, ओपो आदि कीमती सामान। इसे शादी का लेन-देन भी कहा जा सकता है।

कन्या मूल्य पर लेखक लुम्मेर दाई ने अपनी उपन्यास 'कन्या मूल्य' में लिखा है कि कन्या मूल्य दिए जाने के बाद गुम्बा नायिका के साथ किस तरह शोषण किया जाता है। उपन्यास में इसी घटना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

कहा जा सकता है कि यह समाज का एक हिस्सा दिखाने का प्रयास है, जब उस समय कन्या मूल्य प्रथा प्रचलित थी। यह प्रथा केवल अरुणाचल प्रदेश में ही नहीं, बल्कि भारत के अन्य राज्यों में भी प्रचलित थी। आसान भाषा में कहा जाए तो- जो लड़की की कीमत चुका पाया, वह लड़की उसके घर में गई; जो नहीं चुका पाया, वह लड़की उसके घर में नहीं गई। और जो लड़की इसका विरोध करती, उसके साथ तरह-तरह के दंड दिए जाते थे।

'कन्या मूल्य' उपन्यास में यह भी दिखाया गया है कि कन्या का मूल्य लेने के बाद, गुम्बा नायिका के हालात को देखकर परिवार वाले कभी-कभी कन्या का मूल्य लौटा भी देते हैं। हालांकि समाज में आम तौर पर ऐसा नहीं होता, वहाँ कुछ अलग नियम और कानून चलते थे।

जिस पर अनुवादक ने लिखा है कि यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश का क्रांतिकारी उपन्यास है। अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समाज में प्रचलित वधू मूल्य प्रथा के दुष्परिणामों को 'कन्या मूल्य' उपन्यास में दिखाया गया है। कन्या मूल्य प्रथा का विरोध करने वाले नारी पात्र गुम्बा पर समाज के पुरुष ऐसी सजा सुनाते हैं कि गुम्बा के लिए एक पल के लिए साँस भी लेना मुश्किल हो जाता है।

इस कथा पर अनुवादक मुनीन्द्र मिश्र ने 'कन्या मूल्य' उपन्यास में लिखा है: ''यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश में बेटी की कीमत लेने की प्रथा के दुष्परिणामों का चित्रण है। इस प्रथा के खिलाफ आवाज उठाने वाली लड़की की अत्यंत मार्मिक कथा है। सामाजिक संस्कारों में जकड़े एक पिता के द्वारा समाज और स्नेह के मध्य 'दुंदु' की ऐसी अद्भुत कल्पना है, जो कभी-कभी ही सृजित होती है।

बीस दिन तक अनाहार रहकर अपने ससुराल वालों के अत्याचारों से संघर्ष करती बहू की कथा निश्चित रूप से हर किसी को उद्वेलित करती है।"[12]

'कन्या मूल्य' उपन्यास की कथा इस तरह चलती है कि गुम्बा नामक स्त्री पात्र नायिका बनती है। उसका पिता का नाम कारगुम है। कारगुम अपनी बेटी गुम्बा को स्कूल में दाखिला कराते हैं। उपन्यास की कथा थोड़ी पूर्वदीप्ति शैली में चलती है। जब गुम्बा कक्षा छह में प्रवेश करती है, तो उनके पिता गुम्बा को स्कूल से छुड़वाते हैं और कहते हैं कि अब तुम्हारी पति के घर जाने का समय आ गया है। जैसे ही गुम्बा पति का नाम सुनती है, वह चौंक जाती है और पिता से सीधे तर्क-वितर्क करते हुए सवाल पर सवाल पूछने लगती है कि अबो, मेरी शादी कब हुई और क्या मुझे भी आपने बचपन में ही बेच दिया था? अबो, आपने ऐसा क्यों किया? एक बार आपने मुझे बेच दिया तो आप भी उसका गुलाम हैं और आपका खून भी गुलाम है। तब पिता गुस्से से कहते हैं यावा! तुम ये क्या अनाप-शनाप बक रही हो? तुम्हें कल ही तुम्हारे पति के घर घसीट कर ले जाया जाएगा। वैसा ही किया जाता है। गुम्बा अपनी जिद में अड़ी रहती है कि मुझे किसी के घर नहीं जाना, लेकिन कोई उसकी बात नहीं सुनता। गुम्बा को स्कूल से ही घसीट कर पति दाकत के घर ले जाया जाता है और वहाँ उसे खूब शोषण किया जाता है। गुम्बा के पति दाकत उसके साथ जबरदस्ती शारीरिक शोषण करने की कोशिश करते हैं, लेकिन गुम्बा उनका मुंह तोड़ जवाब देती है और दाकतों के दो दांत तोड़ देती है। ऐसे में दाकतों की माँ आकर गुम्बा को फटकारते हुए कहती हैं आरे डायन तुम हमारे घर में बहू बनकर आई हो या दाकतों को खाने आई हो? फिर गुम्बा के हाथ-पाँव बांध कर उसे एक कोठरी में बंद कर दिया जाता है। वहाँ गुम्बा बीस दिन तक उपवास रहकर दाकतों के परिवार वालों के अत्याचारों को सहते हुए संघर्ष करती हैं। जब गुम्बा मरने की अवस्था में पहुँच जाती है, तभी दाकतों के परिवार वाले गुम्बा को उसके घर पहुँचा देते हैं। गुम्बा अपने पिता के हाथों से कुछ भोजन करती है, उनका स्वास्थ्य ठीक हो जाता है

और उनके पिता कारगुम का हृदय परिवर्तन हो जाता है। वे मींदाक के परिवार को कन्या मूल्य लौटा देते हैं और गुम्बा को मुक्ति दिलाते हैं। कन्या मूल्य की प्रथा न्यीशी और तानी समुदाय के समाज में प्रचलित थी। यह प्रथा वर्तमान में कम हुई है, लेकिन एकदम से खत्म हो गई यह तो नहीं कह सकते हैं।

इस कन्या मूल्य प्रथा को 'जंगली फूल' उपन्यास में दिखाया गया है, जहाँ सिमांग नायिका न चाहते हुए भी तापिक के साथ मजबूरी में उसकी पत्नी बनकर रहना पड़ता है। अगर सिमांग खुद अपने पति तापिक को छोड़ देती है, तो उसे वे सारी कीमती चीजें — मिथुन, सूअर, मांस, मछली, आपोंग आदि संपत्ति — वापस लौटा देनी होती हैं, जो सिमांग चाहकर भी लौटा नहीं सकती, क्योंकि वे सारी कन्या मूल्य की वस्तुएँ उसके माता-पिता ने ली थीं, और माता-पिता तो स्वर्गवासी हो गए हैं।

ऐसा सुनने को मिलता है कि प्राचीन काल में जब कन्या मूल्य की प्रथा प्रचलित थी, तो उस समय तानी समाज में अनाथ बच्चों पर खूब अत्याचार होते थे, खासकर नारियों पर। एक कथा सुनी जाती है, जो बहुत दर्दनाक थी- एक नारी थी, जिसे जन्म के पाँच महीने की अवस्था में ही उसकी माँ स्वर्ग लोक चली गई, और एक वर्ष की अवस्था में उसके पिता भी परलोक सिधार गए। वह नारी अपनी बड़ी चाची के साथ रहने लगी। जैसे ही वह 9 वर्ष की हुई, तो उसके चाचा ने उसका विवाह एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ तय कर दिया। यह कहकर कि "तुम्हारा मूल्य तो तुम्हारे स्वर्गीय माता-पिता ने उस अधेड़ व्यक्ति से तब ले लिया था, जब तुम माँ के पेट में पल रही थी। इस बात को लेकर जब नारी ने चाची से पूछा कि मेरे माता-पिता ने उस आदमी से कितना कन्या मूल्य लिया था?

क्या आप और चाचा उसे लौटा नहीं सकते? नारी हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कहती है -

अगर आप दोनों वह मूल्य लौटाने में मेरी मदद करोगी तो मैं जीवन भर आप दोनों की सेवा करूंगी। लेकिन मैं उस बूढ़े आदमी के घर नहीं जाना चाहती। चाची नारी से बहुत प्यार करती थी। वे

सच बताते हुए कहती है कि तुम्हारे स्वर्गीय माता-पिता ने उस व्यक्ति से कन्या मूल्य के रूप में कुछ नहीं लिया था। ये सब तो तुम्हारे चाचा की चाल है; उन्हें चाहिए कन्या मूल्य, इसलिए तुम्हें जबरन उस आदमी के साथ सौदा किया जा रहा है। यह बात सुनकर नारी को बहुत गुस्सा आया और वह रातों-रात चाचा के घर से जंगल की ओर भाग गई और जंगल में ही समा गई। कथा कहने का अर्थ यह है कि उस समाज में जो अनाथ लड़कियां, स्त्रियां, महिलाएं थीं, वे सबसे ज़्यादा इस तरह की कुरीतियों, रिवाजों और प्रथाओं में फँस जाती थीं।

ऐसा ही ‘मौन होंठ मुखर हृदय’ और ‘मेरी आवाज़ सुनो’ उपन्यास में दिखाया गया है, जहाँ ‘मौन होंठ मुखर हृदय’ उपन्यास की नायिका यामा, रिनचिन नोरबु से प्रेम करती है। दोनों एक-दूसरे के साथ रहना चाहते थे, लेकिन यामा के भैया तादाक यह कहकर दोनों को अलग कर देते हैं कि यामा का कन्या मूल्य उसके स्वर्गीय माता-पिता ने ले लिया था, यानी यामा को बाल्यावस्था में ही बेचा जा चुका था। इस बात पर नायक रिनचिन नोरबु अपने मन की बात साझा करते हुए तादाक से कहता है कि यार दोस्त, तुम्हारी बहन यामा हमें पसंद है। उसका पति जो दाम यानी मूल्य दिया है, उसकी दुगनी मिथुन मैं लौटा दूंगा, तो नहीं मानोगे क्या? तब तादाक जवाब देते हुए कहता है कि नहीं, ऐसा हम लोगों के न्यीशी नियम में नहीं होता है। न्यीशी लोग काटा-काटी करके यामा को भी, तुम्हें भी काट देंगे। वैसा ही ‘मेरी आवाज़ सुनो’ उपन्यास में नायिका आयि के साथ भी ऐसा ही किया जाता है। नायिका आयि और नायक आलुक एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। दोनों एक-दूसरे से विवाह भी करना चाहते हैं, लेकिन आयि के भैया मोकीर यह कहते हैं कि वर्षों पहले आयि का मूल्य ताकार के परिवार ने हमारे स्वर्गीय माता-पिता को दे दिया था, जब आयि माँ के पेट में पल रही थी। उपन्यास के अंत में यही कन्या मूल्य प्रथा के चलते आयि और आलुक को ताकार के लोग मार देते हैं। पहले के लोग लड़कियों को शिक्षा के क्षेत्र में पढ़ाना-लिखाना नहीं चाहते थे, बस लड़कियों को घर के कामकाज

देखने के लिए रखते थे। पहले के समाज और परिवार की मानसिकता ऐसी थी कि लड़कियां स्कूल में पढ़-लिखकर क्या करेंगी? उन माता-पिता का एक ही आदेश था कि खेती करना सीखो। हमेशा खेतों में ही ले जाया करते थे और कहते भी थे कि "खेती करना सीख जाओगी तो जीवन भर काम आएगी, पढ़-लिखकर कुछ काम नहीं आएगा। पढ़ाई तो गैर-आदिवासी जनजातियों का काम है। आदिवासी लड़कियों का काम केवल घर के कामकाज और सास-ससुर का ध्यान रखना, खेती करना, घर के पालतू पशु-पक्षियों का देखभाल करना आदि ही माना जाता था।

ऐसा 'कन्या मूल्य' उपन्यास में गुम्बा के पिता कारगुम अपनी पत्नी से कहते है कि स्कूल में पढ़ाई कर गुम्बा को क्या मिलेगा ?, पढ़ाई लिखाई से उसे क्या लाभ मिलेगी? गुम्बा पढ़ लिख कर न तो आफिसर बन पाएगी न ही कोई क्लर्क बन पाएगी । और अगर बन भी जाए तो क्या उनकी पति उसे नौकरी करने देगी? नहीं उनकी सबसे ज्यादा जरूरी कार्य है अपना घर संभालना खेतों, सूअरों, की देखभाल करना। उनका जिम्मेदारी है सिर्फ और सिर्फ बच्चे और सास ससुर की देखभाल करना होता है । वे कहते हैं कि -"स्कूल में पढ़ाई करके उसे क्या मिलेगा? उसकी पढ़ाई का क्या लाभ? न तो वह ऑफिसर बनेगी,और न ही कोई क्लर्क बन पाएगी… मान लो वह क्लर्क बन भी गई, तो क्या उसका पति उसे नौकरी करने देगा? क्या उसे यहाँ-वहाँ जाने देगा? निश्चित ही नहीं। उसकी सबसे जरूरी जिम्मेदारी अपना घर संभालना है। नहीं तो कौन उसके खेतों, सूअरों और चिड़ियों की देखभाल करेगा? वही कर सकती है। उसके बच्चों की देखभाल और सास-ससुर की सेवा भी उसकी जिम्मेदारी है। यदि ये सब बातें न जुड़ी होती,तो कौन एक बच्ची की इतनी कीमत देता? तब क्या? कारगुम को अपने किए पर पछतावा होने लगा। उसने तो अपनी पुत्री को बहुत साल पहले बेच दिया, फिर स्कूल क्यों भेजा? जब किसी ने उसे खरीद लिया है, तो उसे उसके घर जाना ही चाहिए।''[13]

'कन्या मूल्य' उपन्यास में नायिका गुम्बा के मूल्य में, गुम्बा के पिता कारगुम ने लड़के वालों से क्या-क्या और कितना-कितना मूल्य लिया था, उसका पूरा हिसाब अपनी उँगलियों पर गिनते हुए सात गाय, पाँच मिथुन, छः हांडे और ग्यारह बर्तन आदि करते हुए, इस उपन्यास में कारगुम बताते हैं कि - "मेरी बेटी गुम्बा की कीमत में मुझे पांच मिथुन, सात गाय, ग्यारह बर्तन तथा छः हांडे मिले, तथा साथ में तीन हजार रुपये भी मिले थे। उन तीन हजार में से पंद्रह सौ तो अपने सगोत्र परिवार के भाइयों में बांट दिए थे। मेरा हिस्सा पंद्रह सौ का ही था। कुल कितनी कीमत होगी सब चीजों की?"[14] 'कन्या मूल्य' उपन्यास से पता चलता है कि यहाँ इस उपन्यास में नायिका गुम्बा का ही कन्या मूल्य नहीं लिया गया था, बल्कि उस समय उनकी सहेलियाँ यितेर, योमे आदि का भी बाल्यावस्था में ही कन्या मूल्य उनके परिवार वालों द्वारा लिया गया था। इस पर गुम्बा की सहेली योमे कहती है कि -"मैं भी आज स्कूल में पढ़ रही होती, अगर मुझे मेरे पिता ने बचपन में ही बेचा न होता।" "हाँ, सच में यह सोचकर बहुत गुस्सा आता है," यितेर ने योमे के सुर में सुर मिलाया।"[15]

'कन्या मूल्य' उपन्यास में नायिका गुम्बा को तो यह भी पता नहीं होता कि उसे भी बेचा जा चुका है। जब उसे अपने पिता कारगुम से बेचने की बात पता चलती है, तो उसका होश ही उड़ जाता है; उसे विश्वास ही नहीं होता कि उसके पिता ने उसे बचपन में ही बेच दिया और उसका भी पति है। इसी पर गुम्बा आश्चर्य से कहती है — "क्या? पति के घर।" गुम्बा फटी आँखों से पिता की ओर देखने लगी। कौन है मेरा पति? क्या यह सब मैं अपने आबो के मुँह से सुन रही हूँ?''[16]

कन्या मूल्य प्रथा का उल्लेख 'उस रात की सुबह' उपन्यास में भी दिखाया गया है। जहाँ यापी के पिता ताकार पंचायत में बताते हैं कि यापी की बुआ के विवाह में तातो के परिवार से दस मिथुन कन्या मूल्य के तौर पर लिया गया था। लेकिन अब, बुआ याका के न रहने के कारण, याका के स्थान पर यापी को ही तातो के परिवार में जाना होगा। यानी कि वह अपनी बेटी को ही उस अधेड़ उम्र के

तातो से शादी कर उसके घर भेजना चाहते थे। इस पर यापी के पिता ताकार 'उस रात की सुबह' उपन्यास में कहते हैं कि - "तुम्हारी बुआ याका से विवाह रचाते समय तातो ने हमें दस सबअ, अर्थात मिथुन, कन्या मूल्य के तौर पर भेंट किया था।"[17]

'उस रात की सुबह' उपन्यास में लेखिका बताती हैं कि अरुणाचल प्रदेश के कुछ जनजातीय समाज में पहले से यह प्रथा चली आ रही है कि परिवार की बड़ी बेटी की शादी के बाद अगर उसका असमय मृत्यु हो जाती है, तो आपसी सहमति से छोटी बेटी की शादी उसी परिवार से कर दी जाती है। आपसी सहमति से तय होने पर ठीक है, लेकिन कई बार ऐसा होता है कि जबरन विवाह कराया जाता है। जैसे स्त्री नाम की कोई महिला हो और जब चाहे उसके साथ अत्याचार किया जाए; कभी-कभी तो लप्पीया (पैर में कांट जकड़कर रखने वाला) लगा दिया जाता था। पैरों पर बेड़ियाँ जकड़ने के बाद उसे भूखा-प्यासा रखा जाता था। इस पर लेखिका लिखती है कि- "लप्पा, यानी कि बेड़ियों में जकड़ कर जबरन भूखी-प्यासी रखा जाता है, जब तक कि वह हार कर अपना हथियार न डाल दे और उस रिश्ते को मानने के लिए तैयार न हो जाए। कई बार तो तथाकथित पति उसे उसी हालत में बलात्कार करके गर्भवती बना देते थे, ताकि उस पर अपनी पूरी मिल्कियत जताई जा सके।"[18]

(ख) बाल विवाह / नेप्प जिदा(पेट विवाह):

बालविवाह वह प्रथा है जिसमें कम उम्र में विवाह कर दिया जाता है। नेप्प जिदा (पेट विवाह) वह प्रथा है जिसमें माँ के गर्भ में बच्चे पल रहे होते हैं, तभी उनका विवाह तय कर दिया जाता है। एक समय यह प्रथा अरुणाचल प्रदेश के तानी समुदाय में बहुत प्रचलित थी। अरुणाचल प्रदेश में जब शिक्षा का प्रभाव नहीं था, तब गाँव-गाँव में बाल विवाह प्रथा का प्रचलन जोर-शोर से चलता था। आजकल

यह कम हो गया है, लेकिन जिस गाँव में आज भी शिक्षा का प्रभाव नहीं पहुँचा है, वहाँ यह प्रथा अब भी चलती है। उदाहरण के तौर पर इसे 'उस रात की सुबह' उपन्यास में ही देखा जा सकता है, जहाँ नायिका यापी के पिता ताकार पंचायत में खड़े होकर सबके सामने यह घोषणा करते हैं कि समाज ने यापी की विवाह उसकी बाल अवस्था में ही 'तातों' के साथ तय कर दिया था। उस समय यापी बहुत छोटी थी, जिसके चलते उसे याद न हो, लेकिन समाज के पूरे गाँव और पंचायत इस विवाह का साक्षी हैं। वे आगे कहते हैं- ''हमने तुम्हारे बचपन में ही इसी कबा-देड़ में तुम्हारा विवाह तातों से तय कर दिया था। तुम तब छोटी थी, इसलिए शायद तुम्हें याद नहीं। पर यहां मौजूद प्रधान गाँव बूढ़ा तूकी, पूरी पंचायत और तमाम बुजुर्ग इस बात के साक्षी हैं।''[19]

सदियों से बाल विवाह/पेट विवाह की प्रथा हमारे समाज में चली आ रही है, जिसके कारण समाज में कई अत्याचार और दुष्परिणाम देखे गए हैं। फिर भी कुछ ऐसे समाज हैं जो आज भी इसे बदलना नहीं चाहते । खैर, 'मिनाम' उपन्यास में लेखिका ने नेप्प ञिदा के बारे में बताते हुए गालो समाज में पारंपरिक आभूषणों का महत्व और इन आभूषणों के चलते परिवार में रिश्तों की अहमियत, साथ ही पेट विवाह जैसी प्रथा का उल्लेख किया है। लेखिका बताती हैं कि उनकी अपनी गालो समाज में यह प्रथा माँ के पेट में ही तय हो जाती थी। लेखिका 'मिनाम' उपन्यास में लिखती हैं कि- ''नेप्प ञिदा, अर्थात बाल विवाह, भारत के कई क्षेत्रों में विद्यमान थे, और शायद आज भी हैं। गालो समाज में आमे (विशेष प्रकार की धातु या पीतल से बनी थालनुमा वस्तु) और तादोक (मालाएँ) का विशेष महत्व है। जिस परिवार में तादोक हो, वहाँ अच्छे-अच्छे रिश्ते आते थे। ये रिश्ते आमतौर पर बेटी की माँ की कोख में होते समय तय कर दिए जाते थे।''[20]

नेप्प ञिदा प्रथा का उल्लेख 'मेरी आवाज़ सुनो', 'मिनाम', 'कन्या मूल्य' और 'उस रात की सुबह' उपन्यासों में किया गया है, जहाँ जुमसी जी इसका परिभाषा देते हुए बताते हैं कि 'नेप्प ञिदा'

का अर्थ ही है बाल विवाह/पेट विवाह, जिसमें बच्चा मां के पेट में होते ही उसका विवाह तय कर दिया जाता है। 'कन्या मूल्य' उपन्यास में नायिका की नानी इसे गुम्बा से बताते हुए कहती हैं कि हमारे समाज में तो वर्षों से बच्चे माँ के गर्भ में ही शादी किए जाते हैं; यह एक सामान्य रिवाज है। नानी कहती हैं - "हमारे समाज में बच्ची यहाँ तक कि माँ के गर्भ में ही विवाह दी जाती है या बेच दी जाती है।"[21]

ऐसा ही 'उस रात की सुबह' उपन्यास में एक बुजुर्ग (आयो न्यिकाम) महिला इस प्रथा के बारे में नायिका यापी से समझाते हुए कहती हैं कि उनकी जमाने में यह 'नेप्प ञिदा' बहुत प्रचलित थी। उनकी भी इसी प्रथा से विवाह हुआ था। जब वे माँ के गर्भ में पल रही थीं, तभी उनका विवाह तय कर दिया गया था। जब उनका जन्म हुआ, तो उनके होने वाले पति का जन्म अभी नहीं हुआ था। आयो न्यिकाम हँसते हुए कहानी को आगे कहती हैं कि फिर क्या हुआ? अगले वर्ष भी मेरे होने वाली सास को केवल लड़कियाँ ही पैदा हुईं, यानी मेरे पति का जन्म नहीं हुआ। आयो न्यिकाम बीच-बीच में आपोनग (मदिरा) का घूँट पीते हुए कहानी को रोचक ढंग से यापी और उनकी माँ को सुनाती हैं। दोनों भी अपना ग़म भूल कर आयो न्यिकाम की कहानी में लीन हो जाते हैं। यापी भी बीच-बीच में "फिर क्या हुआ, आयो? सवाल करते हुए कहानी को आगे बढ़ाती हैं। आयो न्यिकाम अपनी कथा बढ़ाते हुए कहती हैं कि -फिर क्या हुआ? मुझे तो दो-चार वर्ष इंतजार करना पड़ा। चार साल के बाद मेरे सास को एक बेटा हुआ, तब जाकर मेरी शादी उस बच्चे के साथ हुई। फिर हो-हो कर आयो न्यिकाम जोर-ज़ोर से हँसने लगीं। वे हँसते हुए कहती हैं कि यह कौन सी आज की समस्या की बात है? मेरे जमाने में तो इस तरह के जबरदस्ती विवाह प्रथा हमने कई सारे देखे हैं। ऐसे बाल विवाह प्रथा में सिर्फ नारियों को ही कष्ट नहीं सहना पड़ता था, बल्कि कई बार पुरुष भी इस प्रथा का शिकार हो जाते थे। पर हाँ, पुरुषों के पास इस समस्या का भी समाधान होता था। वे आगे चलकर अपनी पसंद की दूसरी या तीसरी लड़कियों से शादी कर सकते थे, पर स्त्री के लिए ऐसा करना सजा-ए-मौत माना जाता था। आयो

न्यिकाम अपनी दुख भरी कहानी सुनाने लगती हैं। वे कहती हैं कि मैं बड़ी हो गई, पति के घर आकर रहने लगी, लेकिन मेरे पति मुझसे भागने लगे। जैसे ही मैं पति के कमरे में रहने लगी, वह पति मित्र के घर चले जाते थे। वह मुझे पसंद ही नहीं करते थे, लेकिन मेरे सास मुझे बहुत पसंद करते थे। मेरे पति मुझे प्रेम नहीं करते थे, मेरे बनाए हुए भोजन नहीं खाते थे, मेरे नाम से ही उन्हें चिढ़ होती थी। कुछ साल बाद उन्होंने अपनी पसंद की लड़की से दूसरी शादी कर ली। मैं विवाहित थी, मगर कुँवारी ही रह गई। पति की माला जपते हुए मैंने सारी जिंदगी इसी संघर्ष में निकाल दी। अपनी संतान न होने पर मैं सौत की संतान को अपना समझने लगी। इस संघर्ष गाथा पर लेखिका लिखती हैं- "वाह री! औरत, तू तो सचमुच एक अनबूझ पहेली हो। जिसके पति ने उन्हें जीवन भर तड़पाया, बिना किसी अपराध के जिंदगी भर सज़ा भुगतने को मजबूर किया... उन्हें जीवन भर निसंतान रहने और एकाकीपन में जीवन जीने को मजबूर किया। आज वे अपनी बेटी को अपना सब कुछ सौंप देना चाहती हैं। यह अनोखी औरत, आयो न्यिकाम। नारी, तू वास्तव में नारायणी हो! धन्य हो!"[22]

(ग) बेमेल विवाह:

बेमेल विवाह वह प्रथा है जिसमें पति और पत्नी के बीच उम्र का अंतर अधिक होता है। अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समाज में यह प्रथा पहले से चली आ रही है और कहीं-कहीं आज के समाज में भी देखने और सुनने को मिलती है। अरुणाचल प्रदेश के हिन्दी उपन्यासों में इस प्रथा का उल्लेख मिलता है।

जैसे 'उस रात की सुबह' उपन्यास में, 17 वर्ष की यापी और पचास वर्ष के तातो के बीच बेमेल विवाह तय किया जाता है। इस बेमेल विवाह का विरोध नायिका यापी और उसकी माँ चाह कर

भी नहीं कर पाती, क्योंकि समाज के बुजुर्ग लोग और यापी के पिता मिलकर सब में यह तय करते हैं कि यापी की बुआ की मृत्यु होने के कारण, बुआ के स्थान पर यापी को उस पचास वर्ष के तातो के साथ बेमेल विवाह करना होगा। इस समाज के फैसले से नायिका यापी को बहुत दर्द और अत्याचार महसूस होता है। वे और उनकी माँ इस फैसले से बहुत दुखी थी। वे दोनों समाज में तय किए गए फैसलों और नियम-नीति का विरोध नहीं कर पाती। यापी की माँ अपने मन में तरह-तरह के कई प्रश्न उठाती हैं। वे 'उस रात की सुबह' उपन्यास में कहती हैं- "यापी और तातो दोनों के बीच जो उम्र का फासला है, उसका क्या? अपने पिता के उम्र के तातो से यापी की कैसे बनेगी? और उस पर अपनी बुआ के पति, यानी कि फूफा, जिसे उसने देखा है, उसे कैसे अपने पति मानेगी यापी?''[23]

'उस रात की सुबह' उपन्यास में नायिका यापी के अलावा उसकी माँ की सहेली पूमीन के साथ भी जबरदस्ती उसके जीजाजी के साथ बेमेल विवाह तय किया जाता है। जिसके चलते पूमीन को बहुत तकलीफ उठानी पड़ी। पूमीन की कथा में बताया गया है कि उसकी दीदी की असामयिक मृत्यु के कारण, दीदी के स्थान पर पूमीन को ही जबरदस्ती बेमेल विवाह कराया गया। उसे दीदी के सात बच्चों की माँ बनना पड़ा। पूमीन के इस बेमेल विवाह का नतीजा यह निकला कि कुछ साल बाद उसके अधेड़ पति का भी निधन हो गया। बूढ़े पति के मरने से पहले पूमीन के गर्भ में दो छोटे बच्चे डालकर वह दुनिया छोड़ गए। पहले से ही दीदी के सात बच्चे थे, अब पूमीन के साथ कुल नौ बच्चों का जिम्मा था। उपन्यास में इसे दूरदर्शी, अवस्था और परिस्थिति के रूप में दिखाया गया है।

उपन्यास में इसका उदाहरण इस प्रकार है - "पूमीन बिल्कुल भी राजी नहीं थी उस बेमेल विवाह के लिए, पर बाद में अपने परिवार और समाज के आगे मजबूरन उसे अपने हाथ डालने पड़े। क्योंकि उसकी दीदी की असामयिक मृत्यु के कारण पीछे रह गए सात बच्चे, जिसमें से सबसे छोटा एकदम नवजात शिशु था। इस जबरदस्ती विवाह का और नतीजा यह निकला कि विवाह के कुछ

ही वर्षों बाद उसके अधेड़ पति की मृत्यु हो गई। पर मरने से पहले दो छोटे-छोटे बच्चे पूमीन के गोद में डाले गए। पहले से ही स्वर्गीय दीदी के सात बच्चों समेत अपने दो और बच्चे, कुल मिलाकर नौ बच्चों के साथ पूमीन जाए भी तो कहाँ जाएँ? मायके लौटने का तो सवाल ही नहीं बनता। अब वह अपने देवर के साथ रहने को मजबूर है, जबकि देवर की अपनी पत्नी और बच्चे भी हैं। उसके घर और ज़िंदगी में हमेशा कलह की स्थिति बनी रहती है, क्योंकि उसके सौत को वह फूटी आँख नहीं सुहाती। सुहाती भी कैसे? भला, कौन स्त्री चाहेगी कि उसकी गृहस्थी में कोई दूसरी आए?''[24]

पहले के लोग अपने आप को महान और रईस के नाम में गिनाने के लिए बेमेल और बहुपत्नी विवाह जैसी प्रथाएं अपनाते थे। एक तरफ से देखा जाए तो इस तरह की प्रथा को दिखावापन प्रथा कहा जा सकता है। लेकिन आजकल के जमाने में इस तरह की दिखावापन प्रथा कम हो गई है। फिर भी जो पुरुष आजकल भी खुद को रईसपन के हिस्सेदार या महान दिखाना चाहते हैं, उनके पास कम से कम दो-तीन पत्नियाँ तो रहती ही हैं। अधिकतम छह-से-सात पत्नियाँ रखने वाले पुरुष भी हैं, जिनमें से कुछ पत्नियों की उम्र बहुत कम होती है। पुरुष प्रधान समाज के ये पुरुष, जो अपने आप को पूर्वजों की तरह हजारों पत्नियाँ रखने का ख्वाब देखते हैं, अपने आप को महान पुरुष समझते हैं।

ऐसा ही 'उस रात की सुबह' उपन्यास में बूढ़ा तातो नायिका यापी को चौथी पत्नी के रूप में पाने का ख्वाब देखते रहते हैं। उदाहरण 'उस रात की सुबह' उपन्यास में इस प्रकार दिखाया गया है - ''इधर बूढ़ा तातो खुशी से फूले नहीं समा रहे हैं। उन्हें यापी के रूप में एक नवयौवना, जो चौथी पत्नी के रूप में मिल रही थी, पाकर संतोष हुआ। शराबी और कबाबी तातो की उम्र लगभग पचास के करीब या उससे भी कुछ अधिक होगी। बुढ़ापे में, कब्र में पैर लटकाए मानो उधर की साँसों पर जी रहा था वह।''[25]

(घ) बहुपत्नी प्रथा:

बहुपत्नी प्रथा का अर्थ है एक से अधिक पत्नी रखना। इस प्रथा का प्रचलन अरुणाचल प्रदेश के तानी समुदायों और अन्य जनजातियों में पुरखों से होता आ रहा है। वर्तमान में भी कुछ समाजों में यह प्रथा चल रही है। निशि जनजाति में यह प्रथा अधिक दिखाई देती है। निशि भाषा में इस प्रथा को 'ञेमना बीन' कहते हैं, और गालों भाषा में इसे 'ञिम लाबोनाम' कहते हैं।

इस प्रथा के बारे में 'मिनाम' उपन्यास में लेखिका ने लिखा है कि अधिकतर आदिवासी समाज में इस प्रथा का चलन है। उन्होंने लिखा है कि 'ञिम लाबोनाम' आज भी निशि और गालों समाज में प्रचलित है। इसका कारण बताते हुए वे लिखती हैं कि किसी परिवार में संतान न होने पर, यानी वंश को बनाए रखने के लिए पुरुष दूसरा या तीसरा विवाह करते थे।

लेखिका 'मोर्जुम लोयी' ने यह भी बताया कि पुराने जमाने में, यदि केवल बेटी या केवल एक बेटा पैदा होता था, तो समाज उस परिवार को बेऔलाद समझता था, क्योंकि परिवार की संपत्ति बेटों को ही दी जाती थी। दूसरा कारण यह था कि अचानक पत्नी की मृत्यु होने पर पुरुष दूसरी पत्नी ला सकते थे। ये सारी बातें जो लेखिका ने लिखी है, सच और सही हैं।

वर्तमान में इस प्रथा का स्वरूप उलट ही देखने को मिलता है। वर्तमान के बहुपत्नी प्रथा पर लेखिका 'मोर्जुम लोयी' और 'मिनाम' उपन्यास में लिखती हैं कि समाज में पुरुष और स्त्री दोनों ही इस प्रथा को बढ़ा रहे हैं। वे लिखती हैं कि - ''इस प्रथा का पालन अब पुरुष अपनी अय्याशी को पूर्ण करने हेतु कर रहे हैं। आमतौर पर जिसके पास धन-संपत्ति की कमी नहीं है, वे कई शादियाँ कर रहे हैं। ... आज कई बेटों के पिता होने और तंदुरुस्त पत्नी होने के बावजूद मर्द कई शादियाँ कर रहे हैं और इसे अपनी शान समझते हैं।''[26]

डॉ. जोराम यालाम नाबाम की 'जंगली फूल' उपन्यास और 'साक्षी है पीपल' कहानी में बहुपत्नी प्रथा के कई उल्लेख मिलते हैं। जहाँ पुरुष पात्रों की दो-दो, तीन, चार या पाँच पत्नियाँ होती दिखाई देती हैं। 'उसका नाम यापी था', 'साक्षी है पीपल', 'यासो' आदि कहानियों में बहुविवाह का उल्लेख किया गया है। लेखिका 'साक्षी है पीपल' कहानी में लिखती हैं कि ताजुम की पाँच पत्नियाँ हैं और ताजुम पांचो पत्नियों से दो-तीन महीने में ही पांच बच्चे पैदा करते हैं। इस पर वे लिखती हैं- "ताजुम का वह साल बड़ा भाग्यशाली रहा। एक साथ, दो-दो, तीन-तीन महीनों के अंतराल पर पांचो पत्नियों से पाँच पुत्र पैदा हुए।"[27]

'जंगली फूल' उपन्यास में भी वंश को आगे बढ़ाने के लिए तानी एक से अधिक पत्नियाँ रखते हैं। वे अपने स्मृति में खोए हुए बहुपत्नी प्रथा के बारे में सोचने लगते हैं। हमारे समाज में पुरखों से बहुपत्नी प्रथा अमल में आती रही है। अपने ही पिता की चार पत्नियाँ थीं। जिसके पास जितनी पत्नियाँ हैं, उसे समाज में उतना ही धनी और शक्तिशाली समझा जाता था।

इस पर लेखिका लिखती है- "पिताजी की चार पत्नियाँ थीं। जिसकी जितनी पत्नियाँ थीं — वे उतना ही धनवान और शक्तिशाली माने गए। एक से अधिक विवाह करो और बच्चे जितना हो सके पैदा करो।"[28]

'उस रात की सुबह' उपन्यास में भी वंश बढ़ाने वाले पुरुष पर नायिका यापी की माँ, अपने पति ताकार के बारे में कहती हैं कि मैंने तीन खूबसूरत बेटियां और एक बेटा तापोक को जन्म दिया, फिर भी ताकार ने दूसरी पत्नी के रूप में याई को विवाह कर घर ले आए हैं। इन पुरुषों को तो बस एक बहाना चाहिए वंश चलाने के लिए। वे आगे कहती हैं -"उसने इस उम्र में फिर से एक नई पत्नी याई पापी को ब्याह कर लाया है। बेटे से वंश चलाने का तो यह केवल एक बहाना मात्र है। मर्द बस अपनी हवस की पूर्ति के लिए ही बहुपत्नी प्रथा को बढ़ावा देते हैं और कुछ नहीं।"[29]

वर्तमान में भी अरुणाचल प्रदेश के निशि और अन्य जनजातियों के अमीर पुरुष एक से अधिक पत्नियाँरखते हैं। अरुणाचल प्रदेश के टॉप-मोस्ट बिजनेसमैन और राजनीतिक नेता लोग पाँच, तीन, और दो पत्नियाँतो रखते ही हैं। जैसे- 'तेली तादा' के पाँच पत्नियाँ हैं, 'ताना हाली' की तीन, 'गेवंग आपंग' की तीन, 'आतुम वेल्ली' की तीन, 'पानये ताराम' की चार, 'दिबिया ताजुम' की चार, 'ताना आकीन' की दो, 'ताना ताहीन' की दो, 'याब बासु' की दो। ये सभी नाम जो गिनाए गए हैं, वे अपने आसपास के लोग हैं, जिन्हें मैं देखकर और सुनकर आया हूँ। और भी लोग होंगे जो कई पत्नियाँ रखते हैं। अरुणाचल प्रदेश में बहुपत्नी रखना आम बात है। इसकी संख्या कम कैसे होगी, यह पुरुष प्रधान समाज ही जानता है। लेकिन लेखिका 'लिली' जी ने इसका समाधान बताते हुए स्त्रियों को सजग और ईमानदार रहने, और पुरुषों के जाल से बचने की सलाह दी है। जिससे स्त्री का घर-परिवार सुरक्षित रहेगा और स्त्रियां आपस में सहयोग और विश्वासपूर्वक रह सकें। जो पुरुष भंवरों की तरह एक फूल से दूसरे फूल पर भटकते हैं, उनसे स्त्रियों को सचेत और सावधान रहने की सलाह दी गई है। साथ ही ऐसे पुरुषों को सबक सिखाने की बात भी कही गई है।

वे लिखती हैं कि - ''धूर्त मर्दों का क्या है? वे तो भँवरों की तरह स्वभाव से ही रसिक होते हैं। आज इस फूल पर, तो कल उस फूल पर। उनकी नजरें हमेशा नई-नवेली की तलाश में ही भटकती रहती हैं। पर अगर हर लड़की खुद सचेत और सावधान रहे, और ईमानदारी से ऐसे लोलुप दृष्टि वाले मर्दों से दूर रहे तथा उन्हें बिल्कुल भी घास न डाले, तो ऐसे मर्दों को खुद ही सबक मिल जाएगा।''[30]

(ङ) बहुपति प्रथा:

बहुपति प्रथा का अर्थ है एक से अधिक पति रखने वाला। अरुणाचल प्रदेश के ब्रोकपा समुदाय में बहुपति प्रथा प्रचलित थी, और आज भी है, परंतु कम हो गई है। कोई भी प्रथा एकदम से समाप्त नहीं हो जाती। ब्रोकपा समाज की इस प्रथा को 'सोनाम' उपन्यास में दर्शाया गया है।

'सोनाम' उपन्यास में बहुपति प्रथा का उल्लेख भी किया गया है। सबसे पहले नायिका सोनाम के दो पति होते हैं- एक लाबजाँग और दूसरा पेमा वांगछू। प्रारंभ में सोनाम और लाबजाँग का विवाह शांति से होता है और वे घर-परिवार बसाने लगते हैं। एक दिन लाबजाँग चारागाहों पर जानवरों को चराने ले जाते हैं। उन्हें घर लौटने में एक सप्ताह लग जाता है। इसी बीच पड़ोस के लड़के पेमा वांगछू इस मौके का फायदा उठाता है।

एक दिन जब लाबजाँग घर लौटते हैं, सोनाम उनकी प्रतीक्षा में कुछ नहीं खाई-पिई होती और थोड़ी थकान में घर का दरवाजा खोल कर सो जाती है। इसी बीच पेमा वांगछू आकर सोनाम के साथ सो जाता है। उसी समय लाबजाँग भी घर पहुंच जाते हैं और घर के वातावरण को समझ जाते हैं। तब लाबजाँग, पेमा वांगछू के साथ खोर-देपका करने के लिए प्रस्ताव रखते हैं। शुरू में लाबजाँग के परिवार और पेमा वांगछू के परिवार इसे स्वीकार नहीं करते। पेमा वांगछू की खूब पिटाई होने के बाद, समाज धीरे-धीरे इस खोर-देपका को स्वीकार कर लेता है।

ग्राम सभा में लाबजाँग अपनी बात रखते हुए कहने लगते हैं कि गाँव वालों, आप सभी को मालूम है कि मैं अकेले परिवार का सदस्य हूँ। मेरी अपनी सगी भाई बंधु नहीं हैं। जिसके चलते अपने परिवार की पालतू पशु-पक्षियों को संभालने में कठिनाई होती है, इसलिए मैं पेमा वांगछू के साथ खोर-

देपका रखना चाहता हूँ, क्योंकि इसमें सोनाम और पेमा वांगछू भी हामी भरी है यानी कि दोनों को भी इस खोर-देपका के संबंध से स्वीकार है।

लाबजाँग आगे कहते हैं कि - ''आप सभी लोग भली-भाँति जानते हैं कि मेरे अपने परिवार में मेरा कोई बड़ा भाई नहीं है, साथ ही मुझसे छोटा भी कोई अपना भाई नहीं है। अपने परिवार में मैं निपट अकेला पुरुष सदस्य हूँ। जबकि मेरी घर-गृहस्थी में एक झुंड चंवरी गाय है, एक झुंड पहाड़ी यांकबैल हैं और भेड़ों की काफी बड़ी जमात है। जब मैं चारागाह पर चला जाता हूँ तो मेरे घर में कोई पुरुष सदस्य यहाँ गाँव में रहने को नहीं है, पत्नी बेचारी भी निपट अकेली है। ऐसी दशा में अपने घर-गृहस्थी चलाने के लिए मुझे बहुत असुविधा होती है। इसी से छुटकारा पाने के लिए मैं अपना एक सहायक रखना चाहता हूँ। अतः: उस सहायक के साथ मैं खोर-देपका करके अपने साथी के रूप में अपने घर-गृहस्थी में रखना चाहता हूँ। इसलिए जब पेमा वांगछू स्वयं आगे बढ़कर मेरी सहायता करने के लिए आया, तो मैंने उसका ही चुनाव खोर-देपका करने के लिए कर लिया।''[31]

'सोनाम' उपन्यास में नायक लाबजाँग के अलावा उनकी माता के दो पति होते हैं। एक लाबजाँग का पिता, दूसरा लाबजाँग का चाचा। ये तीनों लोग घर और गाँव में खुशहाली भरा जीवन जी रहे थे। दोनों पति अपने-अपने काम अच्छे से संभाल रहे थे और बिना किसी झगड़े के मिलजुल कर जीवन यापन कर रहे थे। लाबजाँग की माता ने चाचा के साथ दो बच्चे पैदा किए, और लाबजाँग अकेला उनके पिता की ओर से था। लेकिन अचानक कुछ समय बाद लाबजाँग के माता के दोनों पति और दोनों भाई लाबजाँग को छोड़कर परलोक चले जाते हैं। बस घर में अकेले लाबजाँग और उनकी मां ही बचते हैं। लेखक 'सोनाम' उपन्यास में लिखते हैं कि— ''बर्फीली पहाड़ियों के इस अंचल के ब्रोकपा-समाज में मान्य प्रथा के अनुरूप, लाबजाँग की माँ ने अपने पति—लाबजाँग के पिताजी—के साथ-साथ उसके चाचाजी के साथ भी खोर-देपका अर्थात समानाधिकारिक विवाह किया था। उसने

दोनों को अपने पति के रूप में स्वीकार किया था। इन तीनों का जीवन बिना किसी प्रकार के झगड़ा-झंझट और मन-मुटाव के, बड़े सहज और सुंदर ढंग से बीता। उसकी दो संतानें बड़े भाई अर्थात चाचा की ओर से थीं, जबकि लाबजाँग उसके पिता- जो चाचा के छोटे भाई थे- की ओर से अकेला संतान था। परंतु दुर्भाग्य से, गांव में एक बार जब महामारी फैली, तो लाबजाँग को छोड़कर उसकी मां ने अपने बाकी सभी सदस्य खो दिए। उस समय से ही लाबजाँग अपनी माँ के साथ मिलकर घर-गृहस्थी का सारा भार उठाता आ रहा था।''[32]

'सोनाम' उपन्यास में लाबजाँग की माता के दो पति होना और सोनाम नायिका के भी दो पति होने के अलावा, लाबजाँग के मित्र टिकरा और उसका भाई दावा भी एक ही पत्नी के साथ घर संभालते हैं। दोनों बारी-बारी से घर का कामकाज और पत्नी के साथ जीवन बिताते हैं।

जब टिकरा खूंटी में चले जाते हैं, तो दावा घर पर रहता है। फिर जब दावा खूंटी पर चले जाते हैं, तो टिकरा घर पर पत्नी के साथ रहता है। कभी बाजार से सामान बेचने या खरीदने के लिए भी टिकरा पत्नी को ले जाते हैं, तो दावा घर संभालते हैं। फिर जब दावा की बारी आती है, तो वह भी पत्नी के साथ चले जाते हैं और टिकरा घर का कामकाज संभालते हैं। लेखक 'सोनाम' उपन्यास में लिखते हैं कि- "दोनों भाई पत्नी के लिए खारेदेप का सम्बन्ध वाले, अर्थात समान-समान अधिकार सम्पन्न पति हैं, एक ही धर्मपत्नी के। एक पत्नी से ही दोनों अपने घर-गृहस्थी संभाल रहे हैं। इसी कारण वे परस्पर बारी-बारी से खूंटी पर आकर रहते हैं। जब एक खूंटी पर रहता है, तो दूसरा पत्नी के साथ घर पर। वाणिज्य-व्यवहार करने, घर की चीजें बेचने और खरीदकर लाने के लिए भी वे बारी-बारी से पत्नी को अपने साथ ले जाते हैं। उभय दृष्टि से, दोनों ओर से सामूहिक रूप में समान-समान अधिकार सम्पन्न पति होने के कारण यह उनके लिए बड़ी सुविधा है। पत्नी कभी अकेली नहीं होती, और उनकी घर-गृहस्थी तथा खुटी दोनों जगहों का काम बिना किसी विघ्न-बाधा के बड़े आराम से सम्पन्न होता रहता

है।”[33] 'सोनाम' उपन्यास में दो पति के अलावा गांव की कुछ स्त्रियों के पास तीन-तीन पति होने का भी उल्लेख मिलता है। एक उदाहरण में एक स्त्री कहती है कि उसके तीन पति हैं, और ये तीनों सगे भाई हैं। उनके अनुसार, तीनों पति को संभालना उसकी बहुत कठिनाई भरी जिम्मेदारी है। जब तीनों में आपस में झगड़ा होता है, तो महिला को कई तरह की कला और कौशल अपनाकर उन झगड़ों को सुलझाना पड़ता है। उपन्यास में गाँव की एक स्त्री अपनी स्थिति इस तरह व्यक्त करती है: “अब तुम लोग मेरी ही स्थिति देखो न। मेरे तो तीन पति हैं। परन्तु वे तीनों आपस में बड़े-छोटे-मझले भाई हैं। सगे भाई होने के बावजूद भी, मैं एक ही पत्नी होने के कारण उन तीनों में समय-समय पर झगड़ा-झंझट का सामना करती रहती हूँ। ऐसी दशा में मुझे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। नाना प्रकार के कला-कौशल अपनाकर, तरह-तरह के उपाय कर, अत्यंत सावधानी से मुझे उन्हें संभालना पड़ता है।”[34]

'सोनाम' उपन्यास में अन्य कई गांव की महिलाओं के दो-तीन पति होने का भी उल्लेख मिलता है। ब्रोकपा समाज में बहुपति प्रथा आम बात है। उपन्यास में साकतेंग गाँव के सरपंच चरगेन और उसका भाई भी एक ही पत्नी के साथ रहते हैं। चरगेन, लाबजाँग के साथ मजाक में अपनी पत्नी की बुराई करते हुए कहते हैं कि शुरू-शुरू में जब हम दोनों, मैं और मेरी पत्नी, मिलकर सात साल तक आराम का जीवन जी रहे थे, तब सब ठीक था। लेकिन सात साल के बाद जब मेरा छोटा भाई घर आया, तो हमारी पत्नी को उसके साथ खोर-देपका करना पड़ा। जब से मेरा छोटा भाई घर-गृहस्थी संभालने लगा, मेरी पत्नी मुझे भूल गई और हमारे बेटे-बेटियों को भी भूलकर अपने छोटे भाई के साथ रहने लगी। लेखक यह भी संकेत देते हैं कि ऐसा ही हाल अब सोनाम के साथ भी हो रहा होगा, क्योंकि अब पेमा वांगछू घर में आ गया है। चरगेन, मजाक और लाबजाँग को चिढ़ाते हुए सुनाते हैं कि -

"हम दोनों का जब विवाह हुआ, उसके बाद सात वर्ष तो बड़े मजे से बीत गए। परन्तु उन सात वर्षों के बाद जब मेरा छोटा भाई गृह-गृहस्थी संभालने लायक हो गया, तो मैंने उसके साथ खोर-देपका कर लिया। परंतु उसके बाद फिर उनको कौन बस में रख पाता। बुढ़ापे की ओर बढ़ती हुई इस स्त्री में नवयौवना किशोरी की भांति प्राणों की चंचलता आ गई। मुझे तो भूल ही गई, यहाँ तक कि हमारे बेटे-बेटियाँ, जो अभी छोटे थे, उन्हें भी भुला बैठी। बस केवल मेरा छोटा भाई, जो अभी नया-नया उसका पति बना था, उसी के प्रेम में रातों-दिन दीवानी बनी रहती थी। और कोई उसे दिखलाई ही नहीं देता था। मुझे समझ में आ रहा है, ठीक वैसी ही अवस्था आजकल सोनाम की भी हो गई है।"[35]

बहुपति प्रथा का कारण एक तो संतान संख्या से जुड़ा माना जाता है, और दूसरा कारण है परंपराओं तथा मान्यताओं का, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते आए हैं। जैसे 'सोनाम' उपन्यास में यह प्रथा दिखाई गई है। अरुणाचल प्रदेश के गालो जनजातियों में भी यह प्रथा प्रचलित थी, हालांकि अब यह प्रथा अधिकांशतः समाप्त हो गई है। फिर भी, दूर-दराज के कुछ गांवों में आज भी इसकी झलक देखी और सुनी जा सकती है। लेखक ने बताया है कि यह प्रथा केवल भारत में ही नहीं, बल्कि तिब्बत, भूटान और मंगोलिया जैसे देशों में भी प्रचलित रही है। राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'मेरी तिब्बत यात्रा' में बहुपति प्रथा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि तिब्बत में भाइयों की एक ही पत्नी होने पर घर और संपत्ति का बंटवारा नहीं होता। इसके विपरीत, ब्रोकपा समाज में घर और संपत्ति का बंटवारा गोत्र के आधार पर बराबर हिस्सों में होता है। राहुल सांकृत्यायन 'मेरी तिब्बत यात्रा' में इस बारे में लिखते हैं कि - "तिब्बत में सभी भाइयों की एक पत्नी होने से घर और संपत्ति का बंटवारा नहीं होता।"[36] 'सोनाम' उपन्यास में नायिका सोनाम को दो पतियों के बीच संतुलन बनाए रखने की चुनौती का सामना करते हुए प्रस्तुत किया गया है। सोनाम अपने घर-परिवार और दोनों पतियों— पेमा वांगछू और लाबजाँग- की जिम्मेदारियों को सँभालते-सँभालते अपना स्वास्थ्य और शरीर तक त्याग देती है।

इस उपन्यास में सोनाम के जीवन संघर्ष को विस्तार से दिखाया गया है, जहाँ वह कभी अपने लिए जी नहीं पाती और लगातार दूसरों की देखभाल तथा परिवार की आवश्यकताओं के बीच खुद को पीछे रखती है।

(च) प्रेम संबंध:

प्रेम एक प्राकृतिक भावना है। अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में भी यह जन्म लेता है और पनपता है। इन उपन्यासों में प्रेम के अलग-अलग रूप दिखाए गए हैं। कहीं पर माँ-बेटी का प्रेम दिखता है, तो कहीं भाभी-ननद का प्रेम; कहीं पिता-बेटी का प्रेम है, तो कहीं भाई-बहन का; वहीं कहीं प्रेमी और प्रेमिका का प्रेम भी दिखाया गया है। 'मातमुर जमोह' उपन्यास में पति-पत्नी के प्रेम संबंध को दिखाया गया है। 'मेरी आवाज़ सुनो', 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में प्रेमी और प्रेमिका की दुखांत प्रेम कहानी को दिखाया गया है। 'जंगली फूल' उपन्यास में तानी और जीत पात्र का प्रेम संबंध को दिखाया गया है। 'सोनाम' उपन्यास में त्रिकोण प्रेम संबंध को दिखाया है। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में यामा और रिनचिन पात्र का प्रेम, रिनचिन यामा से अत्यधिक प्रेम करता है, इसलिए वह अंत तक यामा को देखना चाहता है। इसी कारण वह तादाक से टूटी-फूटी असमिया भाषा में आग्रह करता है। तादाक भी बहन के प्रति प्रेम जताते हुए टूटी-फूटी असमिया में रिनचिन से कहता है -"रिनचिन, तुम हमार अच्छा दोस्त है। यामा भी हमार प्यारी बहन है। हम तुमका बात मान लिया ना।"[37]

'सियांग के उस उस पार' उपन्यास में बिक्रम और निसमी नायक, नायिका की प्रेम संबंध को दिखाया गया है। प्रेम संबंधों के संदर्भ में उपन्यासकार बताते हैं कि शादी से पहले प्यार करने वाला

प्रेमी शादी के बाद बदल जाता है। जीवन में कई उठाव-चढ़ाव आते हैं, प्रेमी-प्रेमिका को खूब मारपीट भी करते हैं, लेकिन अंत में प्रेमिका को फिर प्रेमी माना लिया जाता है। पर कुछ प्रेम कथाएं ऐसी होती हैं जो अधूरी ही रह जाती हैं। समाज के रीति-रिवाज और अंधविश्वास के कारण दो प्रेम करने वालों को अलग होना पड़ता है। ऐसी कथाएं 'सियांग के उस पार', 'मेरी आवाज़ सुनो', 'उस रात की सुबह', 'शव काटने वाला आदमी', 'सोनाम', 'मिनाम', 'कन्या मूल्य', 'मौन होंठ मुखर हृदय', 'जंगली फूल', 'मातमुर जामोह' आदि उपन्यासों में मिलती है। 'मिनाम' उपन्यास में पति-पत्नी की हाथापाई और प्रेम संबंध के बारे में उपन्यासकार लिखते हैं -"एक बात मैंने देखी, शादी से पहले बहुत प्यार करने वाले प्रेमी, शादी होने के बाद बदल जाता है... अगले दिन जब हम मिले तो उन्होंने मार के उस निशान को देखा, फिर कहा — 'तुमने मुझे बताया क्यों नहीं? मैं दवा ला देता।"[38]

(छ) स्त्री का शोषण:

अरुणाचल प्रदेश का जनजातीय समाज भी पितृसत्तात्मक है जिसमें स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। इन उपन्यासों में स्त्री पात्र सबसे पीड़ित, शोषित और वंचित दिखाई देती हैं। इन उपन्यासों में स्त्री के मानसिक और शारीरिक शोषण का चित्रण मिलता है। 'कन्या मूल्य' उपन्यास में गुम्बा (स्त्री पात्र) के साथ शारीरिक शोषण होता दिखाया गया है, जहाँ गुम्बा को उसके ससुराल वाले जबरन घसीट कर ले जाते हैं, साथ ही उसके हाथ-पाँव बाँधकर एक कोठरी में बंद कर देते हैं। 'उस रात की सुबह' उपन्यास में यापी (स्त्री पात्र) के साथ मानसिक शोषण दिखाया गया है। उसका विवाह उसके फूफा से तय कर दिया जाता है। तब यापी मन ही मन सोचने लगती है कि जिस आदमी को मैंने बचपन से अपनी बुआ के पति के रूप में देखा है, उसे अब कैसे अपना पति मान लूँ? इसलिए यापी बार-बार आत्महत्या करने का प्रयास करती है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज

में पितृसत्तात्मक समाज और स्त्री शोषण का उल्लेख किया गया है। पितृसत्तात्मक समाज में नारी के अनेक शोषण को उपन्यासकार ने उजागर किया है। 'कन्या मूल्य' उपन्यास में नायिका गुम्बा के साथ उनके ससुराल वाले शारीरिक शोषण करते हैं। यानी, गुम्बा को ससुराल के लोग शहर से जबरदस्ती हाथ-पैर बाँधकर घसीटते हुए घर ले जाते हैं। ऐसा शोषण कर ले जाते हैं मानो गुम्बा कोई मनुष्य नहीं, बल्कि जानवर का रूप हो। इस पर उपन्यासकार जोकेन पात्र के माध्यम से कहता है: "इसके बाल कसकर पकड़ लो दाकतो और इसका सर पीछे खींच लो और ध्यान रखना कि यह काटने न पाये। जुम्कार तुम इसके दो हाथ मजबूती से पकड़ो और तुम्मार तुम पैर कसकर पकड़ लो... अब मुझे रस्सी दो। जोकेन ने उसके हाथ-पांव बांधना शुरू किया।"[39]

अरुणाचल प्रदेश पितृसत्तात्मक समाज है। ऐसा भी कहा जाता है कि यह पुरुष प्रधान समाज है, जहां महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक मेहनत और श्रम करती हैं और अधिक जिम्मेदारी संभालती हैं। इस संदर्भ में लेखक डॉ. वीरेंद्र परमार अपनी पुस्तक 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोक साहित्य' में लिखते हैं: "घर के अधिकांश कार्य महिलाएं ही संपादित करती हैं। महिलाएं बच्चों की देखभाल करती हैं, कपड़े बुनती हैं, सूत कातती हैं, खेत में जाकर कृषि के कार्य में हाथ बांटती हैं, वर्षा काल के लिए अन्न का भंडारण करती हैं, अपोंग (चावल निर्मित एक पेय) तैयार करती हैं, खाना बनाती हैं, पालतू पशुओं को खिलाती एवं उनकी देखभाल करती हैं। इसके अतिरिक्त घर में आने वाले अतिथियों के स्वागत-सत्कार का दायित्व भी महिलाओं का ही होता है।"[40]

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज की स्त्रियों की मानसिक पीड़ा को उपन्यासकारों ने अपनी-अपनी रचनाओं में दर्शाया है। 'उस रात की सुबह' उपन्यास में नायिका यापी पात्र के माध्यम से उपन्यासकार कहता है कि -जिस व्यक्ति को मैं बचपन से अपनी बुआ के पति के रूप में देखती आई हूँ, जिसे मैं अपने पिता के समान पूजती रही हूँ, उस वृद्ध व्यक्ति से मैं कैसे शादी

कर उसे अपना पति मानूं? यह सोच-विचार करते हुए यापी पात्र के मन में बार-बार आत्महत्या करने का विचार आने लगता है। फिर वह अपनी बहन यबोम और बूढ़ी माँ की चिंता कर आत्महत्या का विचार त्याग देती है और सोचने लगती है कि - अगर मैं आत्महत्या कर लूँ, तो मेरी बूढ़ी माँ को कौन संभालेगा? मेरी छोटी बहन यबोम को तो बूढ़ा तातो जबरन अपनी पत्नी बना लेगा।

इस तरह के विचारों से घिरी यापी का सिर दर्द करने लगता है और वह अकेले में सुबकने लगती है। इस पर उपन्यासकार 'उस रात की सुबह' में लिखते हैं- "इस मामले में भी तातो के परिवार वालों की स्वार्थी भरी मंशा ही साफ झलकती है। क्योंकि जब तातो के पास पहले से ही घर पर उसकी दो बीवियाँ मौजूद हैं, तो उसे अब अपनी बेटी की उम्र की यापी को इसी नियम की आड़ में हथियाने की इस तरह से योजना बनाने का क्या मतलब है? ... 'जिस शख्स को अपनी बुआ के पति के रूप में देखते आए हैं, उसे अब कैसे अपना पति मान लें? और उस पर दोनों के बीच उम्र का जो लंबा-सा फासला है, उसका क्या?"[41]

ऐसा कहा जाता है कि सदियों से नारी का शोषण नारी ही समाज में करती आ रही है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में भी यह कुछ हद तक देखने को मिलता है। 'कन्या मूल्य' उपन्यास में नायिका गुम्बा की सास, बहू यानि गुम्बा को डायन कहते हुए नजर आती है। सास होने के नाते घायल बहु के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के बजाय अपने पुत्र के पक्ष लेते हुए कहती है- "आरे, डायन! तू यहाँ हमारी बहू बनकर आई है या अपने पति को खाने?" ... "इसे नंगा ही रहने दो, तभी इसे सबक मिलेगा। जाओ, कपड़ा हटाओं।"[42]

इन उपन्यासों में स्त्री ही स्त्री का शोषण करते हुए पुरुष से कहती हैं कि एक से अधिक पत्नियाँ रख लो; जब दो पत्नियाँ आपस में लड़ेंगी तो तीसरी के पास जाकर आराम कर लेना। तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' अपने उपन्यास 'उस रात की सुबह' में लिखते हैं- "दो पत्नियों से बेहतर है तीन ही कर

लो; जब दोनों पत्नियाँआपस में लड़ती रहेंगी तो तीसरी के पास जाकर आराम करना ।" लो! कर लो बात! वाह रे! ज्ञानी इंसान! जनाब, यह मुफ्त का ज्ञान अपने पास ही रखो। कहाँ अपने नकारात्मक विचारों से समाज में गंदगी फैला कर समाज को पतन की राह पर लेकर जा रहे हो?"[43]

इसी प्रकार स्त्रियों का शोषण 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में दिखाया गया है, जहाँ नायक दारगे नरबू अपनी पत्नी गुईसेंगमू को गंदी गालियाँ देते हुए, लड़ते-झगड़ते हुए, "सूअर की औरत", "बेहया औरत" आदि कहकर अपमानित करता है। 'जंगली फूल' उपन्यास में भी पुरुष प्रधान समाज के लोग विधवा महिला को "नौटंकीबाज औरत" और सिर्फ संभोग की वस्तु समझते हुए प्रस्तुत किए गए हैं। 'मिनाम' उपन्यास में भी स्त्री के शोषण को दर्शाया गया है—पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों को केवल घर संभालने, बच्चे पैदा करने, भोग की वस्तु और खेती तक सीमित समझा जाता है।

'जंगली फूल' उपन्यास में स्त्री पात्र आसीन के साथ तानी के सौतेले भाई तापिन द्वारा शारीरिक शोषण और बलात्कार का भी स्पष्ट चित्रण मिलता है। इस उपन्यास में आसीन पात्र दोलियाँग दीदी से तापिन द्वारा किया गया शोषण को बताते हुए कहते है कि- "बस इतना ही जानती हूँ कि उस शैतान तापिन ने मेरा बलात्कार किया है।"[44]

निष्कर्ष:

प्रस्तुत अध्याय से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में नारी अस्मिता का प्रश्न अत्यंत गंभीर, संवेदनशील और विचारोत्तेजक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इन उपन्यासों में स्त्री केवल एक पार्श्व पात्र नहीं, बल्कि संपूर्ण कथानक की आत्मा के रूप में उपस्थित

होती है, जो समाज की परंपरागत बेड़ियों, पितृसत्तात्मक मानसिकता और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती है।

लेखकों ने इन उपन्यासों के माध्यम से अरुणाचल प्रदेश के जनजीवन में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों — जैसे कन्या मूल्य, बाल विवाह, बेमेल विवाह, बहुपत्नी प्रथा और बहुपति प्रथा — को अत्यंत गहराई से प्रस्तुत किया है। इन कुप्रथाओं के माध्यम से यह दिखाया गया है कि किस प्रकार नारी को सामाजिक व्यवस्था का शिकार बनाकर उसकी स्वतंत्रता, इच्छा और सम्मान को दबा दिया जाता है।

'कन्या मूल्य' और 'सोनाम' जैसे उपन्यासों में नारी को वस्तु समझे जाने की मानसिकता पर करारा प्रहार किया गया है, वहीं 'उस रात की सुबह', 'जंगली फूल', 'मिनाम' और 'मेरी आवाज़ सुनो' जैसी रचनाओं में नारी के भीतर की पीड़ा, आत्मसम्मान, विद्रोह और मुक्ति की चेतना को बड़ी मार्मिकता से उकेरा गया है। इन उपन्यासों की नायिकाएँ अब चुप रहने वाली नहीं हैं, बल्कि समाज की अन्यायपूर्ण परंपराओं के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाली सशक्त स्त्रियां हैं।

इन सभी रचनाओं से यह संदेश मिलता है कि अरुणाचल प्रदेश की नारी धीरे-धीरे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही है। वह अब अपने जीवन की दिशा स्वयं तय करना चाहती है और समानता के आधार पर समाज में अपना स्थान स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है।

अंततः कहा जा सकता है कि —अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में नारी अस्मिता केवल स्त्री की पीड़ा का दस्तावेज नहीं, बल्कि उसके जागरण, संघर्ष और आत्मनिर्भरता की सशक्त अभिव्यक्ति है। ये उपन्यास नारी को एक नई पहचान, नई चेतना और अपने अस्तित्व को परिभाषित करने का साहस प्रदान करते हैं।

संदर्भ सूची:

---

[1] डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 24

[2] वही, पृ. 23

[3] वही, पृ. 19

[4] वही, पृ. 63

[5] वही, पृ. 69

[6] वही, पृ. 70

[7] डॉ. जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 62

[8] लुम्मेर दाई, कन्या का मूल्य, पृ. 50

[9] जुमसी सिराम 'नीनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 46

[10] लुम्मेर दाई, अनुवादक– मुनीन्द्र मिश्र, कन्या का मूल्य, पृ. 9

[11] जुमसी सिराम 'निनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 27

[12] लुम्मेर दाई, अनुवादक– मुनीन्द्र मिश्र, कन्या का मूल्य, पृ. 1

[13] वही, पृ. 1

[14] वही, पृ. 2

[15] वही, पृ. 8–9

[16] वही, पृ. 10, 12

[17] डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 16

[18] वही, पृ. 49

[19] वही, पृ. 19

[20] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 66

[21] लुम्मेर दाई, कन्या का मूल्य, पृ. 21

[22] डॉ. तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 70

[23] वही, पृ. 21

[24] वही, पृ. 22

[25] वही, पृ. 25

[26] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 56

[27] डॉ. जोराम यालाम नाबाम, साक्षी है पीपल, पृ. 17

[28] डॉ. तुम्बम रीबा जोमो ‘लिली’, उस रात की सुबह, पृ. 81

[29] . जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 10

[30] डॉ. तुम्बम रीबा जोमो ‘लिली’, उस रात की सुबह, पृ. 28

[31] येसे दरजे थोंगछी, सोनाम, पृ. 48–49

[32] वही, पृ. 8–9

[33] वही, पृ. 11–12

[34] वही, पृ. 41

[35] वही, पृ. 55

[36] राहुल सांकृत्यायन, मेरी तिब्बत यात्रा, पृ. 61

[37] येसे दरजे थोंगछी, अनुवादक- दिनकर कुमार, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 126

[38] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 85

[39] लुम्मेर दाई, अनुवादक मुनीन्द्र मिश्र, कन्या का मूल्य, पृ. 54

[40] डॉ. वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, पृ. 59

[41] डॉ. तुम्बम रीबा जोमो ‘लिली’, उस रात की सुबह, पृ. 50

[42] लुम्मेर दाई, अनुवादक- मुनीन्द्र मिश्र, कन्या का मूल्य, पृ. 55

[43] डॉ. तुम्बम रीबा जोमो ‘लिली’, उस रात की सुबह, पृ. 88

[44] डॉ. जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ.74

पंचम अध्याय

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान

(क) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा

(ख) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की शैली

पांचवा अध्याय

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का शिल्प विधान

शिल्प का शाब्दिक अर्थ है गढ़ने और निर्माण करने के तत्व। सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि 'शिल्प विधान' दो शब्दों के योग से बना है – 'शिल्प' और 'विधान'।

- शिल्प का अर्थ है कला।
- विधान का अर्थ है संयोजन।

इन दोनों शब्दों को मिलाने पर शिल्प विधान का अर्थ होता है – 'कला संयोजन'।

दूसरे अर्थों में इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि शिल्प विधान किसी भी रचना को प्रभावशाली और सुंदर बनाने का तरीका या ढंग है। यानी चाहे वह उपन्यास, कहानी, नाटक आदि हो, कथाओं को बुनावट के ढंग से सजाने-संवारने का काम जो करता है, वही शिल्प विधान कहलाता है।

शिल्प विधान में निम्न तत्वों का प्रयोग किया जाता है:

- सरल शब्द और वाक्य
- शैली और भाषा

ये सभी तत्व उपन्यास, कहानी, नाटक आदि में रचना को प्रभावशाली बनाने में योगदान देते हैं।

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में भी लेखकों ने शिल्प विधान का विशेष उल्लेख किया है। इस अध्याय में दो उप-अध्याय हैं:

1. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों की भाषा

2. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों की शैली

इन उप-अध्यायों के माध्यम से शिल्प विधान को विस्तार से समझने का प्रयास किया जाएगा।

क) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा

भाषा शब्द किसे और कौन सी धातु से बना है? और भाषा का क्या अर्थ है? इसका परिभाषा देते हुए रचनाकार रतनलाल गोयल 'भावी' ने अपनी पुस्तक 'नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना' में भाषा की जानकारी देते हुए लिखते हैं कि –

"'भाषा' शब्द संस्कृत के 'भाष' धातु से बना है। इसका अर्थ वाणी को व्यक्त करना है।"[1]

भाषा के बिना कुछ बनती ही नहीं। भाषा ही ऐसी चीज़ है जो सबको जोड़कर रखती है। भाषा एक ऐसा जरिया है जो अपने मन के विचारों और भावों को सामने वाले व्यक्ति तक बोलकर या लिखकर पहुंचाने में मदद करती है। इस तरह एक दूसरे के भाव और विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकता है। अब भाषा पर लिखे हुए भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं को देखने और समझने का प्रयास करते हैं-

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने भाषा शब्द संबंध, भाषा का अर्थ, और भाषा के माध्यम जिसके द्वारा मानव अपने विचारों को व्यक्त करता है आदि की परिभाषा देते हुए अपनी पुस्तक 'भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा' में लिखा है –"'भाषा' शब्द का संबंध 'भाष्' (बोलना) धातु से है। अर्थात् 'भाषा' का शब्दार्थ है जिसे बोला जाए। किन्तु मोटे रूप से, उन सभी साधनों को भाषा कहते हैं, जिनके माध्यम से मनुष्य अपने विचारों को व्यक्त करता या सोचता है।"[2]

सरल शब्दों और आसान भाषा में भाषा के साधन को परिभाषित करते हुए डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक 'भाषा विज्ञान' में लिखा है – "भाषा वह साधन है, जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।"[3]

निशा तिवारी ने भाषा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि मनुष्य जिस तरह से अपने मनोभावों को दूसरों के सामने व्यक्त करते हैं, और एक दूसरे के विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, वही भाषा कहलाती है। वे अपनी पुस्तक 'ब्रिलिएंट हिन्दी व्याकरण एवं रचना' में लिखती हैं कि – "जिस माध्यम से मनुष्य अपने विचारों या मनोभावों को दूसरों से प्रकट करता है और दूसरों के विचारों को समझता है, उसे ही भाषा कहते हैं। अर्थात् मनुष्यों के विचारों का आदान-प्रदान जिस माध्यम से होता है, वह भाषा ही है।"[4]

सं. कालिका प्रसाद, अपनी पुस्तक 'वृहद हिन्दी कोश' में भाषा की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि -"भाषा भावप्रकाश करने का साधन, किसी विशेष देश का या जन समाज में प्रचलित शब्दावली और उसे बताने का ढंग।"[5]

रामविलास शर्मा ने अपनी किताब 'भाषा और समाज' में भाषा एक संस्कृति के निर्माण में मदद करती है कहते हुए लिखते हैं कि – "भाषा संस्कृति के निर्माण में सहायक होती है। इसमें मनुष्य के विचार, भाव, संस्कार और संवेदनाएँ शामिल हैं।"[6]

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार – "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतियों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचार-विनिमय करते हैं।"[7]

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान की भूमिका' में भाषा की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि -"भाषा यादृच्छिक, रूढ़, उच्चारित संकेत की वह प्रणाली है, जिसके माध्यम से मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय, सहयोग अथवा भावाभिव्यक्ति करते हैं।"[8]

मुक्तिबोध के अनुसार – "इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के पीछे भाषा की अगाध अनवरत साधना शक्ति है। भाषा फैंटेसी को काटती-छाँटती है और इस प्रक्रिया के विपरीत फैंटेसी भाषा को सम्पन्न और समृद्ध भी करती है।"[9]

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा एवं दीप्ति शर्मा ने अपनी कृति 'भाषाविज्ञान की भूमिका' में भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है – "'भाषा' शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता है। सामान्य रूप से भाषा उन सभी माध्यमों का बोध कराती है जिनसे भावाभिव्यंजना का कार्य लिया जाता है। इस दृष्टि से पशु-पक्षियों की बोली भी भाषा है, इंगित भी भाषा है, सड़क की लाल-हरी बत्ती भी भाषा है, और मनुष्य जो बोलता है वह भी भाषा है।"[10]

बाबू राम सक्सेना के अनुसार— "जिन ध्वनि चिन्हों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है उसे भाषा कहते हैं।"[11]

हेनरी स्वीट के अनुसार–"भाषा वाक ध्वनियों के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति है।"(Language may be defined as the expression of thought by means of speech-sounds.)[12]

प्लेटो के अनुसार—"विचार आत्मा की मूक व अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होंठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।"[13]

हेनरी स्वीट के अनुसार— "ध्वन्यात्मक-शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।"[14]

चॉम्स्की के अनुसार— "मैं भाषा को वाक्यों का एक समूह समझता हूँ जो निश्चित लंबाई में तथा एक निश्चित तत्वों के समूह (set) से संरचित होते हैं।"[15]

ओत्तो येस्पर्सन के अनुसार-"मनुष्य ध्वन्यात्मक -शब्दों द्वारा अपना विचार प्रकट करता है। मानव मस्तिष्क वस्तुत: विचार प्रकट करने के लिए ऐसे शब्दों का निरंतर उपयोग करता है। इस प्रकार के कार्य-कलाप को ही भाषा की संज्ञा दी जाती है।"[16]

वेंद्रीए के अनुसार— "भाषा एक तरह का संकेत है। संकेत से आशय उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है।"[17]

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार-"Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which, human beings, as members of a social group and participants in culture interact and communicate."[18]

भाषा सरल और सहज : अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों की भाषा सरल, सहज और स्वाभाविक है। लेखकों ने इन उपन्यासों में स्थानीय बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है, जिससे पात्रों की संवाद शैली जीवंत प्रतीत होती है। इन उपन्यासों में जिस प्रकार अरुणाचल प्रदेश के लोग हिंदी बोलते हैं, उसी रूप में उसे लिखा गया है। उदाहरणस्वरूप, येसे दरजे थोंगछी द्वारा रचित 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में यह भाषाई शैली स्पष्ट रूप से दिखाई देती है-

"यामा तुम नई बैठा?" "हम का अकेला है न! दिन-दिन हम का यहाँ बैठना है न! हम का यामा नहीं मालूम।"[19]

यह उदाहरण दर्शाता है कि उपन्यास की भाषा अत्यंत सहज है और कठिन शब्दों का प्रयोग न्यून मात्रा में किया गया है। इस प्रकार की भाषा पाठक को सहज रूप से समझ में आती है तथा संवादों

में स्थानीयता का भाव प्रबल रहता है। इसी प्रकार, यालाम जी के 'जंगली फूल' उपन्यास में भी सरल हिंदी के साथ-साथ स्थानीय शब्दों तथा कुछ कठिन हिंदी शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है, जैसे- 'सुडौल', 'हतप्रभ', 'सुसज्जित' आदि। ऐसे कठिन शब्द स्थानीय पाठकों के लिए कुछ कठिनाई उत्पन्न करते हैं, किंतु लेखिका ने क्षेत्रीय शब्दावली का समावेश कर भाषिक यथार्थ को बनाए रखा है। उपन्यास में प्रयुक्त स्थानीय शब्द- 'न्येम-न्येपा', 'पिंज', 'यालंग-पू', 'दापो', 'नर्रबा', 'सुपुंग', 'दोरिंग चीजिंग', 'आबोतानी' आदि- अरुणाचल की संस्कृति और समाज की झलक प्रस्तुत करते हैं। लेखिका 'जंगली फूल' में सरल हिंदी का प्रयोग करते हुए यह लिखती हैं—"जंगल पक्षपाती नहीं होता। उसमें जो जीवन है, वह तटस्थ है। वहाँ खिलने वाले फूलों की अपनी ही मर्जी और मौज होती है।"[20]

जुमसी सिराम 'नीनों' ने अपने उपन्यास 'मेरी आवाज़ सुनो' में भी अपनी मातृभाषा के शब्दों का प्रयोग अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया है। इससे न केवल स्थानीय संस्कृति की झलक मिलती है, बल्कि पाठक उस क्षेत्र की भाषा-व्यवहार से भी परिचित होता है। उदाहरण स्वरूप- "आयि 'ओइक' सब्जी की एक-एक कली को उठा-उठाकर (तोड़-तोड़कर) अपने 'एबार' अथवा टोकरी में डालती जा रही थी; साथ ही पुरानी यादों में खोकर 'आन्ने–यो आन्ना' (एक विलाप गीत) गाए जा रही थी।"[21]

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि जुमसी सिराम ने संवादों और वर्णन दोनों में स्थानीय शब्दों का स्वाभाविक रूप से समावेश किया है। 'ओइक', 'एबार' और 'आन्ने–यो आन्ना' जैसे शब्द न केवल भाषा को जीवंत बनाते हैं, बल्कि अरुणाचल प्रदेश की लोक संस्कृति, लोकगीत और जनजीवन की सजीव अनुभूति भी कराते हैं। उसी प्रकार, दयाराम वर्मा का उपन्यास 'सियांग के उस पार' की भाषा भी सरल, सहज और मिश्रित रूप में प्रस्तुत होती है। इसमें सामान्य हिंदी के साथ-साथ अंग्रेज़ी

तथा स्थानीय बोली के शब्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरणस्वरूप, अंग्रेजी के कुछ शब्द जैसे— "ओ. के. फ्रेंड्स!", "ओह! थैंक्स मिस्टर देबांग!", "इट्स ऑल राइट सर।"-आधुनिकता और शहरी परिवेश को व्यक्त करते हैं। वहीं दूसरी ओर, लेखक ने स्थानीय उच्चारण के अनुरूप शब्दों को भी रूपांतरित किया है, जैसे- 'सर' को 'सार', 'बड़ा' को 'बरा', 'लड़का-लड़की' को 'लरका-लरकी', 'पढ़ने' को 'पधने', 'बन' को 'बोन', 'घर' को 'घोर', और 'होगा' को 'होईगा'। इन रूपों से स्पष्ट होता है कि लेखक ने अरुणाचल प्रदेश के स्थानीय उच्चारण और बोलचाल की शैली को अत्यंत निष्ठा के साथ अंकित किया है। उदाहरणस्वरूप, 'सियांग के उस पार' उपन्यास में लेखक लिखते हैं कि -"सार, बहुत पहले मेकिंलिंग में बड़ा स्कूल होता था। तीन-तीन दिन पैदल चलकर लरका-लरकी लोग पधने जाता था। सार, इधर का एक आदमी आर्मी में मेजर बोन गया है। घोर! अरे, वो इधर पाँच मकान छोर के तो है, मिनी दीदी का घोर..अभी तो घोर में कोई नहीं होईगा, एक नौकर होईगा।"[22]

ऐसा केवल 'सियांग के उस पार' उपन्यास के अध्ययन से मेरा मानना या कहना नहीं है, बल्कि इस तथ्य की पुष्टि भूतपूर्व एयर कमोडोर आर. के. पाल द्वारा भी की गई है । उन्होंने उपन्यास की मिश्रित भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि -"उपन्यास में, कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार, वायु सेना में प्रचलित अंग्रेज़ी भाषा के तकनीकी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, लेकिन इस रूप में कि आम पाठक भी सहजता से समझ सकें। वहाँ के वसिन्दों द्वारा प्रयुक्त हिंदी भाषा के स्थानीय उच्चारण और संवाद की मौलिकता के दृष्टिगत, बहुत से शब्दों को यथावत लिखा गया है, जैसे— थोड़ा-थोड़ा को थोरा-थोरा, पढ़ाई को पधाई, टोपी को तोपी, ठीक को थीक, कंट्रोल को कंत्रोल इत्यादि।"[23]

आर. के. पाल का यह कथन इस बात को पुष्ट करता है कि 'सियांग के उस पार' की भाषा में न केवल हिंदी की सहजता है, बल्कि उसमें स्थानीय बोली और अंग्रेजी तकनीकी शब्दों का संतुलित मिश्रण भी मौजूद है, जिससे भाषा यथार्थपरक और स्वाभाविक प्रतीत होती है।

इसी संदर्भ में, डॉ. संजीव मंडल ने भी ‘सियांग के उस पार’ उपन्यास की भाषा और शैली पर अपना मत प्रकट किया है। वे लिखते हैं कि-“इस उपन्यास की भाषा बोलचाल के निकट है, पर अंग्रेज़ी शब्दों की संख्या थोड़ी अधिक है। इसमें अरुणाचली लोगों द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट लहजे की हिंदी भी कई जगह प्रयुक्त हुई है। कुछ अरुणाचली उच्चारण वाली हिंदी वाक्य के नमूने निम्नवत हैं- "वो सार! दोस बजे इधर आईगा।, ‘सार, ताकर जानोम आ गिया है। इधर का लरका-लरकी लोग अब तो बाहर भी जाता है। ईतानगर भी जाता है। ”[24]

डॉ. मंडल का यह मत स्पष्ट करता है कि ‘सियांग के उस पार’ उपन्यास की भाषा में अरुणाचल प्रदेश की स्थानीय बोली, उच्चारण और लहजे का सजीव प्रभाव दिखाई देता है। यह भाषा यथार्थ के निकट होने के साथ-साथ सांस्कृतिक विविधता और क्षेत्रीय पहचान का सशक्त माध्यम भी बन जाती है। भाषा में शब्दों का चयन

कई शब्दों के मेल से ही भाषा का निर्माण होता है। शब्दों के बिना भाषा अधूरी रहती है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज तथा आंचलिक शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। इन विविध प्रकार के शब्दों के प्रयोग से न केवल भाषा का सौंदर्य बढ़ता है, बल्कि उसकी अभिव्यक्तिगत शक्ति भी सशक्त होती है।

तत्सम शब्द: ‘तत्सम’ शब्द का अर्थ होता है—वह शब्द जो सीधे संस्कृत से लिया गया हो। “‘तत’ तथा ‘सम’” के मेल से ‘तत्सम’ शब्द बना है। ‘तत’ का अर्थ है उसके तथा ‘सम’ का अर्थ है समान। अर्थात उसके समान या ज्यों का त्यों। अतः किसी भाषा में जब उसकी मूल भाषा (संस्कृत) के शब्द बिना किसी परिवर्तन के प्रयुक्त होते हैं, तो उन्हें तत्सम शब्द कहा जाता है।”[25]

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में तत्सम शब्दों का प्रयोग व्यापक रूप से देखने को मिलता है। लेखकों ने अपनी भाषा को प्रभावशाली एवं साहित्यिक बनाने के लिए संस्कृत मूल के इन शब्दों का प्रयोग किया है। तत्सम शब्दों का प्रयोग न केवल भाषा की गंभीरता को बनाए रखता है, बल्कि अभिव्यक्ति को भी समृद्ध बनाता है।

'जंगली फूल' उपन्यास में तत्सम शब्दों का प्रयोग अत्यंत सुंदर ढंग से किया गया है। उदाहरणस्वरूप— "हवा बीच-बीच में कुछ सख्त और तेज हो जाती थी, और सुन्दर केश आँखों को ढक-ढक जाते थे, पर वह उसे हटाने की कोशिश ज़रा भी नहीं करता। त्वचा कितनी सख्त और अभ्यस्त हो गई थी! यह और कोई नहीं—तानी था... सूर्यवंशी तानी; महान यात्री।"[26]

इस उदाहरण में त्वचा, अभ्यस्त, सूर्यवंशी, महान जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग उपन्यास की भाषा को गाम्भीर्य और साहित्यिकता प्रदान करता है। इसी प्रकार, जुमसी सिराम द्वारा रचित 'मातमुर जामोह' उपन्यास में भी तत्सम शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। लेखक लिखते हैं—

"रास्ते में कहीं कोई गहरी खाई है तो कहीं ऊपर से गिरती श्वेतवर्ण निर्झरिणी। कहीं कोई पहाड़ी पक्षी मधुर तान सुना रहा है तो कहीं पत्तेदार झाड़ियाँ हवा में लहरा रही हैं। प्रकृति की वादियों में सुन्दर झरनों, विशाल पर्वतों, मुग्ध मोरनी तथा सुन्दर मोर का अतिक्रमण करते हुए विलियमसन अपने दस्ता के साथ धीरे-धीरे चले आ रहे थे, समूची आदी पहाड़ियों पर कब्जा कर लेने की आकांक्षा से।"[27]

इस उद्धरण में प्रयुक्त शब्द—श्वेतवर्ण, निर्झरिणी, प्रकृति, वादियाँ, पर्वतों, आकांक्षा—स्पष्ट रूप से तत्सम शब्द है, जो भाषा की सौंदर्यता और शास्त्रीयता को बढ़ाते हैं।

इसी प्रकार, 'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी तत्सम शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत होता है, जैसे— 'मार्ग', 'केंद्र', 'क्षमता', 'पश्चात', 'कक्ष', 'स्तर', 'पूर्व', 'संस्कृति', 'स्नान', 'क्रूर' आदि।

इन शब्दों का प्रयोग उपन्यास के विभिन्न स्थलों पर किया गया है। 'जंगली फूल' उपन्यास में भी तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है, जैसे— 'अंधकार', 'भ्रांत', 'वृक्ष', 'शत्रु', 'समुद्र', 'शक्ति', 'बुद्धि', 'प्रियतम' आदि। ये शब्द उपन्यास के विभिन्न पृष्ठों पर प्रयुक्त हुए हैं।

तद्भव शब्द: तद्भव शब्द वे शब्द होते हैं जो संस्कृत से ज्यों के त्यों ग्रहण नहीं किए गए, बल्कि समय के साथ विभिन्न मध्यवर्ती भाषाओं — पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि — से होते हुए परिवर्तित रूप में हिंदी में प्रचलित हुए हैं।

रतनलाल गोयल 'भावी' ने अपनी पुस्तक 'नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना' में तद्भव शब्दों की परिभाषा इस प्रकार दी है— "हिन्दी भाषा के वे शब्द जो सीधे संस्कृत से ज्यों के त्यों नहीं लिए गये बल्कि वे शब्द जो संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश तथा अपभ्रंश से पुरानी हिन्दी से होते हुए घिस-पिट कर परिवर्तित रूप में हिन्दी में प्रयुक्त हो रहे हैं, हिंदी के तद्भव शब्द कहलाते हैं। जैसे संस्कृत के पितृ से पिता, मातृ से माता आदि रूप में परिवर्तित होकर हिन्दी में प्रयुक्त हो रहे हैं।"[28]

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में तद्भव शब्दों का प्रयोग भाषा को अधिक स्वाभाविक, बोलचाल के निकट और लोक जीवन से जुड़ा हुआ बनाता है। 'उस रात की सुबह' उपन्यास में तद्भव शब्दों का प्रयोग इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है कि -"एक हाथ से उन्हें संभाले घर के नीचे से होते हुए मैदान की ओर भागे, जहां सब लोग भागकर इकट्ठे पहुँचने बैठे हुए थे। वहाँ पहुँचने पर माँ को भाई का ख़्याल आया और उन्होंने उसके बारे में पूछा तो पिताजी ने बताया कि वह उसकी पीठ पर गमछे से बंधा हुआ आराम से सो रहा है।"[29]

इसी प्रकार, जुमसी सिराम की 'मेरी आवाज़ सुनो' उपन्यास में भी तद्भव शब्दों का प्रयोग पात्रों की भाषा को जनसामान्य के अधिक समीप लाता है कि- "अगर मेरी बहन आयी उस लम्पट के प्रेमजाल में फंसकर मेरी इज़्ज़त डुबाना चाहती है तो मैं उसका सिर काटकर अलग कर दूंगा। कौन भाई होगा जिसे अपनी बहन को किसी लफंगे के साथ फिरते देखकर क्रोध न हो?"[30]

'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी अनेक तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है, जैसे- 'आँख', 'पाँच', 'कमरा', 'लाख', 'घर', 'प्यार', 'सात' आदि । इसी प्रकार 'जंगली फूल' उपन्यास में भी तद्भव शब्दों का पर्याप्त प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, जैसे - 'सूरज', 'मुँह', 'चाँद', 'कंधा', 'नींद', 'माँ', 'साँस', 'मछली' आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग उपन्यास में किया गया है ।

देशज शब्द : देशज शब्द जो पहले से बोलचाल में प्रयोग करता हुआ चला आ रही है। यह शब्द कहाँ और किधर से आया कुछ आता पता नहीं है।

'नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना' पुस्तक में देशज शब्द का परिभाषा देते हुए लिखते है कि- "किसी भाषा के वे शब्द जिनकी उत्पत्ति या स्रोत का पता नहीं चलता तथा वे शब्द जो स्थानीय या क्षेत्रीय जनता के द्वारा अपनी आवश्यकता के अनुसार गढ़ लिये जाते हैं, 'देशज' या 'अज्ञातमूलक', शब्द कहलाते हैं । जैसे–'माला', 'खिड़की', 'गाड़ि', 'जूता', 'काच', 'डोसा', 'मीन', 'सरसों' आदि।"[31]

उपन्यासकार ने अपनी 'उपन्यास उस रात की सुबह' में देशज शब्दों का प्रयोग किया गया है- "मैं एकदम कुँवारी, विवाहिता मगर कुँवारी, पति के नाम की माला जपती हुई सारी जिंदगी उनके इसी घर में बिता दी मैंने। ...अपनी बात समाप्त कर वह बड़ी स्वाभिमान के साथ वह उठी और अपने

पुराने टीन के संदूक से कुछ परम्परिक तादोक/तासेंग माला एवं आभूषण निकालकर बड़े शान से दिखलाती हुई बोली|"[32] 'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी देशज शब्द का प्रयोग हुआ है- "जब उसने खिड़की से पर्दा हटाया तो भोर की किरोणों ने कमरे को हल्के उजाले से भर दिया।"[33]

विदेशज शब्द: विदेशज शब्द वे होते हैं जो किसी अन्य देश की भाषा से आए होते हैं। अर्थात् जो शब्द देशज न होकर दूसरे या तीसरे देशों से हिंदी में आए हैं, उन्हें विदेशज शब्द कहा जाता है। जैसे — अंग्रेजी, अरबी, फारसी, तुर्की, चीनी, जापानी आदि भाषाओं से आए हुए शब्द। अर्थात, अन्य देशों से आए हुए शब्दों को भाषा में विदेशज शब्द कहा जाता है।

इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है- "किसी भाषा में प्रयुक्त अन्य देशों की भाषाओं से आए वे शब्द जिनका प्रयोग मूल भाषा के व्याकरण के अनुसार न होकर प्रयुक्त भाषा के व्याकरण के अनुसार ही होता है, विदेशी शब्द कहलाते हैं।"[34]

विदेशी शब्दों का प्रयोग 'मातमुर जामोह' उपन्यास में किया गया है। लेखक लिखते हैं - "आज प्रातः ही सदिया शहर के ए.पी.ओ. (असिस्टेंट पोलिटिकल ऑफिसर) कप्तान नोएल विलियमसन लेदुम पधारे हुए थे। उन्होंने कप्तान जे. एफ. निधाम का कार्यभार संभालते ही 'आदी' देश के अतिरिक्त 'मिश्मी पहाड़ियों' का दौरा किया। वे चीन की सीमा तक जा पहुँचे थे।"[35]

'सियांग के उस पार' उपन्यास में भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है कि- "हाय बिक्रम! वेलकम टू मेकेलिंग! हाय कान्त!... डेट के संचार कक्ष में एक मेज पर प्रभु की छोटी-सी वर्कशॉप थी जहां कई तरह के मीटर, उपकरण, औजार, सोल्डरिंग तार, तार गरम करने की मशीन, इलेक्ट्रॉनिक

सर्किट वाले बोर्ड और भाँति-भाँति के कैपेसिटर, डायोड, रेजिस्टर्स, बैटरियाँ आदि बेतरतीबी से बिखरे पड़े थे।"[36]

'सियांग के उस पार' उपन्यास में अंग्रेज़ी के अलावा अरबी और फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, जैसे — 'इमारत', 'मंज़िल', 'लेकिन', 'निगाह', 'इंतज़ाम', 'नज़दीक', 'शिकार', 'काफ़ी', 'हज़ार', 'टीम', 'इंजीनियर', 'प्रोजेक्ट', 'कंपनी', 'मिस्टर', 'स्टील', 'कैमरा', 'मिडिल' आदि। 'जंगली फूल' उपन्यास में भी अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे — 'शरीर', 'मौसम', 'बेदर्द', 'मजबूत', 'कोशिश', 'शायद', 'ताकतवर', 'अहसास', 'दग़ाबाज़', 'गुनाह', 'नाराज़' आदि।

अंग्रेज़ी वाक्य का प्रयोग करते हुए 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में लिखा गया है — "See Mr. Ghosh, I am very much satisfied with the progress of the work in Mr. Saikia's site. He had done a marvellous job in cutting the road through the hard rocky portion. So, no question of recommending his resignation letter to the Executive Engineer."[37]

आंचलिक शब्द अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्थानीय शब्दों और भाषा का भी प्रयोग हुआ है । "महरी बाबू! तुम हम का बताया न कि रास्ता बनाने का पीछे हम का जगह में ईस्कुल, असपेताल, दुकान बनेगा, बड़ा-बड़ा टिन घोर बनेगा। हम का बस्ती के पास रुपा बस्ती में ईस्कुल है। हम का मालूम है थेम्बांग, बुड़ागांव बस्ती में भी ईस्कुल है। हम का शेरदुकपेन मोनपा, अंका बस्ती में ईस्कुल है। सरकार डफला आदमी का बस्ती सेपला में भी ईस्कुल खुलना है न! नहीं खुलेगा?"[38]

दूसरे उदाहरण के रूप में 'मिनाम' उपन्यास में उपन्यासकार ने अपनी गालो भाषा में माँ पात्र से गीत गाकर सुनवाया है। इस गीत का अर्थ है कि - "ओ सखी, ओ सहेली, आओ मौज मनाएं, मस्ती करें। चलो कदम मिलाएं, झूमें, नाचें ।"वे लिखते हैं कि-"आजेना ईतो लाके, आजेन गाद्य ईतो लाके, योई बाबोआ होइ। ओयी गो लेत्री तामाले, यूम्दे ओयी गो लेत्री तामाले, योई बाबोआ होइ।"[39]

तीसरा उदाहरण 'मिनाम' उपन्यास में गालो जनजातीय भाषा के लोकल टोन वाली हिंदी के उच्चारण के रूप में मिलता है, जैसे —"पोरके क्या कोरेगा? नो को (तुमको) मालूम नाई है क्या? मेरा आबो इस बोस्ती (बस्ती) का सबसे धनी आदमी है? हम तो बोस्ती में कोई दोस्त नाइ है बोल के स्कूल आता है।"[40]

मुहावरे और लोकोक्तियाँ: अरुणाचल प्रदेश-केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग रचनाकारों ने भरपूर किया है। पहला उदाहरण 'मेरी आवाज़ सुनो' उपन्यास से लिया गया है -"तुम अक्ल की दुश्मन हो, आयि! हमारी खानदान के पूरे 'गोमिस - डोकमिन' (मणि - मुक्ता या गहने) को तुम्हारी दीदी की शादी में दहेज के रूप में दे दिया गया था। ये सभी गहने ताकार के पास अब भी सुरक्षित हैं।"[41] दूसरा उदाहरण 'उस रात की सुबह' उपन्यास में दिखाई देता है कि-"हर कोई मुफ्त में मिली इन मछलियों के ख़ज़ाने की बहती गंगा में जी-भरकर हाथ धोना चाहता था। जिसके कारण उस भूकंप के बाद गाँव के लोगों के लिए नदी का यह स्थान सभी का मनपसंद स्थल बन गया था।"[42] तीसरा उदाहरण 'मेरी आवाज़ सुनो' उपन्यास से -"यह सुनकर आयि को लगा कि किसी ने उसके कानों में पिघला हुआ गर्म-गर्म लोहा डाल दिया हो।"[43]

काव्यात्मक भाषा: अरुणाचल प्रदेश-केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में काव्यात्मक भाषा पाई जाती है। 'काव्यात्मक' का अर्थ है -कविता की वह भाषा जिसमें लय, भाव और सौंदर्य का समावेश हो, जिसे पढ़कर पाठक आनंद का अनुभव करें। पहला उदाहरण 'मिनाम' उपन्यास से लिया जा सकता है, जहाँ भावनात्मक और लयात्मक अभिव्यक्ति दिखाई देती है - "मैं अभागन हूँ माँ, जायदाद में हिस्सा नहीं; भाई के हिस्से की थोड़ी-सी ममता माँ, मुझ पर लुटा देती - बस इतनी-सी चाह रखती हूँ। मैं भी अंश हूँ तुम्हारा, मुझे भी अपना लो माँ, मैं भी बेटी हूँ तुम्हारी।"[44] दूसरा उदाहरण 'उस रात की सुबह' उपन्यास में मिलता है - "हमारे नाम पर आप सब मिथुन पलेंगे, हमारे जगह आप सौदे में सब लेकर इतराएंगे, हमें हमेशा के लिए विदा कर दोगी."[45] तीसरा उदाहरण 'जंगली फूल' उपन्यास से लिया गया है, जिसमें प्रेम, दूरी और जीवन की संवेदनाएँ काव्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त हैं कि -"जन्मों की आस लिये, दूरियों में प्रेम को पालना था दो किनारों की कहानियाँ, बहती लहरों को गाना था।"[46] इसी उपन्यास का एक और उदाहरण -"कब से ये बूंदें ढूँढती हैं तुझको प्यार, मिलने को रूह से तेरे तरसता है कौन, स्वरों में, शब्दों में, गीत घोलता है कौन, बिखर गया है तू, बिखरा हूँ मैं भी देख।"[47]

चित्रात्मक भाषा: चित्रात्मक भाषा वह होती है जो शब्दों के माध्यम से किसी दृश्य या परिस्थिति को इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि पाठक के मन में उसका सजीव चित्र उभर आए। अरुणाचल प्रदेश-केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में इस प्रकार की चित्रात्मक भाषा का प्रयोग अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है। पहला उदाहरण 'सोनाम' उपन्यास से लिया जा सकता है कि-"एक हट्टे-कट्टे, यौवन-मद से मदमाते, स्फूर्तिवान युवक की देह दमक उठी। साफ दिखाई पड़ा कि वह बलशाली युवक अपनी पीठ पर एक बहुत भारी बोझा बाँधे हुए स्वयं तो मस्ती से उतरता आ ही रहा है, साथ में छह याक-बैल यानी चंवरी गायों को भी हाँकता लिये आ रहा है।"[48] यह अंश न केवल दृश्य की सजीवता को प्रस्तुत करता है,

बल्कि पात्र की शक्ति, सौष्ठव और प्राकृतिक परिवेश का सजीव बिंब भी रचता है । दूसरा उदाहरण 'जंगली फूल' उपन्यास में मिलता है कि- "एक ऊँचे टीले पर घुटनों को दोनों हाथों से मजबूती से पकड़े हुए, उकड़ू बैठा था कोई। कंधे पर धनुष लटक रहा था। दोनों घुटनों पर काले रंग के धागे बंधे थे। मुँह में छोटे बाँस का हुक्का था, जिसमें से हल्का-हल्का धुआं निकल रहा था।"[49] यह दृश्य न केवल पात्र की मुद्रा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है, बल्कि स्थानीय जीवनशैली और संस्कृति की झलक भी देता है। तीसरा उदाहरण 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास से लिया गया है कि-"जंगल के बीच काली पोशाक पहनी एक युवती दोनों बाँहें फैलाकर उसकी तरफ बिजली की रफ्तार से दौड़ती हुई बढ़ रही है।"[50] यह दृश्य गतिशीलता, रहस्य और भय की अनुभूति को एक साथ उत्पन्न करता है, जो चित्रात्मक भाषा की विशेषता है। चौथा उदाहरण 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास से है -"लोगों के शव काटते समय खून, पीव, सड़ा हुआ मांस, चर्बी, पेशाब, मल आदि के छींटों की वजह से कपड़ों पर एक मोटी परत जम चुकी है, और उसके ऊपर अनगिनत जुओं ने अपना प्रजनन क्षेत्र और विचरण भूमि तैयार कर लिया है।"[51]

गालियों की भाषा: अरुणाचल प्रदेश केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में जहाँ एक ओर स्थानीय बोली, मुहावरे और लोक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, वहीं दूसरी ओर पात्रों के संवादों में गालियों की भाषा भी यथार्थ चित्रण के रूप में प्रयुक्त हुई है। यह भाषा पात्रों के सामाजिक परिवेश, क्रोध, आक्रोश और परिस्थिति की सजीवता को प्रकट करती है। पहला उदाहरण 'कन्या मूल्य' उपन्यास से लिया गया है -"अरे डायन! तू यहाँ हमारी बहू बनकर आयी हो या अपने पति को खाने?"[52] यह संवाद ग्रामीण परिवेश और पारिवारिक कलह की स्थिति को सजीव बनाता है। दूसरा उदाहरण 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास से उद्धृत है -"सूअर की औरत! बेहया!"[53] यहाँ लेखक ने पात्र की

असंवेदनशीलता और सामाजिक क्रूरता को उनके शब्दों के माध्यम से उभारा है। तीसरा उदाहरण 'जंगली फूल' उपन्यास से लिया गया है कि- "ये औरतें बड़ी ही नौटंकीबाज होती हैं।"[54]

ख) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की शैली

शैली को ऐसा कहा जा सकता है कि यह रचना लिखने का तरीका और ढंग है - अपनी रचना को लिखने का या अपनी बात को कहने का ढंग। जिसके माध्यम से कहानी, कविता, उपन्यास आदि रचनाएँ कही और लिखी जाती हैं। मनुष्य के बोलने के तरीके से उसकी अपनी पहचान बनती है। अपने मत या विचार को प्रस्तुत करने के तरीके को ही 'शैली' कहा जाता है।

वनशु अकादमी ने शैली की परिभाषा देते हुए लिखा है - "शैली से तात्पर्य है ढंग या प्रणाली विशेष। अंग्रेजी भाषा में 'Style is the main' अर्थात शैली ही मनुष्य का विशेष व्यक्तित्व होती है। शैली भावों व विचारों को विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत करने की एक विशेष प्रक्रिया है।"[55]

डॉ. जॉनसन ने भी शैली की परिभाषा देते हुए कहा है - "सामान्य व्यवहार में बातचीत करने का तरीका या प्रणाली ही शैली है।"[56]

पाण्डेय शशिभूषण ने शैली की परिभाषा देते हुए लिखा है —"एक कथ्य को कहने की कई प्रणालियाँ होती हैं। स्पष्ट है कि भाषिक 'शैली' भाषिक चयन का ही पर्याय सिद्ध होती है।"[57]

अब अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की शैली को देखें, तो इनमें वर्णनात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, जीवनी शैली, डायरी शैली आदि के रूप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

पूर्वदीप्ति शैली: ऐसी घटना जो पहले ही घट चुकी होती है, लेकिन उसे बाद में बताया या दिखाया जाता है, उसे पूर्वदीप्ति शैली कहा जाता है। इस प्रकार की शैली अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। जैसे - दरजे थोंगछी द्वारा लिखा गया उपन्यास 'शव काटने वाला आदमी' और दयाराम वर्मा द्वारा लिखा गया 'सियांग के उस पार' - दोनों ही उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली में लिखे गए हैं। दोनों रचनाओं में पूर्व में घटित घटनाओं को स्मृति या पुनरावृत्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेखक दरजे थोंगछी ने 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में पहले दृश्य में ही पूर्व की घटना को दर्शाया है, और फिर अगले दृश्य में वर्तमान की घटनाओं को दिखाया है -अर्थात उपन्यास में पूर्व और वर्तमान के दृश्य एक साथ चलकर कथा को गति प्रदान करते हैं। वहीं 'सियांग के उस पार' उपन्यास में लेखक ने तीस वर्ष पुरानी एक घटना को याद करते हुए अपनी डायरी में लिखा है, जिसे वह अपनी प्रेमिका मिनी नामक पात्र को सौंप देता है। उदाहरण -"अब उसने डायरी का पहला पन्ना खोला। इसके अंदर के पृष्ठ मटमैले और पीले पड़ चुके थे। जैसे-जैसे देबांग डायरी के पृष्ठ पलटने लगा, वैसे-वैसे मेकिंलिंग, नियामदिंग और सियांग की तीस वर्ष पुरानी घटनाएं और एक कहानी के पात्र उसकी आँखों के सामने चलचित्र की भाँति सजीव होकर चलने लगे, हंसने और बोलने लगे।"[58]

लेखक दरजे थोंगछी जी ने 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में दारगे नामक पात्र के माध्यम से यह दिखाया है कि वह अपने जीवन के शुरुआती हिस्से को याद करता है। उसे कभी यह आभास भी नहीं था कि एक दिन उसे अपने गाँव से दूर, दिरांगजांग गाँव में आकर बसना पड़ेगा, अपनी गुस्सैल पत्नी गुईसेंगमु के साथ रहना होगा और अंततः एक "शव काटने वाले आदमी" के रूप में उसका जीवन समाप्त हो जाएगा। थोंगछी जी उपन्यास में लिखते हैं - "दारगे ने अपने जीवन के शुरुआती हिस्से में यह कल्पना तक नहीं की थी कि उसे अपने गाँव से इतनी दूर इस दिरांगजांग गाँव में, इस गुस्सैल पत्नी के साथ घर बसाना होगा; और एक शव काटने वाले थांपा के रूप में जीवन

गुजारना होगा। सोचा ही नहीं था कि उसका काम होगा केवल मृत मनुष्यों के शरीर को टुकड़ों में बाँटकर नदी में बहाना। सभी उसे उसके असली नाम से न पुकारकर -आउ थांपा, आजांग थांपा, मेमे थांपा कहकर पुकारेंगे।"[59]

दरजे थोंगछी के 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में लेखक ने दारगे के जीवन में दो महिलाओं को प्रमुख रूप से दिखाया है - रिजोम्बा और गुईसेंगमु। रिजोम्बा दारगे की बचपन की दोस्त और उसकी पहली प्रेमिका होती है। दारगे उससे विवाह करना चाहता है, किंतु कुंडी (जो विवाह के लिए आवश्यक पारंपरिक अनुष्ठान या सामासिक स्वीकृति का प्रतीक है) न मिलने के कारण उससे विवाह नहीं कर पाता। रिजोम्बा के साथ बिताए गए पलों और उससे जुड़ी स्मृतियों को लेखक ने पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से उपन्यास में प्रस्तुत किया है। दूसरी ओर, गुईसेंगमु दारगे की पत्नी है, जिसके साथ वह विवाह करता है और दो बच्चों का पिता बनता है। गुईसेंगमु के साथ उसका जीवन वर्तमान दृश्य के रूप में उपन्यास में चित्रित किया गया है। इस प्रकार, उपन्यास में अतीत (रिजोम्बा के साथ प्रेम) और वर्तमान (गुईसेंगमु के साथ जीवन) के दो स्तर एक साथ चलकर कथा को भावनात्मक गहराई प्रदान करते हैं। 'सियांग के उस पार' उपन्यास की शैली पर डॉ. संजीव मंडल का मत

डॉ. संजीव मंडल ने दयाराम वर्मा द्वारा लिखित 'सियांग के उस पार' उपन्यास की शैली को डायरी शैली और वर्णनात्मक शैली का मिश्रण माना है। हालांकि उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि उपन्यास में डायरी की परंपरागत विशेषताएं पूरी तरह नहीं मिलती। वे लिखते हैं कि - "इस उपन्यास में डायरी शैली का प्रयोग किया गया है, परंतु न तो डायरी में स्थान और तारीख का उल्लेख है, न ही डायरी आत्मकथात्मक है। डायरी को पढ़ते हुए यह स्पष्ट नहीं होता कि हम नायक देबांग की कहानी पढ़ रहे हैं। प्रथम पुरुष में डायरी न लिखकर तृतीय पुरुष में लिखी गई है, जिससे डायरी शैली का औचित्य कम हो जाता है। उपन्यास 13 परिच्छेदों में विभाजित है। पहला परिच्छेद वर्तमान काल का

है, जिसमें देबांग एक इंजीनियर है, जो माइक्रो हाइडल प्रोजेक्ट के कार्य से अपने कुछ युवा साथियों के साथ अरुणाचल आता है। गेस्ट हाउस में सूटकेस से एक डायरी निकालकर वह पढ़ना आरंभ करता है। डायरी का हिस्सा दूसरे से बारहवें परिच्छेद तक चलता है। केवल डायरी के प्रारंभ में 'अक्टूबर, 1986' लिखा गया है, जो डायरी लिखने की तारीख नहीं, बल्कि कहानी के तीस वर्ष पुराने होने का संकेत मात्र देता है। उपन्यास के एक स्थान पर नायिका द्वारा नायक को लिखे कुछ पत्र संकलित रूप में दिए गए हैं, जो पत्रात्मक शैली का उदाहरण हैं। संपूर्ण उपन्यास मुख्यतः वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें दृश्य योजना का अभाव है और अधिकतर भाग वर्णन पर आधारित है; संवादों का प्रयोग बहुत कम किया गया है।"[60]

वर्णनात्मक शैली: वर्णनात्मक शैली वह होती है जिसमें लेखक किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु, दृश्य या घटना का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इस शैली में केवल व्यक्ति-विशेष की बातें नहीं होती, बल्कि उसके आस-पास के वातावरण, परिस्थितियों और वस्तुओं का भी सजीव चित्रण किया जाता है। इस प्रकार की शैली को वर्णनात्मक शैली कहा जाता है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में इस शैली का प्रयोग विशेष रूप से देखा जा सकता है। जैसे - 'जंगली फूल', 'मेरी आवाज़ सुनो', 'उस रात की सुबह', 'सोनाम', 'मिनाम' आदि उपन्यासों में लेखक ने पात्रों और स्थलों का अत्यंत सजीव वर्णन किया है। 'मिनाम' उपन्यास से में - "ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश की राजधानी, जहाँ हर क्षेत्र से लोग आकर बसते हैं। कोई अच्छी व उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए, तो कोई नौकरी की तलाश में आता और यहीं बस जाता है। बात उस समय की है जब ईटानगर में एक ही कॉलेज हुआ करता था - गवर्नमेंट कॉलेज ईटानगर।"[61] यह अंश दर्शाता है कि लेखक ने केवल स्थान का उल्लेख नहीं किया, बल्कि ईटानगर के सामाजिक और शैक्षिक परिवेश का भी जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है।

दूसरा उदाहरण 'सोनाम' उपन्यास से- "कमर के ठीक ऊपर पाकसा जैकेट के ऊपर लाल रंग के मोटे कपड़े की एक चौड़ी पट्टी कमरबन्ध के रूप में चारों ओर से घेरा देकर बँधी है। उसी तंड़ालिया कमरबन्ध में बायीं ओर जाँघों तक लटकती, ऊपर से चमड़े से मढ़ी हुई लकड़ी की एक म्यान है, जिसमें लगभग डेढ़ फुट लम्बा और ढाई इंच चौड़ा फाल दाव (पहाड़ी कटार) लटक रहा है। कमरबन्ध से ही लटकी पड़ी है टेड़टेन (गोलाकार गड़ाली) जो मादा याक के बालों से बुनकर बनाई गई है। यह बीच में कहीं बैठने पर मंचिया की तरह नीचे रखकर विश्राम करने के काम आती है।"[62] 'जंगली फूल' उपन्यास पूर्णतः वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास का आरंभ ही विवरणात्मक पद्धति से होता है, जहाँ लेखक कथा को किसी पात्र की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक सर्वज्ञ द्रष्टा के रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यास के प्रथम पृष्ठ या प्रथम अध्याय से ही इस शैली की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। लेखक लिखते हैं कि-"लोगों के पास करने को कुछ नहीं होता। इन दिनों..."[63] इस वाक्य से उपन्यास के प्रारंभिक दृश्य में समाज, वातावरण और पात्रों की स्थिति का समग्र चित्रण मिलता है, जो कि वर्णनात्मक शैली की मुख्य विशेषता है। डॉ. संजीव मंडल का मत 'जंगली फूल' उपन्यास की भाषा पर डॉ. संजीव मंडल ने 'जंगली फूल' उपन्यास की भाषा और शैली पर अपनी टिप्पणी में लिखा है कि-"यह उपन्यास प्रागैतिहासिक काल की कहानी कहता है। अतः इसमें डायरी शैली या पत्रात्मक शैली के प्रयोग की कोई गुंजाइश नहीं थी। आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग उपन्यासकार चाहती तो कर सकती थी, किंतु उसने ऐसा नहीं किया। उपन्यास केवल कहानी कहता चला जाता है। किसी पात्र के अवलोकन-बिंदु से उपन्यास का कोई भी हिस्सा चित्रित नहीं किया गया है।"[64]

भावात्मक शैली: एच.टी.टी.पी. के अनुसार "भावात्मक शैली केवल भाषा का स्वच्छंद रूप ही नहीं है, बल्कि एक भावुक हृदय का आत्मनिवेदन है।"[65] इस शैली में लेखक अपने हृदय की गहराइयों

से उपजे भावों, संवेदनाओं और अनुभूतियों को शब्दों में ढालता है। भावात्मक शैली का प्रयोग प्रायः कविता में अधिक देखा जाता है, क्योंकि इसमें भावनाएँ सीधी, तीव्र और आत्मीय रूप से व्यक्त होती हैं। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में भी कई स्थानों पर यह शैली देखने को मिलती है, जहां पात्रों के मनोभावों को काव्यात्मक और भावनात्मक भाषा में अभिव्यक्त किया गया है।

'मेरी आवाज़ सुनो' उपन्यास से -

"प्रीति, रीति को क्या जाने,
रीति, प्रीति को क्या जाने!
पापियों के पाप से
प्यार क्यों बदनाम है?
प्यार भगवान नहीं है तो
भगवान किसका नाम है?
हे प्रेमी! प्रीति की रीति निभाना!
भय हो तो पास नहीं आना।"[66]

यहाँ जुमसी जी ने प्रेम की शुद्धता और उसकी सामाजिक गलत व्याख्याओं पर भावनात्मक प्रश्न उठाए हैं। काव्यात्मक शैली में लिखा गया यह अंश पात्र के हृदय की गहराई और उसकी संवेदनशीलता को प्रकट करता है।

'उस रात की सुबह' उपन्यास से उदाहरण —

"हम कोमल लड़कियां सपनों की तरह कोमल होती हैं।
आज हम यहाँ हैं तो न जाने कल कहाँ होंगे?
आने दोन्यी आबो पोलो, तूने यह कौन-सी रीत बनाई है,

कि हमें अपने ही घर से एक दिन पराया करके
आप हमेशा के लिए विदा कर दोगे।
हमारे नाम पर आप सबअ/मिथुन पलेंगे,
हमारी जगह आप सौदे में सबअ लेकर इतराएंगे,
हमें हमेशा के लिए विदा कर दोगे...''[67]

प्रश्नात्मक शैली: प्रश्नात्मक शैली वह होती है जिसमें लेखक या पात्र अपने विचारों, भावनाओं अथवा परिस्थितियों को व्यक्त करने के लिए प्रश्नों के माध्यम से संवाद या आत्ममंथन करता है। इस शैली में प्रश्नों के द्वारा भावनात्मक तीव्रता, चिंतनशीलता और अंतर्द्वंद्व को व्यक्त किया जाता है। अरुणाचल प्रदेश केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में भी प्रश्नात्मक शैली का प्रयोग प्रभावी रूप से किया गया है। 'मिनाम' उपन्यास में नायिका की आत्मव्यथा प्रश्नों के माध्यम से व्यक्त होती है कि- ''मैं उस इंसान के लिए रो रही थी, जो कभी मेरा पति था? जिससे मैंने कभी प्यार किया था? या उसके लिए जो मेरी बेटी का पिता था? जिस इंसान ने मुझे दुख पहुंचाया, मुझे तकलीफें दीं, उसे मैं कब का माफ कर चुकी थी, भगवान ने उसे अभी क्यों अपने पास बुलाया?''[68] इन प्रश्नों में नायिका की आत्मसंघर्ष और भावनात्मक उलझन का चित्रण स्पष्ट है। 'मेरी आवाज़ सुनो' उपन्यास में नारी-स्वतंत्रता पर प्रश्न उठाते हुए समाज की मानसिकता पर तीखा प्रहार किया गया है कि-''क्या स्त्री की कोई स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए? क्या नारी मनुष्य नहीं है? समाज का अंग नहीं है नारी? नारी ही तो इस पृथ्वी के प्राणियों की जन्मदायिनी है। लिंग-भेद के कारण ही क्या पुरुषों को अपना या बेटियों को विक्रय करके मुनाफा कमाना चाहिए?''[69] यहाँ लेखक ने प्रश्नों के माध्यम से स्त्री अस्मिता और सामाजिक विसंगतियों पर विचारोत्तेजक विमर्श प्रस्तुत किया है। 'उस रात की सुबह' उपन्यास में प्रश्न नायिका के मनोभावों और असमंजस को प्रकट करते हैं कि-''उसे रह-रहकर अपने पति पर गुस्सा आ रहा था, उसका मन

कर रहा था कि बेटी को लेकर कहीं भाग जाए, लेकिन कहाँ? और कहीं चली गई भी तो कब तक भागती फिरेंगी? एक दिन तो वापस लौटना है ही, फिर क्या? अगर चली भी गई तो फिर घर पर बैठे बाकी छोटे बच्चे का क्या होगा?"[70]

जीवनी शैली: जीवनी शैली वह शैली है जिसमें लेखक किसी पात्र के जीवन की सम्पूर्ण यात्रा - उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक के अनुभवों, संघर्षों और घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन करता है। इस शैली में पात्र का जीवन केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश से भी जुड़ा होता है। अरुणाचल प्रदेश केन्द्रित हिंदी उपन्यासों में इस शैली का प्रभावशाली प्रयोग देखा जा सकता है। "शव काटने वाला आदमी' उपन्यास जीवनी शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है, जिसमें दारगे नरबू और रिजोम्बा दोनों पात्रों के बचपन से लेकर मृत्यु तक के जीवन-क्रम को विस्तारपूर्वक चित्रित किया गया है।"[71] उपन्यासकार लिखते हैं कि- "दारगे को याद आते हैं अपने साथ गाँव की सड़कों, खेतों, जंगल में दौड़ने वाले, उछलने वाले, शोरगुल मचाने वाले, झगड़ने वाले अपने कई साथी। नाक से पानी टपकाती हुई तावा, दुबली-पतली प्यारी सी और बीमार रहने वाली जिगमे, झगड़ालू पेमा, अहंकारी नावांग, बार-बार शौच करने वाला गोंबू और रोने वाली रिजोम्बा।"[72] उपन्यास के अंत में दारगे और रिनचिन जोम्बा की मृत्यु का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि- "अन्त में तवांगछु नदी की तीव्र धारा में बगल में रिनचिन जोम्बा आने सांगे का सिर दबाकर दारगे नरबू और थांपा को बहकर जाने का दृश्य ह्रोरमांग में उपस्थित सभी लोगों ने देखा। श्रद्धा के साथ हाथ जोड़कर सभी आने सांगे नोरलजोम उर्फ रिनचिन जोम्बा के शरीर के अंगों और आउ थांपा उर्फ दारगे नरबू के बहकर जाने की दिशा में देखते हुए खड़े रहे। इसके साथ ही पश्चिम आकाश में सूरज डूब गया और अंधकार धरती पर फैल गया।"[73] उपन्यासकार लिखते हैं कि - "यह सुनते ही ताकार के

साथियों ने तीर चलाना शुरू कर दिया। एक के बाद एक कई तीर आयि को जा लगे। इन जहरीले तीरों के दर्द से वह चीख पड़ी लेकिन वह झुकी नहीं... आयि ने दम तोड़ दिया अपने प्रेमी की गोद में। उसने इस जीवन से अपनी आँखें मूँद लीं, किसी और जीवन में आंखें खोलने के लिए... दोनों प्रेमियों ने इस जालिम दुनिया को अलविदा कह दिया।"[74]

डायरी/पत्र शैली: पत्र शैली, जिसमें घटनाओं की तिथि का सही-सही उल्लेख किया जाता है, उसे पत्र शैली कहा जा सकता है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में भी पत्र शैली का उल्लेख मिलता है। जुमसी सिराम 'नीनो' की ऐतिहासिक उपन्यास 'मातमुर जामोह' डायरी शैली में लिखा गया है। इसमें घटनाओं की सटीक तिथि दी गई है । उदाहरण में वे लिखते हैं -"गत 31.03.1911 ई० की 'विलियमसन हत्याकांड' का मुख्य अभियुक्त उसका पति मातमुर जामोह ही था, जो अब फरार हो गया था।"[75]

संवाद शैली: संवाद शैली वह शैली है जिसमें दो लोगों के बीच आपसी बातचीत या संवाद के रूप में कथन किया जाता है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की शैलियों में संवाद शैली भी पाई जाती है। उदाहरण 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास से लिया गया है, जहाँ तादाक और रिनचिन पात्रों के बीच संवाद चलता है। दोनों एक-दूसरे से नाम पूछते हुए वार्तालाप करते हैं —

तादाक कहते हैं – "रिनचिन। तकलीफ नाम। भूल जाता हूँ।"

रिनचिन कहते हैं – "तुमका हम नहीं भूला। तुमका नाम तादाक है न?"

फिर तादाक पूछते हैं – "तुम जंगल में देखा?"

रिनचिन जवाब देते हैं – "देखा। उसका नाम यामा है किया?"

तादाक भी उत्तर में कहते हैं – "हाँ, यामा है। हमका बहन। यामा हमको सब बात बोला।"[76]

निष्कर्ष:

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का शिल्प विधान अत्यंत सशक्त, प्रभावशाली और यथार्थपरक है। इन उपन्यासों में शिल्प, भाषा और शैली का ऐसा संतुलित प्रयोग देखने को मिलता है, जिससे न केवल कथानक जीवंत बनता है, बल्कि पाठक अरुणाचल प्रदेश की भूमि, समाज, संस्कृति और लोकजीवन से आत्मीय रूप से जुड़ जाता है।

'शिल्प विधान' किसी भी साहित्यिक कृति की आत्मा होती है - जो रचना को आकार, गति और प्रभाव प्रदान करती है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित उपन्यासों में लेखकों ने अपने शिल्प को अत्यंत कलात्मक ढंग से गढ़ा है। उन्होंने कहानी कहने की शैली, संवादों की संरचना, पात्रों के स्वभाव और घटनाओं की प्रस्तुति में ऐसी सहजता दिखाई है कि उपन्यास केवल कथा नहीं रह जाते, बल्कि एक जीवंत सामाजिक दस्तावेज़ बन जाते हैं।

इन उपन्यासों की भाषा सरल, स्वाभाविक और संवाद धर्मी है। लेखकों ने स्थानीय बोलचाल और जनजातीय शब्दों का प्रयोग कर भाषा को न केवल वास्तविक बनाया है, बल्कि उसकी आंचलिक मिठास और सांस्कृतिक पहचान को भी सुरक्षित रखा है। तत्सम, तद्भव, देशज और आंचलिक शब्दों के संतुलित प्रयोग से भाषा में एक अद्भुत लय और प्रवाह का अनुभव होता है। यह भाषा न तो अत्यधिक साहित्यिक है और न ही सामान्य जनभाषा से दूर - बल्कि दोनों के बीच एक सहज सेतु के रूप में कार्य करती है। शैली की दृष्टि से इन उपन्यासों में वर्णनात्मक, संवादात्मक, आत्मकथात्मक और यथार्थपरक शैलियों का प्रयोग हुआ है। लेखकों ने अपनी भावनाओं, विचारों और संदेशों को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है कि पाठक को न केवल घटनाओं का दृश्य दिखाई देता है, बल्कि वह पात्रों के साथ जीता और महसूस करता है।

अंततः कहा जा सकता है कि - अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का शिल्प विधान उनके सौंदर्य, गहराई और प्रभाव का मुख्य आधार है। इन उपन्यासों की भाषा और शैली न केवल पठनीयता को बढ़ाती है, बल्कि अरुणाचल प्रदेश की सांस्कृतिक आत्मा को शब्दों के माध्यम से अमर बना देती है। इस प्रकार, इन रचनाओं का शिल्प विधान भारतीय साहित्य की विविधता और सौंदर्य का एक अनमोल उदाहरण प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची:

---

[1] रतनलाल गोयल 'भावी', नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना, पृ. 1

[2] डॉ.भोलानाथ तिवारी, सं. डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल, भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा, पृ. 15

[3] डॉ.भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृ. 1

[4] निशा तिवारी, ब्रिलिएंट हिन्दी व्याकरण एवं रचना, पृ. 7

[5] सं. कालिका प्रसाद, वृहत हिन्दी कोश, पृ. 842

[6] रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, पृ. 406

[7] सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल, भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा, पृ. 16

[8] आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, पृ-22

[9] गजानन माधव मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, पृ. 28

[10] आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, दीप्ति शर्मा, भाषाविज्ञान की भूमिका, पृ. 19

[11] सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल, भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा, पृ. 16

[12] सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल, भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा, पृ. 16

[13] प्लेटो (सोफिस्ट), भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा, पृ. 16

[14] हेनरी स्वीट, भाषाविज्ञान की भूमिका, पृ. 21

[15] चॉम्स्की, भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा, पृ. 16

[16] ओत्तो येस्पर्सन, भाषाविज्ञान की भूमिका, पृ. 21

[17] वेंद्रीए, भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा, पृ. 16

[18] सं. डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल, भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिन्दी भाषा, पृ. 16

[19] येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 80

[20] डॉ. जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 6

[21] जुमसी सिराम 'नीनों', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 10

[22] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 15–17

[23] वही, पृ-xiv

[24] डॉ. संजीव मंडल, हिन्दी कथा-साहित्य में पूर्वोत्तर भारत, पृ. 245

[25] रतनलाल गोयल 'भावी', नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना, पृ. 12

[26] डॉ. जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 9

[27] जुमसी सिराम 'नीनो', मातमुर जामोह, पृ. 10

[28] रतनलाल गोयल 'भावी', नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना, पृ. 12

[29] तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 12

[30] जुमसी सिराम 'नीनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 12

[31] रतनलाल गोयल 'भावी', नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना, पृ. 13

[32] तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 68–69

[33] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 32

[34] रतनलाल गोयल 'भावी', नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना, पृ. 14

[35] जुमसी सिराम 'नीनो', मातमुर जामोह, पृ. 5

[36] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 27–28

[37] येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 85

[38] वही, पृ-132

[39] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 30

[40] जुमसी सिराम 'नीनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 33

[41] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 40

[42] तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 11

[43] जुमसी सिराम 'नीनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 43

[44] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 65

[45] तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ. 33

[46] डॉ. जोराम यालाम नाबाम, जंगली फूल, पृ. 41

[47] वही, पृ. 41

[48] येसे दरजे थोंगछी, सोनाम, पृ. 7

[49] डॉ. जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 9

[50] येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, पृ. 7

[51] येसे दरजे थोंगछी, शव काटने वाला आदमी, पृ. 10

[52] लुम्मेर दाई, कन्या का मूल्य, पृ. 55

[53] येसे दरजे थोंगछी, शव काटने वाला आदमी, पृ. 13

[54] जोराम यालाम, जंगली फूल, पृ. 68

[55] YouTube: वनशु अकादमी, दिनांक - 25.07.2024, समय - 3:30 PM को देखा गया।

[56] YouTube: वनशु अकादमी, दिनांक - 25.07.2024, समय - 3:30 PM को देखा गया।

[57] पाण्डेय शशिभूषण, शैली और शैली विश्लेषण, पृ. 48

[58] दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, पृ. 19–20

[59] येसे दरजे थोंगछी, शव काटने वाला आदमी, पृ. 22

[60] डॉ. संजीव मंडल, हिन्दी कथा-साहित्य में पूर्वोत्तर भारत, पृ. 246

[61] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ. 15

[62] येसे दरजे थोंगछी, सोनाम, पृ. 7–8

[63] डॉ. संजीव मंडल, हिन्दी कथा-साहित्य में पूर्वोत्तर भारत, पृ. 246

[64] वही, पृ. 247

[65] (http://www.socialresearchfoundation.com), दिनांक - 28.07.2024, समय - 9:50 PM को देखा गया।

[66] जुमसी सिराम 'नीनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ-54

[67] तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ-33–34

[68] मोर्जुम लोयी, मिनाम, पृ-64–65

[69] जुमसी सिराम 'नीनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ-27

[70] तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह, पृ-27

[71] येसे दरजे थोंगछी, शव काटने वाला आदमी, पृ-23

[72] वही, पृ.24

[73] वही, पृ. 272

[74] जुमसी सिराम 'नीनो', मेरी आवाज़ सुनो, पृ. 89–90

[75] जुमसी सिराम 'नीनो', मातमुर जामोह, पृ-3

[76] येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, साहित्य अकादमी, पृ-48

उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन' है। अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध विषय को पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश और उसकी जनजातियाँ: एक विवेचन' है, जिसमें अरुणाचल प्रदेश की परिभाषा, उसके इतिहास और भाषा का उल्लेख किया गया है। साथ ही अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख जनजातियों का परिचय भी दिया गया है।

अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर भारत में स्थित एक सुंदर और प्यारा-सा राज्य है, जहाँ सुंदर पर्यटन स्थल मौजूद हैं, जैसे: तवांग, बोमडिला, नमसाई, तेज़ू, ज़ीरो, सेपा, ईटानगर आदि। यह प्रदेश प्राकृतिक सौन्दर्य और विविध संस्कृतियों से बना है। 20 फरवरी1987 को 'अरुणाचल प्रदेश' के नाम से भारत का यह राज्य बना। इससे पहले यह प्रदेश नार्थ-ईस्ट फ्रंटियर एरिया, नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर ट्रैक्ट्स, नार्थ-ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी आदि के नाम से जाना जाता था, जिसका उल्लेख बी.बी. कुमार ने अपनी किताब 'री-ऑर्गेनाइजेशन ऑफ नॉर्थ-ईस्ट इंडिया' में किया है। अरुणाचल प्रदेश का कुल क्षेत्रफल- 83,743 वर्ग किलोमीटर है। वर्तमान अरुणाचल प्रदेश में कुल 28 जिले हैं, जिनके नाम हैं: अंजाव, बिछोम, चंगलांग, डिबंग वैली, ईस्ट कामेंग, ईस्ट सियांग, कामेंग, कामले, कुरुङ कुमे, केई पनियोर, क्रादादी, लेपा रादा, लोहित, लोअर दिबांग वैली, लोंडिंग, लोअर सियांग, लोअर सुबनसिरी, नामसाई, पापुम पारे, पक्के केससांग, सियांग, शी-योमी, तवांग, तिराप, अप्पर सियांग, अप्पर सुबनसिरी, वेस्ट कामेंग, वेस्ट सियांग हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार अरुणाचल प्रदेश की कुल आबादी- 13,82,611 है। इसमें से पुरुष की आबादी- 7,20,232 और महिला की आबादी- 6,62,379 है। अरुणाचल प्रदेश की पहचान एक सीमांत-भूभाग के रूप में भौगोलिक दुर्गमता, ऐतिहासिक एवं प्रशासनिक परिवर्तनों

और बहु-जातीय/बहु-भाषीय सामाजिक संरचना के परस्पर संवाद से निर्मित हुई है; जिसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में भी होती है।

अरुणाचल प्रदेश का सामाजिक-भौगोलिक स्वरूप बहुजातीय और बहुभाषीय है। यहाँ 26 से अधिक जनजातियां निवास करती हैं, जैसे मोनपा, आदी, गालो, निशी, तागिन, आपातानी, शेरतुकपेन, मीजि, आका, वाङचो, नोक्टे, खामति, तंग्सा, इदु मिश्मी, मिजू मिश्मी, दिगारू मिश्मी, मेम्बा, खम्बा आदि। इन जनजातियों की सांस्कृतिक विविधता राज्य की पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा है। 'अनेकता में एकता' और 'उगते सूरज की भूमि' की अवधारणा अरुणाचल प्रदेश की विशिष्ट पहचान को परिभाषित करती है।

इतिहास और प्रशासनिक विकास के दृष्टिकोण से, अरुणाचल प्रदेश ने 1873 से अंग्रेजी शासन के दौरान अलग-थलग स्थिति में रहते आए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह NEFA का हिस्सा रहा। 1962 में चीन के आक्रमण और उसके पश्चात भारतीय सरकार द्वारा प्रशासनिक पुनर्गठन ने राज्य की नीतिगत और सामरिक महत्व को उभारा। इस ऐतिहासिक और प्रशासनिक विकास ने राज्य को भौगोलिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बना दिया।

साहित्य और भाषा की दृष्टि से भी अरुणाचल प्रदेश विविधता का प्रतीक है। यहाँ के साहित्यिक अभिलेख असमिया, अंग्रेजी और हिंदी में उपलब्ध हैं, जो राज्य की बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक पहचान को दर्शाते हैं। स्थानीय लेखकों ने अपनी सांस्कृतिक कहानियों और जनजातीय जीवन को विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त किया, जिससे राज्य के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की व्यापक समझ प्राप्त होती है।

पर्यटन और प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश अत्यंत समृद्ध है। तवांग, बोमदिला, नमसाई, तेज़ू, जीरो, सेपा, ईटानगर आदि स्थल राज्य की प्राकृतिक सुंदरता और सांस्कृतिक विविधता के प्रमुख उदाहरण हैं। यहाँ के सदाबहार पर्वत, वनाच्छादित क्षेत्र, विविध वन्य जीव, और बहुरंगी जनजातीय संस्कृति राज्य को देश और विश्व स्तर पर विशिष्ट बनाती है।

अरुणाचल प्रदेश की पहचान एक सीमांत-भूभाग के रूप में भौगोलिक दुर्गमता, ऐतिहासिक-प्रशासनिक परिवर्तनों और बहुजातीय/बहुभाषीय सामाजिक संरचना के सम्मिलन से निर्मित हुई है। राज्य का साहित्य, भाषाई विकल्प और सांस्कृतिक विविधता इस निर्माण की अभिव्यक्ति हैं। प्राकृतिक सौंदर्य, जनजातीय विविधता, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और रणनीतिक महत्व- इन सभी का समग्र विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि अरुणाचल प्रदेश न केवल भारत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र में महत्वपूर्ण है, बल्कि यह बहुस्तरीय अध्ययन के लिए एक आदर्श क्षेत्र भी है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का दूसरा अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा' है, जिसमें अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासकार और उनके उपन्यासों को विश्लेषित किया गया है। प्राचीन काल में अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों के पास अपनी कोई लिखित साहित्यिक परंपरा नहीं थी। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशिष्ट भाषा और बोली थी, जिसके कारण वे अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को मौखिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित रखते थे। लोकगीत, लोक कथाएँ, मिथक और जनश्रुतियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में ही प्रचलित रहीं। अरुणाचल प्रदेश में उपन्यास लेखन का आरंभ स्वर्गीय लुम्मेर दाई के उपन्यास 'पहारोंर हिले हिले' (1960) से माना जाता है। सन् 1960 के दशक में अरुणाचल प्रदेश में पड़ोसी राज्य असमिया साहित्य का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय अरुणाचल प्रदेश को नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी (NEFA) के नाम से जाना जाता था और वहाँ की शिक्षा प्रणाली असमिया भाषा के अधीन थी। बाद में सन्

1972 के बाद अरुणाचल प्रदेश में अंग्रेजी और हिन्दी माध्यम में शिक्षा का आरंभ हुआ। इसके साथ ही हिन्दी और अँग्रेज़ी भाषा में विभिन्न साहित्यिक विधाओं- जैसे कहानी, कविता, नाटक, संस्मरण और उपन्यास आदि में लेखन का शुभारंभ प्रारंभ हुआ। इससे पहले तक स्वर्गीय लुम्मेर दाई और येसे दोरजे थोंगछी जैसे लेखक असमिया भाषा में सृजनात्मक लेखन करते थे। परंतु जब सन् 1972 के बाद अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी का प्रचार- प्रसार बढ़ा और अरुणाचल प्रदेश की बहुभाषी समाज की सर्वमान्य संपर्क भाषा हिंदी बन गई, तब अरुणाचल प्रदेश के जुमसी सिराम 'निनो' ने हिन्दी में उपन्यास लेखन की परंपरा का शुभारंभ किया।

अरुणाचल प्रदेश को केंद्र बनाकर हिन्दी में लगभग दस उपन्यास लिखे गए हैं। इनमें से चार उपन्यास ऐसे हैं जो मूल रूप से असमिया भाषा में रचे गए थे और बाद में जिन्हें हिन्दी में अनूदित कर प्रकाशित किया गया। वहीं, मूल रूप से हिन्दी में सृजित उपन्यासों की संख्या छह है। इन उपन्यासों का नाम है- हिंदी में अनूदित उपन्यास: 'कन्या मूल्य' (2006), 'सोनाम'(2008), 'शव काटने वाला आदमी'(2015), 'मौन होंठ मुखर हृदय'(2017); मूलतः हिंदी में सृजित उपन्यास:'मातमुर जामोह'(2015), 'उस रात की सुबह' (2018), 'सियांग के उस पार' (2018), 'जंगली फूल' (2019), 'मिनाम' (2020), 'मेरी आवाज सुनो' (2021) हैं। 'कन्या मूल्य' उपन्यास, जो की सामाजिक समस्याओं पर आधारित उपन्यास है। यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश के मुख्य जनजाति निशि, आदी, गालो, तागीन आदि जनजातियों में बेटी की कीमत लेने की प्रथा पर आधारित है। 'सोनाम' उपन्यास में ब्रोकपा समुदाय में स्त्रियों के द्वारा एक से अधिक पति रखने वाली प्रथा का चित्रण है, यह ब्रोकपा समुदाय, मोंपा जनजाति की एक उप जनजाति है, ये लोग तवांग और पश्चिमी कमेंग जिला, अरुणाचल प्रदेश में रहते हैं। 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में मोनपा जनजाति में मृत व्यक्ति के शवों को काटने की प्रथा का विस्तार से वर्णन किया गया है। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास

पचास के दशक की बात है, जब इस प्रदेश को अरुणाचल प्रदेश का नाम नहीं मिला था। तब उस समय लोग इसे नार्थ-ईस्ट फ्रंटियर एरिया (उत्तर-पूर्वी सीमांत क्षेत्र) के नाम से जानते थे। इसी उत्तर-पूर्वी सीमांत एरिया के समय एक सड़क निर्माण का कार्य चल रहा था, और इसी सड़क निर्माण का जिक्र 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में किया गया है। 'मातमुर जामोह' उपन्यास में ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाया गया है। इसमें सन् 1911 के एंग्लो-अबोर युद्ध की सच्ची घटनाओं का वर्णन मिलता है। यह एंग्लो-अबोर युद्ध कॉमसिंग गाँव, सियांग जिला, अरुणाचल प्रदेश में हुआ, जहां अंग्रेजी कप्तान नोएल विलियमसन और उनके साथियों की हत्या की गई। ऐसा माना जाता है कि यह हत्या मातमुर जमोह और उनके साथियों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए की थी।

'उस रात की सुबह' उपन्यास में बेमेल विवाह का चित्रण किया गया है। लेखिका ने नारियों की पीड़ा, दर्द, सहनशीलता और उनकी कई तरह की समस्याओं को उठाया है। 'सियांग के उस पार' उपन्यास पूर्व-दीप्ति शैली (फ्लैशबैक) में लिखा गया है। इसमें अरुणाचल प्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य, संस्कृति, सामाजिक स्थिति, मैंम्बा जनजाति की नारियों की खूबसूरती, आदिवासी और गैर-आदिवासी के बीच पनपने वाले प्रेम, विश्वास, अपनापन, लगाव आदि का चित्रण किया गया है। 'जंगली फूल' उपन्यास काल्पनिक है और अरुणाचल प्रदेश की निशि जनजाति पर केंद्रित तानी की कथा पर आधारित है। निशी समाज में तानी की कथा को हास्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। बुजुर्गों की मौखिक कथाओं में तानी के कई नाम सुनने को मिलते हैं- आब तेन, न्यिकुम तेन, निया तेन, दोदुम तेन, डोल तेन, दोयी तेन, उई तेन आदि। इसके साथ ही उनकी कई पत्नियों- डोनीय याय, जीथआन आदि का नाम भी हंसी-मजाक के साथ कथा में आता है। इसलिए इस उपन्यास को काल्पनिक और अर्ध यथार्थ का मिश्रित रूप कहा जा सकता है। 'मिनाम' उपन्यास में आदिवासी स्त्रियों के संघर्ष की कथा, स्त्री स्मिता की बात की गई है। यह उपन्यास गालो जनजाति पर केंद्रित है।

इसमें गालो जनजाति के खानपान, रहन-सहन, संस्कृति, मोपिन त्योहार, बच्चों के नामकरण, पूजा-पाठ, विवाह पद्धति आदि का विस्तार से वर्णन मिलता है। 'मेरी आवाज सुनो' उपन्यास में स्त्री अस्मिता, नेप्प न्यीदा (पेट विवाह), वधू मूल्य, बाल विवाह, पितृसत्तात्मक समाज, प्रेम चित्रण, सामाजिक हिंसा, नारी शोषण, बेमेल विवाह आदि विषयों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा की शुरुआत जुमसी सिराम 'नीनो' के उपन्यास 'शिला का रहस्य' (1981), से माना जा सकता है। उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास 'मातमुर जामोह' और स्त्री अस्मिता का उपन्यास 'मेरी आवाज़ सुनो' लिखकर हिन्दी उपन्यास परंपरा को आगे बढ़ाया। उनसे पहले उपन्यास लिखने का कार्य स्वर्गीय लुम्मेर दाई और येसे दोरजे थोंगछी असमिया भाषा में कर चुके थे।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का तृतीय अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और संस्कृति' है, जिसमें अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि जीवन के विविध आयामों का विश्लेषण किया गया है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के समाज और संस्कृति का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर भारत का हिस्सा है, और यह राज्य भारत के पूर्वी दिशा में स्थित है। यह राज्य जनजातीय समाज और संस्कृति का धनी राज्य है। अरुणाचल प्रदेश में 26 जनजातियाँ रहती हैं। यहाँ के जनजातीय समाज के लोग आपस में मिलजुल कर एक-दूसरे की सेवा, सहयोग और सहायता करते हुए अपना जीवन जीते हैं। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के समाज और संस्कृति के अनेक आयामों की अभिव्यक्ति बड़े ही जीवंत रूप में हुई है। ये उपन्यास अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय जीवन की गहन पड़ताल करते हैं। इन उपन्यासों में व्यक्त समाज और संस्कृति की कथाओं में दोन्यी-पोलो धर्म (प्रकृति-प्रेम पूजक), पहनावा-ओढावा, सांस्कृतिक वैभव और त्योहारों

की उल्लासमय छटा को दर्शाया गया है। अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय लोग अपनी परंपराओं और सामाजिक जीवन से बहुत गहराई से जुड़े हुए हैं। साथ ही, सामूहिक एकता और मेहमाननवाज़ी जैसे गुण उनके समाज के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करते हैं। इन उपन्यासों में केवल समाज के उजले पक्ष ही नहीं, बल्कि उसके अंधेरे पहलुओं को भी रेखांकित किया गया है- जहाँ नारी शोषण, अंधविश्वास, पिछड़े गाँव और शिक्षा का अभाव अब भी प्रगति के मार्ग में काँटों की तरह बिछे हुए हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का चतुर्थ अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के प्रश्न' है, जिसमें नारी अस्मिता की परिभाषा, कन्या मूल्य, बाल विवाह, बेमेल विवाह, बहु पत्नी प्रथा, बहु पति प्रथा, प्रेम संबंध आदि का विवेचन किया गया है। नारी अस्मिता का अर्थ है- स्त्री की व्यक्तिगत पहचान, उसकी आत्मनिर्भरता की स्वीकृति, स्वतंत्रता, सुरक्षा, मुक्ति की चाह, अपने अधिकारों पर विचार तथा जीवन संघर्ष की चेतना। इसके साथ ही पितृसत्तात्मक समाज के बंधनों से मुक्ति का विद्रोह और स्त्री-पुरुष समानता के लिए संघर्ष करना भी स्त्री अस्मिता का महत्वपूर्ण आयाम है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में लेखकों ने नारी अस्मिता के विविध प्रश्नों को जनजातीय समाज के संदर्भों में वाणी दी है। उपन्यासकारों ने 'कन्या मूल्य', 'सोनाम', 'जंगली फूल', 'उस रात की सुबह', 'मिनाम', 'मेरी आवाज़ सुनो' आदि उपन्यासों में नारी के शोषण और पीड़ा, नारी मुक्ति की चाह, नारी शोषण के विरुद्ध विद्रोह, नारी के स्वप्न, संघर्ष और अस्तित्व जैसे प्रसंगों को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में नारी अस्मिता के प्रश्नों को बारीकी से संवेदनाओं के साथ उठाया गया है। इसके साथ ही अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में बेमेल विवाह, बाल विवाह, बहुपति प्रथा और बहुपत्नी प्रथा की समस्या को भी प्रमुखता से चित्रित किया गया है। इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के कुछ जनजातीय समाज में स्त्री की स्थिति को बहुत ही दयनीय दिखाया गया है। साथ ही कुछ-कुछ जगह पर स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करते

हुए भी चित्रित किया गया है। ‘उस रात की सुबह’, ‘जंगली फूल’, ‘मिनाम’, ‘कन्या मूल्य’, ‘सोनाम’, ‘मेरी आवाज़ सुनो’ आदि उपन्यासों के अधिकांश स्त्री पात्र, पुरुष प्रधान समाज के शोषण का शिकार बनी हुई हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का पाँचवा अध्याय: ‘अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान’ है, इसके अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा और शैली का विश्लेषण किया गया है। शिल्प विधान के अंतर्गत सबसे पहले भाषा की परिभाषा और उपन्यासों की विविध शैलियों का वर्णन किया गया है। शिल्प का शाब्दिक अर्थ है- गढ़ने और निर्माण करने के तत्व। ‘शिल्प विधान’ दो शब्दों के योग से बना है- ‘शिल्प’ और ‘विधान’। शिल्प का अर्थ है कला और विधान का अर्थ है संयोजन। यानी कि शिल्प विधान किसी भी रचना को प्रभावशाली और सुंदर ढंग से प्रस्तुत करने का तरीका है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों की भाषा सरल, सहज और स्वाभाविक है। लेखकों ने इन उपन्यासों में स्थानीय बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है, जिससे पात्रों की संवाद शैली जीवंत प्रतीत होती है। इन उपन्यासों में जिस प्रकार अरुणाचल प्रदेश के लोग हिंदी बोलते हैं, उसी रूप में उसे लिखा गया है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज तथा आंचलिक शब्दों, मुहावरे और लोकोक्तियाँ का प्रयोग देखने को मिलता है। इन विविध प्रकार के शब्दों के प्रयोग से न केवल भाषा का सौंदर्य बढ़ता है, बल्कि उसकी अभिव्यक्तिगत शक्ति भी सशक्त होती है।

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में विविध शैलियों का प्रयोग किया गया है। इसमें वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली, पूर्वदीप्ति शैली, भावात्मक शैली, प्रश्नात्मक शैली, जीवनी शैली, डायरी/पत्र शैली आदि शैलियों का प्रयोग आवश्यकता अनुसार किया गया है जिससे कथा के प्रवाह में रोचकता बनी रहती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज, संस्कृति, परंपरा, जीवन शैली, खान-पान, रहन-सहन, पहनावा-ओढ़वा, धार्मिक विश्वासों व रूढ़ियों, स्त्रियों की स्थिति आदि की यथार्थ अभिव्यक्ति देखी जा सकती है जो भारतीय समाज और संस्कृति के वैविध्य को ही एक नया रंग प्रदान करती है।

शोध-प्रबंध के महत्वपूर्ण निष्कर्ष:

1. हिंदी साहित्य के इतिहास में पूर्वोत्तर केंद्रित उपन्यास लेखन की परंपरा नवीन है।
2. अरुणाचल प्रदेश में उपन्यास लेखन का आरंभ लुम्मेर दाई के उपन्यास 'पहारोंर हिले हिले' (1960) से माना जाता है, जो असमिया भाषा में लिखा गया है। परंतु हिंदी में अरुणाचल प्रदेश केंद्रित उपन्यास लेखन और दूसरी भाषा से हिंदी में अनुवाद करने की परंपरा की शुरुआत 21वीं शताब्दी से ही दृष्टिगोचर होता है।
3. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की ज्ञात संख्या- 10 है, जिसमें से 4 अनूदित उपन्यास हैं तो 6 मूलतः हिंदी में सृजित हैं।
4. हिन्दी साहित्य में अरुणाचल प्रदेश से संबंधित रचनाओं के सृजन की प्रवृति धीरे धीरे बढ़ रही है। अरुणाचल प्रदेश से कई सारे ऐसे लेखक अब सामने आ रहे हैं जो सीधे सीधे हिंदी में लेखन कर रहे हैं और अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज और संस्कृति को अपने साहित्य का कथ्य बना रहे हैं। पिछले दो दशकों में धीरे धीरे उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसा इसलिए अब ज्यादा सहजता से हो रहा है क्योंकि अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज ने अपनी मातृभाषा के स्थान पर हिंदी को संपर्क की मुख्य भाषा मान लिया है।

5. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यास केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं, बल्कि इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों की सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के विविध आयामों को चित्रित करने का सफल प्रयास किया गया है।
6. अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय जीवन, समाज, संस्कृति, परंपरा और नारी अस्मिता आदि को अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह भारतीय साहित्य को एक नया रंग प्रदान करता है।
7. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में स्थानीय जनजातियों की परंपराएँ, धार्मिक मान्यताएँ, प्रकृति के प्रति प्रेम, संघर्षपूर्ण जीवन और आधुनिकता के प्रभाव को साफ़ तौर से देखा जा सकता है।
8. अरुणाचल प्रदेश की जनजातियाँ सदियों से प्राकृतिक धर्म को मानती आई हैं। कुछ जनजातियाँ दोनी पोलो धर्म को मानती आई हैं। दोनी का अर्थ है सूर्य और पोलो का अर्थ है चंद्र, ये जनजातियाँ सूर्य को माता के रूप में और चंद्र को पिता के रूप में पूजती हैं।
9. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में जनजातियों के भीतर आपसी सद्भावना और सहानुभूति का भाव चित्रित है। अरुणाचली लोगों में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति का भाव कूट-कूटकर भरा पड़ा है। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में दिखाया गया है कि अलग-अलग जनजाति के लोग एक-दूसरे की मदद करते हैं और एक-दूसरे का सहारा बनते हैं।
10. अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में मेहमान के स्वागत-सत्कार की स्वस्थ परंपरा रही है।
11. अरुणाचल प्रदेश के जनजातियों के पर्व और वेशभूषा विविधातापूर्ण रहे हैं। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में इनका उल्लेख विस्तार से मिलता है।

12. इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, शिक्षा का अभाव, आर्थिक चुनौतियां, सांस्कृतिक पहचान का संकट और राजनीतिक परिवर्तन की उठती मांग आदि का भी यथार्थ रूप में चित्रण मिलता है।
13. अरुणाचल प्रदेश के अधिकतर जनजातीय समाज कृषि पर निर्भर करते हैं। इन उपन्यासों में अधिकतर गांव के लोग झूम खेती और पानी खेती को करते हुए दिखाए गए हैं।
14. अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में पिछड़ापन बहुत है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज के पिछड़ेपन का भी चित्रण मिलता है।
15. अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में पूर्व से शिक्षा की कमी रही है। पहले के समय में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज शिक्षा को कोई अहमियत नहीं देते थे। यहाँ तक की गाँव के लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजने से बहुत डरते थे। इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में व्याप्त शिक्षा के अभाव को दिखाया गया है।
16. इन उपन्यासों में मानवीय संबंधों की अवस्था और अपनी जड़ों को बचाए रखने का संघर्ष भी उभरकर सामने आता है।
17. अरुणाचल प्रदेश का जनजातीय समाज भी पितृसत्तात्मक है जिसमें स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। इन उपन्यासों में स्त्री पात्र सबसे पीड़ित, शोषित और वंचित दिखाई देती हैं। इन उपन्यासों में स्त्री के मानसिक और शारीरिक शोषण का चित्रण मिलता है।
18. नारी अस्मिता के विविध प्रश्नों को 'कन्या मूल्य', 'सोनाम', 'जंगली फूल', 'उस रात की सुबह', 'मिनाम', 'मेरी आवाज़ सुनो' आदि उपन्यासों में उठाया गया है।
19. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में कन्या मूल्य, बाल विवाह, बेमेल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, बहुपति प्रथा, प्रेम संबंधों आदि नारी अस्मिता से जुड़े विविध प्रश्नों को उठाया गया है।

20. प्रेम एक प्राकृतिक भावना है। अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में भी यह जन्म लेता है और पनपता है। इन उपन्यासों में प्रेम के अलग-अलग रूप दिखाए गए हैं।

21. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा-शैली सरल और सहज है। जिसमें स्थानीय बोलियों के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है।

22. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास, भारतीय साहित्य में अपना एक अलग स्थान रखते हैं। वे न केवल स्थानीय समाज से हमारा परिचय कराते हैं, बल्कि हिन्दी पाठकों को भारतीय विविधता का व्यापक अनुभव भी कराते हैं।

23. भविष्य में इस दिशा में और भी विस्तृत एवं गहन शोध करने की आवश्यकता है, जिससे इस क्षेत्र की साहित्यिक और भाषाई पहचान और भी ज्यादा मजबूत होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ:

हिंदी में सृजित उपन्यास:

- जुमसी सिराम 'निनो', मातमुर जामोह, प्रकाशक- श्री केमबोम बागरा, आलो, वेस्ट सियांग, अरुणाचल प्रदेश, पहला संस्करण-2015, दूसरा-2016
- जुमसी सिराम 'निनो', मेरी आवाज़ सुनो, अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण-2021
- जोराम यालाम नाबाम, जंगली फूल, अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण-2019
- तुम्बम रिबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह,पृथ्वी प्रकाशन दिल्ली,प्रथम संस्करण-2018
- दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, नोशन प्रेस, चेन्नई, प्रथम संस्करण-2018
- मोर्जुम लोयी, मिनाम, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2020

हिंदी में अनूदित उपन्यास:

- येसे दरजे थोंगछी, सोनाम(अनुवाद), अनुवादक- डॉ. महेन्द्रानाथ दुबे, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009
- येसे दरजे थोंगछी, शव कटनेवाला आदमी(अनुवाद), अनुवादक- दिनकर कुमार, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2015
- येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय(अनुवाद), अनुवादक- दिनकर कुमार, साहित्य अकादेमी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2017, पुनर्मुद्रण- 2023
- लुम्मेर दाई, कन्या का मूल्य(अनुवाद), अनुवादक- मुनीन्द्र मिश्र, एल. डी. पब्लिकेशन ईटानगर, प्रथम संस्करण -2006

सहायक ग्रंथ:

हिन्दी ग्रंथ:

- अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, चौथा संस्करण-2021
- एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवादक सच्चिदानन्द चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2004, दूसरा संस्करण-2012
- कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण, लोकभारती प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, पहला संस्करण-1977, पुनर्मुद्रित -2023
- गजानन माधव मुक्तिबोध, एक साहित्य की डायरी, वाणी प्रकाशन ग्रुप नयी दिल्ली, उन्नीसवाँ संस्करण-2023
- गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण-2019
- जमुना बीनी, अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ, समय साक्ष्य देहरादून, प्रथम संस्करण-2021, दूसरा संस्करण-2022
- जोराम यालाम नाबाम, साक्षी है पीपल, राधाकृष्णा प्रकाशन, दूसरा संस्करण-2023
- जोराम यालाम नाबाम, गाय-गेका की औरतें, राधाकृष्णा प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
- तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', काताम, अनुज्ञा बुक्स शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2020
- दीन दयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1990
- सं. नंद किशोर पाण्डेय और प्रो. हरीश कुमार शर्मा, अरुणाचल प्रदेश की लोककथाएँ, प्रभात पेपरबैक्स नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2022
- सं. नगेन्द्र और हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1973, 80वां संस्करण -2022

- नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, पहला संस्करण- 1957, ग्यारहवाँ संस्करण-2021
- निशा तिवारी, हिन्दी व्याकरण एवं रचना, वोहरा पब्लिशर्स इलाहाबाद, संस्करण- 2012
- ब्रजकिशोर प्रसाद सिंह, पॉपुलर हिन्दी व्याकरण, रमेश पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा, किताब महल नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1966, पुनर्मुद्रित -2016
- रतनलाल गोयल 'भावी', नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना, च्यवन प्रकाशन जयपुर, संस्करण -2005
- रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अनन्य प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली, संस्करण -2024
- राहुल सांकृत्यायन, मेरी तिब्बत यात्रा, अनन्य प्रकाशन शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण -2024
- विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान हैदराबाद, प्रथम संस्करण-2007, दूसरा संस्करण-2020
- वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश लोकजीवन और संस्कृति, हंस प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2021
- वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2008
- श्याम शंकर सिंह, अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी अध्ययन के नये आयाम, साहित्य सहकार दिल्ली, प्रथम संस्करण -2012
- संजीव मंडल, हिंदी कथा – साहित्य में पूर्वोत्तर भारत, अद्वैत प्रकाशन शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण-2023
- सतीश कुमार सिंह, हिन्दी साहित्य का तथ्यपरक इतिहास, नालन्दा पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद, तृतीय संस्करण

- सं. सुरेश चन्द्र, श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य-साधना की पररख, क्वालिटी बुक्स पब्लिकेशन कानपुर, प्रथम संस्करण-2015

अंग्रेजी ग्रंथ:

- B. B. KUMAR, RE-ORGANIZATION OF NORTH-EAST INDIA (Facts and Documents) OMSONS PUBLICATIONS, T-7, RAJOURI GARDEN, NEW DELHI, FIRST PUBLISHED-1996
- B. B Pandey, status of women in tribal society Arunachal Pradesh, director of research, Itanagar Arunachal Pradesh, first pub-1997, reprinted -2018
- Edited Bibhash Dhar and palash Chandra Coomar, Tribes of Arunachal Pradesh history and culture, Abhijeet publications new Delhi, first print -2004, reprint -2016
- Dwijendra Kumar Duarah, the Monpas of Arunachal Pradesh published by assistant director of research, Itanagar, first pub -1990
- Juri Dutta, ethnicity in the fiction of Lummer Dai and Yeshe Dorjee Thongchi, Adhyayan publication new Delhi, first pub -2012
- Lummer Dai, heart to heart, Purbanchal Prakash Guwahati Assam, first published -2021
- M.C Arun Kumar, the tribes of Arunachal Pradesh, Maxford book publication new Delhi, first publication -2012
- Verrier Elwin, A Philosophy for NEFA, directorate of research govt of Arunachal Pradesh, first edition -1957
- Verrier Elwin, Democracy in NEFA, govt of Arunachal Pradesh department of cultural affairs Itanagar, first published -1965, second reprinted -2014

- V. M Rao, tribal women of Arunachal Pradesh socio economic status, Mittal publication new Delhi, first edition -2003
- Yeshe Dorjee Thongchi, Lummer Dai, Sahitya Academi, new Delhi, first pub -2023

कोश ग्रंथ:

- सं. रामचन्द्र वर्मा, प्रामाणिक हिन्दी कोश, लोकभारतीय प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1998
- सं. कृष्ण कान्त दीक्षित और सूर्यनारायण उपाध्याय, मानक हिन्दी शब्दकोश, कमल प्रकाशन नई दिल्ली, नवीन संस्करण
- सं. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी, संस्करण-1985
- सं. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी मुहावरा कोश, बुक सेंटर दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010

पत्र-पत्रिकाएँ:

- अक्षरा, सं. कैलाशचन्द्र पन्त, अंक -199, मध्यप्रदेश, अक्टूबर -2021
- आजकल, सं. राकेशरेणु, अंक-6, नई दिल्ली, अक्टूबर -2021
- द्विभाषी राष्ट्रसेवक, संपादक- डॉ. क्षीरदा कुमार शाइकीया, अंक -8,9, गुवाहाटी, नवंबर-दिसंबर, 2024
- सुरभि शोध संस्थान, सं. चन्द्र कान्ती पाल, अंक-1-4, वाराणसी, जनवरी-दिसम्बर 2024
- चाणक्य वार्ता, संपादक -डॉ. अमित जैन, अंक -6, नई दिल्ली, 31 मार्च -2025
- शोध-समालोचन, सं-डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', अंक-2, दिल्ली, अप्रैल -जून -2025

परिशिष्ट- 1

शोधार्थी का जीवनवृत्त
शोधार्थी का विवरण

शोधार्थी का जीवनवृत्त

1. नाम	:	**ताबा याना**
2. पिता का नाम	:	ताबा तास्सर
3. माता का नाम	:	ताबा यामक
4. पता	:	मिडपू -l, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश
5. जन्मतिथि	:	12 -02-1999
6. शैक्षणिक योग्यता	:	a) HSLC (2014) 2nd Div.
		b) HSSLC (2016) 2nd Div.
		c) B.A. (2019) 2nd Div.
		d) M.A. (2021) 1st Div.
7. मोबाइल	:	7085863647
8. ईमेल	:	aanejaai36@gmail.com
9. भाषा	:	हिंदी, अँग्रेजी, आसामी, नागमिस, नेपाली, न्यिशी

10. प्रकाशन :

क) Stri Asmita Ka Prashn Aur Meri Aawaj Suno Upanyas', Dwibhashi Rastrasewak. S-15(15), P-85-91. Ch.Ed. Dr. Kshirada Kumar Shaikia, Rupnagar, Guwahati, Rastrabhasha Prachar Samiti.

ख) Arunachali Samaj Ke Samajik, Sanskritik Evam Arthik Paksh (Arunachal Pradesh Kendrit Hindi Upanyason Ke Vishesh Sandrabh Main), Shodh Samalochan. S- 24(24), p-117 -120. Ed. Dr Naresh Sihag 'Bohal', An International Peer Reviewed, Refereed Multidisciplinary & Multiple Languages Quarterly Research Journal, Delhi.

11. संगोष्ठी में पत्र वाचन:

(क) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का समीकक्षात्मक अध्ययन, हिंदी विभाग कॉटन विश्वविद्यालय, पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की स्थिति: शोध एवं संभावनाएं, 10-12 अगस्त, 2023.

(ख) अरुणाचल प्रदेश के हिंदी उपन्यासों की भाषा, मिज़ोरम विश्वविद्यालय आइजोल (मिज़ोरम) पूर्वोत्तर भारत का भाषाई एकात्मक और हिन्दी(मिज़ोरम के विशेष संदर्भ में, 22-23 सितंबर, 2025.

शोधार्थी का विवरण

नाम	:	**ताबा याना**
शिक्षा	:	पीएच.डी.
विभाग	:	हिंदी
शोध प्रबंध का शीर्षक	:	**अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन**
प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि	:	23-08-2021
शोध प्रस्ताव की संस्तुति	:	

1) विभागीय शोध समिति की तिथि : 06-04-2022
2) बी.ओ.एस. की तिथि : 24-05-2022
3) स्कूल बोर्ड की तिथि : 10-06-2022

मिज़ोरम विश्वविद्यालय पंजीयन संख्या : 1900166

पीएच.डी. पंजीयन संख्या : MZU/Ph.D./1802 of 23.08.2021

समयावधि विस्तार पत्र संख्या :

(प्रो. संजय कुमार)
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आईजोल

शोध प्रबंध का सारांश

ABSTRACT

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन

ARUNACHAL PRADESH KENDRIT HINDI UPANYASON KA SAMIKSHATMAK ADHYAYAN

[मिजोरम विश्वविद्यालय, आईजोल के हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएच.डी.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध का सारांश]

AN ABSTRACT SUBMITTED IN PARTIAL FULFILLMENT OF THE REQUIRMENTS FOR THE DEGREE OF DOCTOR OF PHILOSOPHY

ताबा याना

TABA YANA

MZU REGN. NO: 1900166

Ph.D. REGN. NO.: MZU/Ph.D./1802 of 23.08.2021

हिंदी विभाग

मानविकी एवं भाषा संकाय

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF HUMANITIES AND LANGUAGES

दिसंबर, 2025

DECEMBER, 2025

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन

ARUNACHAL PRADESH KENDRIT HINDI UPANYASON KA SAMIKSHATMAK ADHYAYAN

शोधार्थी

ताबा याना

हिंदी विभाग

By

TABA YANA

DEPARTMENT OF HINDI

शोध निर्देशक

प्रो. संजय कुमार

SUPERVISOR

PROF. SANJAY KUMAR

मिजोरम विश्वविद्यालय, आईजोल के मानविकी एवं भाषा संकाय के अंतर्गत हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पीएच.डी.) की उपाधि के लिए अपेक्षित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध का सारांश

Submitted in partial fulfillment of the requirement of the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi of Mizoram University, Aizawl

विषयानुक्रमणिका

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रमाण पत्र **I**

घोषणा पत्र **II**

प्राक्कथन **III- IX**

विषयानुक्रमणिका **X-XIII**

प्रथम अध्याय: अरुणाचल प्रदेश और उसकी जनजातियाँ: एक विवेचन **1-87**

(क) अरुणाचल प्रदेश: सामान्य परिचय

(ख) अरुणाचल प्रदेश की जनजातियाँ: सामान्य परिचय

द्वितीय अध्याय: अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा **88-149**

(क) अरुणाचल प्रदेश के हिन्दी उपन्यासकार: सामान्य परिचय

(ख) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास: सामान्य परिचय

तृतीय अध्याय: अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और संस्कृति **150-184**

(क) समाज

(ख) संस्कृति

i. धर्म
ii. पर्व एवं त्योहार
iii. खानपान
iv. पहनावा ओढ़ावा
v. जीविकोपार्जन के साधन

(ग) अन्य विविध विषय

i. कृषि और व्यवसाय
ii. चीन युद्ध
iii. ऐतिहासिक संदर्भ
iv. सद्भावना और सहानुभूति
v. मेहमान नवाजी
vi. अंधविश्वास
vii. पिछड़ापन
viii. शिक्षा का अभाव

चतुर्थ अध्याय: अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के प्रश्न **185-221**

(क) कन्या मूल्य
(ख) बाल विवाह
(ग) बेमेल विवाह
(घ) बहुपत्नी प्रथा
(ङ) बहुपति प्रथा
(च) प्रेम संबंध
(छ) स्त्री शोषण का स्वरूप

पंचम अध्याय: अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान **222-253**

(क) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा
(ख) अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की शैली

उपसंहार **254-266**

परिशिष्ट- 1 **267-272**

संदर्भ ग्रंथ सूची

परिशिष्ट- 2 **273-275**

शोधार्थी का जीवनवृत्त

शोधार्थी का विवरण

शोध प्रबंध का सारांश

शोध प्रबंध का सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन' है। अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध विषय को पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश और उसकी जनजातियाँ: एक विवेचन' है, जिसमें अरुणाचल प्रदेश की परिभाषा, उसके इतिहास और भाषा का उल्लेख किया गया है। साथ ही अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख जनजातियों का परिचय भी दिया गया है।

अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर भारत में स्थित एक सुंदर और प्यारा-सा राज्य है, जहाँ सुंदर पर्यटन स्थल मौजूद हैं, जैसे: तवांग, बोमडिला, नमसाई, तेज़ू, ज़ीरो, सेपा, ईटानगर आदि। यह प्रदेश प्राकृतिक सौन्दर्य और विविध संस्कृतियों से बना है। 20 फरवरी1987 को 'अरुणाचल प्रदेश' के नाम से भारत का यह राज्य बना। इससे पहले यह प्रदेश नार्थ-ईस्ट फ्रंटियर एरिया, नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर ट्रैक्ट्स, नार्थ-ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी आदि के नाम से जाना जाता था, जिसका उल्लेख बी.बी. कुमार ने अपनी किताब 'री-ऑर्गेनाइजेशन ऑफ नॉर्थ-ईस्ट इंडिया' में किया है। अरुणाचल प्रदेश का कुल क्षेत्रफल- 83,743 वर्ग किलोमीटर है। वर्तमान अरुणाचल प्रदेश में कुल 28 जिले हैं, जिनके नाम हैं: अंजाव, बिछोम, चंगलांग, डिबंग वैली, ईस्ट कामेंग, ईस्ट सियांग, कामेंग, कामले, कुरुङ कुमे, केई पनियोर, क्रादादी, लेपा रादा, लोहित, लोअर दिबांग वैली, लोंडिंग, लोअर सियांग, लोअर सुबनसिरी, नामसाई, पापुम पारे, पक्के केससांग, सियांग, शी-योमी, तवांग, तिराप, अप्पर सियांग, अप्पर सुबनसिरी, वेस्ट कामेंग, वेस्ट सियांग हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार अरुणाचल प्रदेश की कुल आबादी- 13,82,611 है। इसमें से पुरुष की आबादी- 7,20,232 और महिला की आबादी- 6,62,379 है। अरुणाचल प्रदेश की पहचान एक सीमांत-भूभाग के रूप में भौगोलिक दुर्गमता, ऐतिहासिक एवं प्रशासनिक परिवर्तनों

और बहु-जातीय/बहु-भाषीय सामाजिक संरचना के परस्पर संवाद से निर्मित हुई है; जिसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में भी होती है।

अरुणाचल प्रदेश का सामाजिक-भौगोलिक स्वरूप बहुजातीय और बहुभाषीय है। यहाँ 26 से अधिक जनजातियां निवास करती हैं, जैसे मोनपा, आदी, गालो, निशी, तागिन, आपातानी, शेरतुकपेन, मीजि, आका, वाङचो, नोक्टे, खामति, तंग्सा, इदु मिश्मी, मिजू मिश्मी, दिगारू मिश्मी, मेम्बा, खम्बा आदि। इन जनजातियों की सांस्कृतिक विविधता राज्य की पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा है। 'अनेकता में एकता' और 'उगते सूरज की भूमि' की अवधारणा अरुणाचल प्रदेश की विशिष्ट पहचान को परिभाषित करती है।

इतिहास और प्रशासनिक विकास के दृष्टिकोण से, अरुणाचल प्रदेश ने 1873 से अंग्रेजी शासन के दौरान अलग-थलग स्थिति में रहते आए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह NEFA का हिस्सा रहा। 1962 में चीन के आक्रमण और उसके पश्चात भारतीय सरकार द्वारा प्रशासनिक पुनर्गठन ने राज्य की नीतिगत और सामरिक महत्व को उभारा। इस ऐतिहासिक और प्रशासनिक विकास ने राज्य को भौगोलिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण बना दिया।

साहित्य और भाषा की दृष्टि से भी अरुणाचल प्रदेश विविधता का प्रतीक है। यहाँ के साहित्यिक अभिलेख असमिया, अंग्रेजी और हिंदी में उपलब्ध हैं, जो राज्य की बहुभाषीय और बहुसांस्कृतिक पहचान को दर्शाते हैं। स्थानीय लेखकों ने अपनी सांस्कृतिक कहानियों और जनजातीय जीवन को विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त किया, जिससे राज्य के ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की व्यापक समझ प्राप्त होती है।

पर्यटन और प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश अत्यंत समृद्ध है। तवांग, बोमदिला, नमसाई, तेज़ू, जीरो, सेपा, ईटानगर आदि स्थल राज्य की प्राकृतिक सुंदरता और सांस्कृतिक विविधता के प्रमुख उदाहरण हैं। यहाँ के सदाबहार पर्वत, वनाच्छादित क्षेत्र, विविध वन्य जीव, और बहुरंगी जनजातीय संस्कृति राज्य को देश और विश्व स्तर पर विशिष्ट बनाती है।

अरुणाचल प्रदेश की पहचान एक सीमांत-भूभाग के रूप में भौगोलिक दुर्गमता, ऐतिहासिक-प्रशासनिक परिवर्तनों और बहुजातीय/बहुभाषीय सामाजिक संरचना के सम्मिलन से निर्मित हुई है। राज्य का साहित्य, भाषाई विकल्प और सांस्कृतिक विविधता इस निर्माण की अभिव्यक्ति हैं। प्राकृतिक सौंदर्य, जनजातीय विविधता, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और रणनीतिक महत्व- इन सभी का समग्र विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि अरुणाचल प्रदेश न केवल भारत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र में महत्वपूर्ण है, बल्कि यह बहुस्तरीय अध्ययन के लिए एक आदर्श क्षेत्र भी है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का दूसरा अध्याय: ‘अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा’ है, जिसमें अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासकार और उनके उपन्यासों को विश्लेषित किया गया है। प्राचीन काल में अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों के पास अपनी कोई लिखित साहित्यिक परंपरा नहीं थी। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशिष्ट भाषा और बोली थी, जिसके कारण वे अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को मौखिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित रखते थे। लोकगीत, लोक कथाएँ, मिथक और जनश्रुतियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में ही प्रचलित रहीं। अरुणाचल प्रदेश में उपन्यास लेखन का आरंभ स्वर्गीय लुम्मेर दाई के उपन्यास ‘पहारोंर हिले हिले’ (1960) से माना जाता है। सन् 1960 के दशक में अरुणाचल प्रदेश में पड़ोसी राज्य असमिया साहित्य का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय अरुणाचल प्रदेश को नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी (NEFA) के नाम से जाना जाता था और वहाँ की शिक्षा प्रणाली असमिया भाषा के अधीन थी। बाद में सन्

1972 के बाद अरुणाचल प्रदेश में अंग्रेजी और हिन्दी माध्यम में शिक्षा का आरंभ हुआ। इसके साथ ही हिन्दी और अँग्रेज़ी भाषा में विभिन्न साहित्यिक विधाओं- जैसे कहानी, कविता, नाटक, संस्मरण और उपन्यास आदि में लेखन का शुभारंभ प्रारंभ हुआ। इससे पहले तक स्वर्गीय लुम्मेर दाई और येसे दोरजे थोंगछी जैसे लेखक असमिया भाषा में सृजनात्मक लेखन करते थे। परंतु जब सन् 1972 के बाद अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी का प्रचार- प्रसार बढ़ा और अरुणाचल प्रदेश की बहुभाषी समाज की सर्वमान्य संपर्क भाषा हिंदी बन गई, तब अरुणाचल प्रदेश के जुमसी सिराम 'निनो' ने हिन्दी में उपन्यास लेखन की परंपरा का शुभारंभ किया।

अरुणाचल प्रदेश को केंद्र बनाकर हिन्दी में लगभग दस उपन्यास लिखे गए हैं। इनमें से चार उपन्यास ऐसे हैं जो मूल रूप से असमिया भाषा में रचे गए थे और बाद में जिन्हें हिन्दी में अनूदित कर प्रकाशित किया गया। वहीं, मूल रूप से हिन्दी में सृजित उपन्यासों की संख्या छह है। इन उपन्यासों का नाम है- हिंदी में अनूदित उपन्यास: 'कन्या मूल्य' (2006), 'सोनाम'(2008), 'शव काटने वाला आदमी'(2015), 'मौन होंठ मुखर हृदय'(2017); मूलतः हिंदी में सृजित उपन्यास:'मातमुर जामोह'(2015), 'उस रात की सुबह' (2018), 'सियांग के उस पार' (2018), 'जंगली फूल' (2019), 'मिनाम' (2020), 'मेरी आवाज सुनो' (2021) हैं। 'कन्या मूल्य' उपन्यास, जो की सामाजिक समस्याओं पर आधारित उपन्यास है। यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश के मुख्य जनजाति निशि, आदी, गालो, तागीन आदि जनजातियों में बेटी की कीमत लेने की प्रथा पर आधारित है। 'सोनाम' उपन्यास में ब्रोकपा समुदाय में स्त्रियों के द्वारा एक से अधिक पति रखने वाली प्रथा का चित्रण है, यह ब्रोकपा समुदाय, मोंपा जनजाति की एक उप जनजाति है, ये लोग तवांग और पश्चिमी कमेंग जिला, अरुणाचल प्रदेश में रहते हैं। 'शव काटने वाला आदमी' उपन्यास में मोनपा जनजाति में मृत व्यक्ति के शवों को काटने की प्रथा का विस्तार से वर्णन किया गया है। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास

पचास के दशक की बात है, जब इस प्रदेश को अरुणाचल प्रदेश का नाम नहीं मिला था। तब उस समय लोग इसे नार्थ-ईस्ट फ्रंटियर एरिया (उत्तर-पूर्वी सीमांत क्षेत्र) के नाम से जानते थे। इसी उत्तर-पूर्वी सीमांत एरिया के समय एक सड़क निर्माण का कार्य चल रहा था, और इसी सड़क निर्माण का जिक्र 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में किया गया है। 'मातमुर जामोह' उपन्यास में ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाया गया है। इसमें सन् 1911 के एंग्लो-अबोर युद्ध की सच्ची घटनाओं का वर्णन मिलता है। यह एंग्लो-अबोर युद्ध कॉमसिंग गाँव, सियांग जिला, अरुणाचल प्रदेश में हुआ, जहां अंग्रेजी कप्तान नोएल विलियमसन और उनके साथियों की हत्या की गई। ऐसा माना जाता है कि यह हत्या मातमुर जमोह और उनके साथियों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए की थी।

'उस रात की सुबह' उपन्यास में बेमेल विवाह का चित्रण किया गया है। लेखिका ने नारियों की पीड़ा, दर्द, सहनशीलता और उनकी कई तरह की समस्याओं को उठाया है। 'सियांग के उस पार' उपन्यास पूर्व-दीप्ति शैली (फ्लैशबैक) में लिखा गया है। इसमें अरुणाचल प्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य, संस्कृति, सामाजिक स्थिति, मैंम्बा जनजाति की नारियों की खूबसूरती, आदिवासी और गैर-आदिवासी के बीच पनपने वाले प्रेम, विश्वास, अपनापन, लगाव आदि का चित्रण किया गया है। 'जंगली फूल' उपन्यास काल्पनिक है और अरुणाचल प्रदेश की निशि जनजाति पर केंद्रित तानी की कथा पर आधारित है। निशी समाज में तानी की कथा को हास्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। बुजुर्गों की मौखिक कथाओं में तानी के कई नाम सुनने को मिलते हैं- आब तेन, न्यिकुम तेन, निया तेन, दोदुम तेन, डोल तेन, दोयी तेन, उई तेन आदि। इसके साथ ही उनकी कई पत्नियों- डोनीय याय, जीथआन आदि का नाम भी हंसी-मजाक के साथ कथा में आता है। इसलिए इस उपन्यास को काल्पनिक और अर्ध यथार्थ का मिश्रित रूप कहा जा सकता है। 'मिनाम' उपन्यास में आदिवासी स्त्रियों के संघर्ष की कथा, स्त्री स्मिता की बात की गई है। यह उपन्यास गालो जनजाति पर केंद्रित है।

इसमें गालो जनजाति के खानपान, रहन-सहन, संस्कृति, मोपिन त्योहार, बच्चों के नामकरण, पूजा-पाठ, विवाह पद्धति आदि का विस्तार से वर्णन मिलता है। 'मेरी आवाज सुनो' उपन्यास में स्त्री अस्मिता, नेप्प न्यीदा (पेट विवाह), वधू मूल्य, बाल विवाह, पितृसत्तात्मक समाज, प्रेम चित्रण, सामाजिक हिंसा, नारी शोषण, बेमेल विवाह आदि विषयों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास परंपरा की शुरुआत जुमसी सिराम 'नीनो' के उपन्यास 'शिला का रहस्य' (1981), से माना जा सकता है। उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास 'मातमुर जामोह' और स्त्री अस्मिता का उपन्यास 'मेरी आवाज़ सुनो' लिखकर हिन्दी उपन्यास परंपरा को आगे बढ़ाया। उनसे पहले उपन्यास लिखने का कार्य स्वर्गीय लुम्मेर दाई और येसे दोरजे थोंगछी असमिया भाषा में कर चुके थे।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का तृतीय अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज और संस्कृति' है, जिसमें अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि जीवन के विविध आयामों का विश्लेषण किया गया है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के समाज और संस्कृति का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर भारत का हिस्सा है, और यह राज्य भारत के पूर्वी दिशा में स्थित है। यह राज्य जनजातीय समाज और संस्कृति का धनी राज्य है। अरुणाचल प्रदेश में 26 जनजातियाँ रहती हैं। यहाँ के जनजातीय समाज के लोग आपस में मिलजुल कर एक-दूसरे की सेवा, सहयोग और सहायता करते हुए अपना जीवन जीते हैं। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के समाज और संस्कृति के अनेक आयामों की अभिव्यक्ति बड़े ही जीवंत रूप में हुई है। ये उपन्यास अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय जीवन की गहन पड़ताल करते हैं। इन उपन्यासों में व्यक्त समाज और संस्कृति की कथाओं में दोन्यी-पोलो धर्म (प्रकृति-प्रेम पूजक), पहनावा-ओढावा, सांस्कृतिक वैभव और त्योहारों

की उल्लासमय छटा को दर्शाया गया है। अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय लोग अपनी परंपराओं और सामाजिक जीवन से बहुत गहराई से जुड़े हुए हैं। साथ ही, सामूहिक एकता और मेहमाननवाज़ी जैसे गुण उनके समाज के वैशिष्ट्य को प्रदर्शित करते हैं। इन उपन्यासों में केवल समाज के उजले पक्ष ही नहीं, बल्कि उसके अंधेरे पहलुओं को भी रेखांकित किया गया है- जहाँ नारी शोषण, अंधविश्वास, पिछड़े गाँव और शिक्षा का अभाव अब भी प्रगति के मार्ग में काँटों की तरह बिछे हुए हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का चतुर्थ अध्याय: ‘अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता के प्रश्न’ है, जिसमें नारी अस्मिता की परिभाषा, कन्या मूल्य, बाल विवाह, बेमेल विवाह, बहु पत्नी प्रथा, बहु पति प्रथा, प्रेम संबंध आदि का विवेचन किया गया है। नारी अस्मिता का अर्थ है- स्त्री की व्यक्तिगत पहचान, उसकी आत्मनिर्भरता की स्वीकृति, स्वतंत्रता, सुरक्षा, मुक्ति की चाह, अपने अधिकारों पर विचार तथा जीवन संघर्ष की चेतना। इसके साथ ही पितृसत्तात्मक समाज के बंधनों से मुक्ति का विद्रोह और स्त्री-पुरुष समानता के लिए संघर्ष करना भी स्त्री अस्मिता का महत्वपूर्ण आयाम है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में लेखकों ने नारी अस्मिता के विविध प्रश्नों को जनजातीय समाज के संदर्भों में वाणी दी है। उपन्यासकारों ने ‘कन्या मूल्य’, ‘सोनाम’, ‘जंगली फूल’, ‘उस रात की सुबह’, ‘मिनाम’, ‘मेरी आवाज़ सुनो’ आदि उपन्यासों में नारी के शोषण और पीड़ा, नारी मुक्ति की चाह, नारी शोषण के विरुद्ध विद्रोह, नारी के स्वप्न, संघर्ष और अस्तित्व जैसे प्रसंगों को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में नारी अस्मिता के प्रश्नों को बारीकी से संवेदनाओं के साथ उठाया गया है। इसके साथ ही अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में बेमेल विवाह, बाल विवाह, बहुपति प्रथा और बहुपत्नी प्रथा की समस्या को भी प्रमुखता से चित्रित किया गया है। इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के कुछ जनजातीय समाज में स्त्री की स्थिति को बहुत ही दयनीय दिखाया गया है। साथ ही कुछ-कुछ जगह पर स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करते

हुए भी चित्रित किया गया है। 'उस रात की सुबह', 'जंगली फूल', 'मिनाम', 'कन्या मूल्य', 'सोनाम', 'मेरी आवाज़ सुनो' आदि उपन्यासों के अधिकांश स्त्री पात्र, पुरुष प्रधान समाज के शोषण का शिकार बनी हुई हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का पाँचवा अध्याय: 'अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विधान' है, इसके अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा और शैली का विश्लेषण किया गया है। शिल्प विधान के अंतर्गत सबसे पहले भाषा की परिभाषा और उपन्यासों की विविध शैलियों का वर्णन किया गया है। शिल्प का शाब्दिक अर्थ है- गढ़ने और निर्माण करने के तत्व। 'शिल्प विधान' दो शब्दों के योग से बना है- 'शिल्प' और 'विधान'। शिल्प का अर्थ है कला और विधान का अर्थ है संयोजन। यानी कि शिल्प विधान किसी भी रचना को प्रभावशाली और सुंदर ढंग से प्रस्तुत करने का तरीका है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों की भाषा सरल, सहज और स्वाभाविक है। लेखकों ने इन उपन्यासों में स्थानीय बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है, जिससे पात्रों की संवाद शैली जीवंत प्रतीत होती है। इन उपन्यासों में जिस प्रकार अरुणाचल प्रदेश के लोग हिंदी बोलते हैं, उसी रूप में उसे लिखा गया है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज तथा आंचलिक शब्दों, मुहावरे और लोकोक्तियाँ का प्रयोग देखने को मिलता है। इन विविध प्रकार के शब्दों के प्रयोग से न केवल भाषा का सौंदर्य बढ़ता है, बल्कि उसकी अभिव्यक्तिगत शक्ति भी सशक्त होती है।

अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में विविध शैलियों का प्रयोग किया गया है। इसमें वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली, पूर्वदीप्ति शैली, भावात्मक शैली, प्रश्नात्मक शैली, जीवनी शैली, डायरी/पत्र शैली आदि शैलियों का प्रयोग आवश्यकता अनुसार किया गया है जिससे कथा के प्रवाह में रोचकता बनी रहती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज, संस्कृति, परंपरा, जीवन शैली, खान-पान, रहन-सहन, पहनावा-ओढ़वा, धार्मिक विश्वासों व रूढ़ियों, स्त्रियों की स्थिति आदि की यथार्थ अभिव्यक्ति देखी जा सकती है जो भारतीय समाज और संस्कृति के वैविध्य को ही एक नया रंग प्रदान करती है।

शोध-प्रबंध के महत्वपूर्ण निष्कर्ष:

1. हिंदी साहित्य के इतिहास में पूर्वोत्तर केंद्रित उपन्यास लेखन की परंपरा नवीन है।
2. अरुणाचल प्रदेश में उपन्यास लेखन का आरंभ लुम्मेर दाई के उपन्यास 'पहारोंर हिले हिले' (1960) से माना जाता है, जो असमिया भाषा में लिखा गया है। परंतु हिंदी में अरुणाचल प्रदेश केंद्रित उपन्यास लेखन और दूसरी भाषा से हिंदी में अनुवाद करने की परंपरा की शुरुआत 21वीं शताब्दी से ही दृष्टिगोचर होता है।
3. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की ज्ञात संख्या- 10 है, जिसमें से 4 अनूदित उपन्यास हैं तो 6 मूलतः हिंदी में सृजित हैं।
4. हिन्दी साहित्य में अरुणाचल प्रदेश से संबंधित रचनाओं के सृजन की प्रवृति धीरे धीरे बढ़ रही है। अरुणाचल प्रदेश से कई सारे ऐसे लेखक अब सामने आ रहे हैं जो सीधे सीधे हिंदी में लेखन कर रहे हैं और अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज और संस्कृति को अपने साहित्य का कथ्य बना रहे हैं। पिछले दो दशकों में धीरे धीरे उनकी संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसा इसलिए अब ज्यादा सहजता से हो रहा है क्योंकि अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज ने अपनी मातृभाषा के स्थान पर हिंदी को संपर्क की मुख्य भाषा मान लिया है।

5. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यास केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं, बल्कि इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों की सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के विविध आयामों को चित्रित करने का सफल प्रयास किया गया है।
6. अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय जीवन, समाज, संस्कृति, परंपरा और नारी अस्मिता आदि को अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह भारतीय साहित्य को एक नया रंग प्रदान करता है।
7. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में स्थानीय जनजातियों की परंपराएँ, धार्मिक मान्यताएँ, प्रकृति के प्रति प्रेम, संघर्षपूर्ण जीवन और आधुनिकता के प्रभाव को साफ़ तौर से देखा जा सकता है।
8. अरुणाचल प्रदेश की जनजातियाँ सदियों से प्राकृतिक धर्म को मानती आई हैं। कुछ जनजातियाँ दोनी पोलो धर्म को मानती आई हैं। दोनी का अर्थ है सूर्य और पोलो का अर्थ है चंद्र, ये जनजातियाँ सूर्य को माता के रूप में और चंद्र को पिता के रूप में पूजती हैं।
9. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में जनजातियों के भीतर आपसी सद्भावना और सहानुभूति का भाव चित्रित है। अरुणाचली लोगों में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति का भाव कूट-कूटकर भरा पड़ा है। 'मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास में दिखाया गया है कि अलग-अलग जनजाति के लोग एक-दूसरे की मदद करते हैं और एक-दूसरे का सहारा बनते हैं।
10. अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में मेहमान के स्वागत-सत्कार की स्वस्थ परंपरा रही है।
11. अरुणाचल प्रदेश के जनजातियों के पर्व और वेशभूषा विविधातापूर्ण रहे हैं। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में इनका उल्लेख विस्तार से मिलता है।

12. इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, शिक्षा का अभाव, आर्थिक चुनौतियां, सांस्कृतिक पहचान का संकट और राजनीतिक परिवर्तन की उठती मांग आदि का भी यथार्थ रूप में चित्रण मिलता है।
13. अरुणाचल प्रदेश के अधिकतर जनजातीय समाज कृषि पर निर्भर करते हैं। इन उपन्यासों में अधिकतर गांव के लोग झूम खेती और पानी खेती को करते हुए दिखाए गए हैं।
14. अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में पिछड़ापन बहुत है। अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिंदी उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज के पिछड़ेपन का भी चित्रण मिलता है।
15. अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में पूर्व से शिक्षा की कमी रही है। पहले के समय में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज शिक्षा को कोई अहमियत नहीं देते थे। यहाँ तक की गाँव के लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजने से बहुत डरते थे। इन उपन्यासों में अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में व्याप्त शिक्षा के अभाव को दिखाया गया है।
16. इन उपन्यासों में मानवीय संबंधों की अवस्था और अपनी जड़ों को बचाए रखने का संघर्ष भी उभरकर सामने आता है।
17. अरुणाचल प्रदेश का जनजातीय समाज भी पितृसत्तात्मक है जिसमें स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। इन उपन्यासों में स्त्री पात्र सबसे पीड़ित, शोषित और वंचित दिखाई देती हैं। इन उपन्यासों में स्त्री के मानसिक और शारीरिक शोषण का चित्रण मिलता है।
18. नारी अस्मिता के विविध प्रश्नों को 'कन्या मूल्य', 'सोनाम', 'जंगली फूल', 'उस रात की सुबह', 'मिनाम', 'मेरी आवाज़ सुनो' आदि उपन्यासों में उठाया गया है।
19. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में कन्या मूल्य, बाल विवाह, बेमेल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, बहुपति प्रथा, प्रेम संबंधों आदि नारी अस्मिता से जुड़े विविध प्रश्नों को उठाया गया है।

20. प्रेम एक प्राकृतिक भावना है। अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय समाज में भी यह जन्म लेता है और पनपता है। इन उपन्यासों में प्रेम के अलग-अलग रूप दिखाए गए हैं।

21. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा-शैली सरल और सहज है। जिसमें स्थानीय बोलियों के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है।

22. अरुणाचल प्रदेश केंद्रित हिन्दी उपन्यास, भारतीय साहित्य में अपना एक अलग स्थान रखते हैं। वे न केवल स्थानीय समाज से हमारा परिचय कराते हैं, बल्कि हिन्दी पाठकों को भारतीय विविधता का व्यापक अनुभव भी कराते हैं।

23. भविष्य में इस दिशा में और भी विस्तृत एवं गहन शोध करने की आवश्यकता है, जिससे इस क्षेत्र की साहित्यिक और भाषाई पहचान और भी ज्यादा मजबूत होगी।

परिशिष्ट- 1

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ:

हिंदी में सृजित उपन्यास:

- जुमसी सिराम 'निनो', मातमुर जामोह, प्रकाशक- श्री केमबोम बागरा, आलो, वेस्ट सियांग, अरुणाचल प्रदेश, पहला संस्करण-2015, दूसरा-2016
- जुमसी सिराम 'निनो', मेरी आवाज़ सुनो, अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण-2021
- जोराम यालाम नाबाम, जंगली फूल, अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण-2019
- तुम्बम रिबा जोमो 'लिली', उस रात की सुबह,पृथ्वी प्रकाशन दिल्ली,प्रथम संस्करण-2018
- दयाराम वर्मा, सियांग के उस पार, नोशन प्रेस, चेन्नई, प्रथम संस्करण-2018
- मोर्जुम लोयी, मिनाम, बोधि प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण -2020

हिंदी में अनूदित उपन्यास:

- येसे दरजे थोंगछी, सोनाम(अनुवाद), अनुवादक- डॉ. महेन्द्रानाथ दुबे, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2009
- येसे दरजे थोंगछी, शव कटनेवाला आदमी(अनुवाद), अनुवादक- दिनकर कुमार, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2015
- येसे दरजे थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय(अनुवाद), अनुवादक- दिनकर कुमार, साहित्य अकादेमी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2017, पुनर्मुद्रण- 2023
- लुम्मेर दाई, कन्या का मूल्य(अनुवाद), अनुवादक- मुनीन्द्र मिश्र, एल. डी. पब्लिकेशन ईटानगर, प्रथम संस्करण -2006

सहायक ग्रंथ:

हिन्दी ग्रंथ:

- अज्ञेय, अरे यायावर रहेगा याद, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, चौथा संस्करण-2021
- एल. एन. चक्रवर्ती, अनुवादक सच्चिदानन्द चतुर्वेदी, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, पहला संस्करण-2004, दूसरा संस्करण-2012
- कामताप्रसाद गुरु, हिन्दी व्याकरण, लोकभारती प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, पहला संस्करण-1977, पुनर्मुद्रित -2023
- गजानन माधव मुक्तिबोध, एक साहित्य की डायरी, वाणी प्रकाशन ग्रुप नयी दिल्ली, उन्नीसवाँ संस्करण-2023
- गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण-2019
- जमुना बीनी, अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ, समय साक्ष्य देहरादून, प्रथम संस्करण-2021, दूसरा संस्करण-2022
- जोराम यालाम नाबाम, साक्षी है पीपल, राधाकृष्णा प्रकाशन, दूसरा संस्करण-2023
- जोराम यालाम नाबाम, गाय-गेका की औरतें, राधाकृष्णा प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2023
- तुम्बम रीबा जोमो 'लिली', काताम, अनुज्ञा बुक्स शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2020
- दीन दयाल त्रिवेदी, हमारा अरुणाचल, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1990
- सं. नंद किशोर पाण्डेय और प्रो. हरीश कुमार शर्मा, अरुणाचल प्रदेश की लोककथाएँ, प्रभात पेपरबैक्स नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2022
- सं. नगेन्द्र और हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1973, 80वां संस्करण -2022
- नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, पहला संस्करण- 1957, ग्यारहवाँ संस्करण-2021

- निशा तिवारी, हिन्दी व्याकरण एवं रचना, वोहरा पब्लिशर्स इलाहाबाद, संस्करण- 2012
- ब्रजकिशोर प्रसाद सिंह, पॉपुलर हिन्दी व्याकरण, रमेश पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा, किताब महल नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1966, पुनर्मुद्रित -2016
- रतनलाल गोयल 'भावी', नवीन हिन्दी व्याकरण एवं रचना, च्यवन प्रकाशन जयपुर, संस्करण -2005
- रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अनन्य प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली, संस्करण - 2024
- राहुल सांकृत्यायन, मेरी तिब्बत यात्रा, अनन्य प्रकाशन शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2024
- विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान हैदराबाद, प्रथम संस्करण-2007, दूसरा संस्करण-2020
- वीरेंद्र परमार, अरुणाचल प्रदेश लोकजीवन और संस्कृति, हंस प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2021
- वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2008
- श्याम शंकर सिंह, अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी अध्ययन के नये आयाम, साहित्य सहकार दिल्ली, प्रथम संस्करण -2012
- संजीव मंडल, हिंदी कथा – साहित्य में पूर्वोत्तर भारत, अद्वैत प्रकाशन शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण-2023
- सतीश कुमार सिंह, हिन्दी साहित्य का तथ्यपरक इतिहास, नालन्दा पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद, तृतीय संस्करण
- सं. सुरेश चन्द्र, श्रीप्रकाश मिश्र की साहित्य-साधना की पररख, क्वालिटी बुक्स पब्लिकेशन कानपुर, प्रथम संस्करण-2015

अंग्रेजी ग्रंथ:

- B. B. KUMAR, RE-ORGANIZATION OF NORTH-EAST INDIA (Facts and Documents) OMSONS PUBLICATIONS, T-7, RAJOURI GARDEN, NEW DELHI, FIRST PUBLISHED-1996
- B. B Pandey, status of women in tribal society Arunachal Pradesh, director of research, Itanagar Arunachal Pradesh, first pub-1997, reprinted -2018
- Edited Bibhash Dhar and palash Chandra Coomar, Tribes of Arunachal Pradesh history and culture, Abhijeet publications new Delhi, first print -2004, reprint -2016
- Dwijendra Kumar Duarah, the Monpas of Arunachal Pradesh published by assistant director of research, Itanagar, first pub -1990
- Juri Dutta, ethnicity in the fiction of Lummer Dai and Yeshe Dorjee Thongchi, Adhyayan publication new Delhi, first pub -2012
- Lummer Dai, heart to heart, Purbanchal Prakash Guwahati Assam, first published -2021
- M.C Arun Kumar, the tribes of Arunachal Pradesh, Maxford book publication new Delhi, first publication -2012
- Verrier Elwin, A Philosophy for NEFA, directorate of research govt of Arunachal Pradesh, first edition -1957
- Verrier Elwin, Democracy in NEFA, govt of Arunachal Pradesh department of cultural affairs Itanagar, first published -1965, second reprinted -2014
- V. M Rao, tribal women of Arunachal Pradesh socio economic status, Mittal publication new Delhi, first edition -2003

- Yeshe Dorjee Thongchi, Lummer Dai, Sahitya Academi, new Delhi, first pub -2023

कोश ग्रंथ:

- सं. रामचन्द्र वर्मा, प्रामाणिक हिन्दी कोश, लोकभारतीय प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-1998
- सं. कृष्ण कान्त दीक्षित और सूर्यनारायण उपाध्याय, मानक हिन्दी शब्दकोश, कमल प्रकाशन नई दिल्ली, नवीन संस्करण
- सं. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग-1, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी, संस्करण-1985
- सं. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी मुहावरा कोश, बुक सेंटर दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010

पत्र-पत्रिकाएँ:

- अक्षरा, सं. कैलाशचन्द्र पन्त, अंक -199, मध्यप्रदेश, अक्टूबर -2021
- आजकल, सं. राकेशरेणु, अंक-6, नई दिल्ली, अक्टूबर -2021
- द्विभाषी राष्ट्रसेवक, संपादक- डॉ. क्षीरदा कुमार शाइकीया, अंक -8,9, गुवाहाटी, नवंबर-दिसंबर, 2024
- सुरभि शोध संस्थान, सं. चन्द्र कान्ती पाल, अंक-1-4, वाराणसी, जनवरी-दिसम्बर 2024
- चाणक्य वार्ता, संपादक -डॉ. अमित जैन, अंक -6, नई दिल्ली, 31 मार्च -2025
- शोध-समालोचन, सं-डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', अंक-2, दिल्ली, अप्रैल -जून -2025